॥ श्रीश्रीगौरांग विधुर्जयति ॥

॥ श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दर देव विजयते तमाम् ॥

॥ श्रीश्रीश्यामानन्द प्रभु शरणम् ॥

॥ श्रीश्रीरसिकानन्द प्रभु सहायम् ॥

प्रभु श्रीश्री श्यामानन्द चरितामृतम्

श्रीश्रीमहाविष्णु के अवतार श्रीश्रीश्यामानन्द प्रभुपाद

- श्रीकृष्णगोपालानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद

॥ श्रीश्रीगौरांग विधुर्जयति ॥

॥ श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दर देव विजयते तमाम् ॥

॥ श्रीश्रीश्यामानन्द प्रभु शरणम् ॥

॥ श्रीश्रीरसिकानन्द प्रभु सहायम् ॥

प्रभु श्रीश्री श्यामानन्द चरितामृतम्

प्रथम प्रकाश -

श्रीश्री श्यामसुन्दर जी की ४३३वीं शुभ प्राकट्य तिथि

बसंत पंचमी, २० जनवरी २०१० ई.

ग्रन्थकार -

श्रीश्री रसिकानन्द प्रभु वंशावतंस

श्रीश्री कृष्णचैतन्य सम्प्रदायाचार्य

श्रीकृष्णगोपालानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद

श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दर मन्दिर

(सम्पूर्ण सृष्टि में श्रीराधारानीजी के हृदय कमल से प्रकटित एकमात्र श्रीविग्रह जहाँ विराजमान हैं।)

सेवाकुंज, श्रीधाम वृन्दावन–२८११२१, मथुरा, उ.प्र., भारत

मो. ९४१२२२६३६८, ९२५८०५६३६८

website : www.radhashyamsundar.com

e-mail : prabhushyamananda@radhashyamsundar.com

प्रकाशक : प्रभु श्री श्यामानन्द प्रेम संस्थान ट्रस्ट
श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दर मन्दिर
सेवाकुंज, श्रीधाम वृन्दावन–२८११२१ मथुरा
उ. प्र., भारत – फोन : (०५६५) २४४२३६१

प्रथम मुद्रण : १००० प्रतियाँ

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान :

१. श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दर मन्दिर
सेवाकुंज, श्रीधाम वृन्दावन–२८११२१
मथुरा, उ. प्र., भारत, फोन : (०५६५) २४४२३६१

२. श्रीश्रीराधाागोविन्द मन्दिर
गोपीवल्लभपुर, प. मेदिनीपुर, प. बंगाल, भारत
पिन–७२१५०६ फोन : (०३२२१) २६६२४४

३. श्रीश्रीमहाप्रभु मन्दिर
तमलुक, पु. मेदिनीपुर, प. बंगाल, भारत
पिन–७२१६३६ फोन : (०३२२८) २६७८७१

४. श्रीश्री कुञ्ज मठ
गणामल्ल साहि, वालिसाहि, पुरी, उड़ीसा, भारत

५. श्रीश्रीश्यामानन्द निकेतन
गौर विहार, पटिया, भुवनेश्वर, उड़ीसा, भारत
पिन–७५१०३० फोन : (०६७४) २६००६६५

६. श्रीश्रीश्यामानन्द आश्रम
राधानगरी, चन्दनेश्वर, वालासोर, उड़ीसा, भारत

७. प्रभु श्यामानन्द शास्त्र गविसणा केन्द्र
ग्राम पो. – जहान नगर, जि. वर्धमान (प. बंगाल)

आनुकुल्य : ६१/–

मुद्रक : चौधरी प्रिंटिंग प्रेस
ब्रह्मकुण्ड, वृन्दावन (मथुरा)
मो. ९८३७७८७८०२

विषय सूची

❖

।।श्रीहरिः।।

भूमिका

श्रील श्यामानन्द प्रभु के जीवन चरित्र की पर्यालोचना करने पर, उनकी, दिव्यातिदिव्य लीलाओं के स्मरण से मन तथा बुद्धि के साथ साथ सभी इन्द्रियां भी स्तम्भित हो जाती हैं। वृषभानु नन्दिनी श्रीमती राधारानी ने श्रील श्यामानन्द प्रभु से अपने खोये हुए नूपुर को प्राप्त करके, उनकों निज चरणाकृति नूपुर तिलक तथा श्रीश्रीश्यामसुन्दरजी के त्रिभंगभंगिम श्रीविग्रह प्रदान करके, श्रील श्यामानन्द प्रभु के प्रति जिस कृपा मन्दाकिनी की अमृतधारा का वर्षण किया, वैष्णव जगत में दूसरे किसी के प्रति श्रीमती राधाजू की वैसी कृपा का दृष्टांत उपलब्ध नहीं है।

गाम्भीर्य शिरोमणि श्रील जीव गोस्वामी तक श्रील श्यामानन्द प्रभु के प्रति श्रीमती राधाजू की इस कृपा का स्मरण करते हुए दिव्य आनन्द से उल्लसित होकर नृत्य करने लगे थे। श्रील श्यामानन्द प्रभु के तत्वों के विषय में प्रेमविलास ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन है–

"नित्यानन्द छिला जेई नरोत्तम हैला सेई,
श्रीचैतन्य हैला श्रीनिबास।
श्रीअद्वैत जारे कय श्यामानन्द तेहों हय
ऐछे हैला तिनेर प्रकाश।।"

उपरोक्त पयार में श्रील श्यामानन्द प्रभु को श्रील् अद्वैत प्रभु का द्वितीय कलेवर कहा गया है। फिर उसी ग्रन्थ में लिखा है कि–

"श्रीमहाप्रभुर शक्ति श्रीनिबास हय,
नित्यानन्देर शक्ति नरोत्तमे कहय।
अद्वैत प्रभुर शक्ति हय श्यामानन्द,
यार कृपाय उत्कलिया पाइल आनन्द।।"

उपरोक्त पयार में श्रील श्यामानन्द प्रभु को श्रील अद्वैत प्रभु की शक्ति बताया गया है। उसी ग्रन्थ में पुनः वर्णन किया गया है कि–

''श्रीनिवास नरोत्तम श्यामनन्द आर।
चैतन्य नित्यानन्दाद्वैतेर भावावेशावतार।।''

इस पयार में श्रील श्यामानन्द प्रभु को श्री अद्वैत प्रभु का भावावेशावतार दर्शाया गया है–

श्रील रसिकानन्द प्रभुजी के लीला परिकर, श्रीमद् गोपीजन बल्लभदास द्वारा रचित श्रीश्रीरसिकमंगल ग्रन्थ के योगी दामोदर प्रसंग में श्रील श्यामानन्द प्रभु को श्रीकृष्ण प्रिया (प्रेयसी) कहा गया है–

''नबीन किशोर मूर्ति, श्यामलसुन्दर।
त्रिभंग ललित बंशी, शिखी पुच्छधर।।
पीतबास परिधान मनोहर बेशे।
श्यामानन्दे देखिलेन तार बाम पाशे।।
रत्नसिंहासने देखि दोंहा बिद्यमान।
निजबेशे श्यामानन्द ताम्बुल योगान।।
देखि कृष्णप्रिया रूप, श्यामानन्द राय।
चमकिते दामोदर, पड़िलेन पाय।।

– श्रीश्रीरसिकमंगल द/१/७५–७८

(अर्थात्–योगी दामोदर भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन करने लगे, जोकि नवकिशोर श्यामसुन्दर रूप में विराजमान थे। वे ललित त्रिभंग भंगिमा से हाथ में वंशी एवं मस्तक पर शिखि पुच्छ धारण करके खड़े थे। श्रीश्यामसुन्दर पीतवसन पहन कर मनोहर वेश में सज्जित थे। रत्न सिंहासन के ऊपर उनके वामभाग में श्रीश्यामानन्द प्रभु मंजरी स्वरूप में श्रीश्यामसुन्दरजी को ताम्बूल अर्पण कर रहे थे। श्रील श्यामानन्द प्रभु का श्रीश्यामसुन्दरजी की प्रेयसी के रूप में दर्शन करके योगी दामोदर चौंक पड़े थे एवं उनके चरणारविन्द में लेट गए थे।)

श्रीश्रीश्यामानन्द प्रकाश, श्रीश्रीश्यामानन्द रसार्णव, श्री श्रीभक्ति रत्नाकर, प्रेमविलास, श्रीश्रीश्यामानन्द रसनिधि, श्री श्रीश्यामानन्द शतकम् आदि ग्रन्थों में श्री श्रीश्यामानन्द प्रभु के विषय में विशद वर्णन मिलता है।

श्रीधाम वृन्दावन में श्रीश्रीश्यामसुन्दरजी की प्रेम सेवा में तन–मन

से सम्पूर्ण रूप से निमज्जित श्रीश्यामानन्द प्रभु को, भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं तीन बार आदेश देकर, प्रेम भक्ति के प्रचार के लिये उत्कल देश जाने को प्रेरित किया था। प्रखर वर्षण के कारण भयंकर रूप से स्फीत नदी जब उफनते लगती है तो अपने दोनों तटीय क्षेत्रों को, भले ही वे समतल हों या असमतल हों, जलमग्न कर देती है, किसी को भी छोड़ती नहीं। भगवान श्रीकृष्ण के आदेश का पालन करने के लिये श्रीश्यामानन्द प्रभु जब उत्कल प्रदेश पधारे तो उन्होंने उसी प्रकार भक्ति के उफान से सम्पूर्ण उत्कल देश को प्लावित कर दिया। ब्राह्मण, क्षत्रिय , वैश्य, शूद्र, धनी, दरिद्र, उच्च–नीच, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी, सन्यासी, शहरी नागरिकों से लेकर निर्जन वनांचल के सांवताल, लोधा आदि सर्वस्तर के मनुष्य इस प्रेमभक्ति के प्लावन में गोते लगाने लगे। हूण, पुलिन्द, म्लेच्छ आदि भी इस बाढ़ से अछूते नहीं रहे। श्रील श्यामानन्द प्रभु की कृपा से योगीराज श्रीदामोदर पंडित भक्तराज बन गये थे। नृसिंहपुर के निकटस्थ वालिया के नृशंस जमींदार उद्दण्ड भूइयां ने निष्किंचन साधु वैष्णवों की निष्ठुरता पूर्वक हत्या करके उनकी एक मात्र सम्बल ७१८ गुदड़ियों को अपने भवन में प्रदर्शनी के लिये एकत्र कर रखा था। ऐसे जीव हिंसक, पापी भी श्रीश्यामानन्द प्रभु की कृपा से परम वैष्णव हुये। झारिखण्ड के मार्ग से वृन्दावन गंमन करते समय वन के पशु–पक्षी, स्थावर जंगम पदार्थों तक को उन्होंने प्रेम भक्ति का दान किया था। वन के व्याघ्र से लेकर जल के मगरमच्छ तक उनसे हरिनाम की दीक्षा लेकर श्रीकृष्ण प्रेम के अधिकारी बने थे। केवल मात्र पशु पक्षी ही श्रीश्यामानन्द प्रभु की शरण में आए हों ऐसा नहीं था, बल्कि इस मृत्यु लोक में विराजमान देवी–देवताओं तक ने उनका चरणाश्रय ग्रहण किया था। धलभूमगढ़ राज्य की अधिष्ठात्री देवी रंकिनी, भोगराई की वासुली देवी एवं केसीयाड़ी की देवी सर्वमंगला श्रील श्यामानन्द प्रभु की शरणागत हुईं थीं।

एक तरफ श्रील अद्वैत प्रभु अर्थात् श्रीमहाविष्णु के द्वितीय कलेवर एवं दूसरी तरफ श्रीकृष्ण प्रेयसी श्री श्रीश्यामानन्द प्रभु की दिव्यातिदिव्य अनन्त लीलाओं का वर्णन करना मेरे जैसे अज्ञानी, दम्भी, भक्तिहीन, कलितापक्लिष्ट नराधम के लिये नितान्त असम्भव ही है, तथापि श्रील

श्यामानन्द प्रभुजी के चरणारबिन्द एवं निखिल जगत के कार्ष्ण जनों के कृपाकण को ही एकमात्र सम्बल मानकर श्रील श्यामानन्द प्रभु की दिव्य लीलाओं का किंचित वर्णन करने का प्रयास कर रहा हूँ। परम करुण वैष्णव ठाकुरगण यदि इस ग्रन्थ का आस्वादन करके श्रील श्यामानन्द प्रभु के परम मधुर लीला रस को किंचित मात्र भी हृदयगम करने में समर्थ हो जायें, तो मेरा यह प्रयास सम्पूर्ण रूप से सार्थक होगा।

विभिन्न विद्वज्जनों द्वारा अपने ग्रन्थों में वर्णित श्रील श्यामानन्द प्रभु की लीलाओं के विषय में हमारे दोषपूर्ण चर्मचक्षुओं को कुछ विसंगतियां परिलक्षित होती हैं। उन विसंगतियों में यथा सम्भव सामंजस्य रखकर इस ग्रन्थ में श्रील श्यामानन्द प्रभु की दिव्य लीलाओं का वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

इस रचना का आधार निम्नलिखित ग्रन्थों में है :–

क्र.सं.	ग्रन्थ का नाम	लेखक
१.	श्रीश्रीश्यामानन्द शतकम्	श्रीअनिरुद्धावतार श्रीरसिकानन्द प्रभु
२.	श्रीश्रीश्यामानन्द रसनिधि	श्रीअनिरुद्धावतार श्रीरसिकानन्द प्रभु
३.	श्रीश्रीबिन्दु प्रकाश	श्रीआचार्यमुरारी
४.	श्रीश्रीश्यामानन्द रसार्णव	श्रीकृष्णचरणदास
५.	श्रीश्रीश्यामानन्द प्रकाश	श्रीकृष्णचरणदास
६.	श्रीश्रीभक्ति रत्नाकर	श्रीनरहरि ठाकुर
७.	नरोत्तम विलास	श्रीनरहरि ठाकुर
८.	प्रेम विलास	श्रीनित्यानन्द दास
९.	श्रीश्रीरसिक मंगल	श्रीमद् गोपीजनबल्लभ दास

१०. श्रीश्रीअभिराम लीलामृत — श्रीअभिराम दास

११. कनक मंजरी श्रीश्रीश्यामानन्द — श्रीब्रजेन्द्र नन्दनानन्द देव गोस्वामी

१२. श्रीश्रीश्यामानन्द चरित सुधा — श्रीसुबलचन्द्र गोस्वामी

१३. श्रीश्रीश्यामानन्द चरितामृत ओ भजन पद्धति — श्रीकानाइलाल अधिकारी

१४. श्रीगुरु कृपारदान — श्रीरामदास बाबाजी महाराज मुखनिःसृत

१५. श्रीश्रीहरि भक्ति विलास — श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामीपाद

१६. प्रभु श्यामानन्द (उड़िया भाषा) — श्रीपार्वती चरणदास

१७. श्रीश्रीश्यामानन्द लीलामृतओ भजन पद्धति (उड़िया भाषा) — श्रीनरसिंह नन्द

इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि के निर्माण एवं प्रकाशन कार्य में जिन लोगों ने आशातीत सहयोग प्रदान किया है, वे सभी श्री श्रीराधा श्यामसुन्दरजी की मधुरातिमधुर निकुंज लीला में सेवाधिकारी बन सकें, श्रील् श्यामानन्द प्रभु के चरणारविन्द में मेरी यही प्रार्थना है।

विनीत—

ग्रन्थकार

उत्सर्ग पत्र

"सान्द्रानन्दकरं रसोन्नतिकरं, श्रीकृष्ण भावाकरं।
चेतः शान्तिकरं तमः क्षयकरं, भक्तावली शंकरम्।।
दुःखोच्छेदकरं सुखान्वयकरं, कारुण्य सम्पतकरं।
दीनोद्धारकरं नमामि रसिकानन्द प्रभुं भास्करम्।।"

जो स्वयं श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के द्वितीय कलेवर, भगवान श्रीकृष्ण के चतुर्व्यूह में अनन्यतम, श्रीअनिरुद्ध के अवतार एवं भक्ताग्रगण्य श्रीवास पंडितजी के आवेशावतार होकर भी, शैशवावस्था से ही श्रीराध ाकृष्ण के प्रेम समुद्र में सर्वदा निमज्जित रहकर मृत्यलोकवासी जीवों के लिये श्रीकृष्ण प्रेमरस आस्वादन के मार्तण्ड स्वरूप मार्गदर्शक बने थे, उन श्रील श्यामानन्द कुलचन्द्रमा श्रीलरसिकानन्द प्रभुजी के कर कमलों में स्वरचित "प्रभु श्रीश्रीश्यामानन्द चरितामृतम्" नामक ग्रन्थ को समर्पित कर रहा हूँ।

विनीत–

अधम ग्रन्थकार

प्राक्कथन

श्रीभगवान स्वयं या उनके लीला परिकरगण जब किसी ब्रह्माण्ड में प्रकट होकर लीलाऐं प्रारम्भ करते हैं तो वे लीलाऐं हठात् या आकस्मिक रूप से संघटित नहीं हुआ करतीं, अपितु वे सुपरिकल्पित एवं सुनियोजित तरीकों से ही संघटित होती हैं। श्रील श्यामानन्द प्रभु भी जब श्रीराधा श्यामसुन्दरजी की नित्य लीलाओं से इस मृत्युलोक में प्रकट हुए थे तो यह थी–''स्वयं भगवान श्रीश्यामसुन्दर एवं करुणामयी श्रीमती राधारानीजी की कृपालुता की चरम पराकाष्ठा।''

ईसवी पंचदश शताब्दी में श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दरजी के मिलित विग्रह श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने प्रकट होकर सम्पूर्ण भारतवर्ष को हरिनाम एवं कृष्णप्रेम से प्लावित कर दिया था। उन्होंने स्वयं अपनी अन्त्य लीला के शेष अष्टादश वर्ष की अवधि में नीलाचल में अवस्थान किया था। उससे पहले भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों के तीर्थाटन के दौरान तथा परवर्ती काल में अपने लीला परिकरों को भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में भेजकर श्रीमन्महाप्रभु कलिकाल के कलुषयुक्त जीवों के कल्मष को सम्पूर्ण रूप से दूर करने में समर्थ हुए थे, किन्तु उनके अप्रकट होते ही कलियुग ने पुनः अपने अप्रतिहत प्रभाव का विस्तार करके भारतवासियों के उन स्वर्णिम दिनों के प्रकाश को धीरे–धीरे दुःख के अंधकार से ढक दिया था। सम्पूर्ण भारतवर्ष पुनः अनाचारी एवं अत्याचारियों से त्रस्त हो गया। उत्कल प्रदेश अत्यन्त दयनीय अवस्था में पहुँच गया।

ईसवी सोलहवीं शताब्दी में, श्रीश्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के अप्रकट होने के पश्चात् सम्पूर्ण उत्कल प्रदेश किस प्रकार दुर्दशा को प्राप्त होकर कलियुग का ग्रास बन गया था, श्रीमद् गोपीजन वल्लभ दास ने श्रीश्रीरसिक मंगल में उसका विशेष रूप से वर्णन किया है। यथा –

"उत्कले सर्वजन पापे दृढ़मति।
नाहि लय हरिनाम ना सुने हरि कीर्ति।।
अतिशय दुष्टकर्म करे निरन्तर।
ब्राह्मण वैष्णव निन्दा करये विस्तर।।
मद्यपाने मत्त ह्ये करये हिंसन।
दण्डधारी सन्यासी आर वैष्णव ब्राह्मण।।
धन लोभे हिंसन करये साधु जन।
वन भूमि मध्ये करे एई आचरण।।
किवा राजा किवा प्रजा सबे दुष्टमति।
उत्कल प्रदेशे बैसे यत यत जाति।।
सबे जीव हत्या करे ह्ये अचेतन।
बादा बादी बोदा पोड़ काटे सर्वजन।।
तार मध्ये महतादि आछे यत जन।
नाना अविद्याते रत न याये कथन।।
अल्प द्रव्य लोभे मात्र प्राणी हिंसा करे।
शत् शत् ब्राह्मण वैष्णव साधुमारे।
साधुजन हिंसा करि यत द्रव्य आने।
मद मांस खाये आर देई वेश्यागणे।।
नाना पूजा करे तारा करिया स्थापन।
ना शुनये हरिकथा ना शुने कीर्तन।।
संकीर्तन शुनिले मारिते सबे धाये।
ए गुलार शब्दे लक्ष्मी देश छाड़ि याये।।
वैष्णव देखिले बले ए गुला तस्कर।
ग्राम हइते खेदाड़िया राखे तेपान्तर।।
हेन मते नाना पाप कहिते ना पारि।
महा पापे ग्रस्त हैला उत्कल पुरी।।

–श्री श्रीरसिक मंगल पूर्व/३/७–१६

(अर्थात–उत्कल में सभी लोग दृढ़ मन से पाप करने लगे हैं। कोई भी व्यक्ति हरिनाम नहीं करता है। कृष्ण की लीलाओं का भी श्रवण नहीं

करता है। सभी व्यक्ति अत्यन्त दुष्ट कर्म करते रहते हैं। वे वैष्णव एवं ब्राह्मणों की भी बहुत निन्दा करते रहते हैं। मदिरापान करके ये लोग मत्त होकर दण्डधारी सन्यासी एवं ब्राह्मणों की हिंसा करते हैं। धन के लोभ से ये लोग वनभूमि के अन्दर साधुओं की हत्या भी करते हैं। उत्कल देश में अलग–अलग जाति के राजा हों या प्रजा, सभी इस प्रकार की दुष्टमति के हैं। ये लोग अज्ञानी की भांति जीवों की हत्या करते हैं। कहीं–कहीं प्रतियोगिता मूलक भैंस, बकरी आदि की बलि भी देते हैं। इनमें वे लोग, जो ये सब कर्म नहीं करते हैं, वे भी श्रीकृष्ण का भजन न करके नाना प्रकार की मायिक विद्या में निमग्न रहते हैं। उत्कल देश में अधिकतर लोग सामान्य द्रव्य–लोभ से भी ब्राह्मण, वैष्णव एवं साधुओं की हत्या करते हैं। साधुओं की हत्या से जो भी द्रव्य प्राप्त होता है वह सारा द्रव्य मदिरा सेवन, मांस भक्षण एवं वेश्या गमन जैसे दुष्कर्मों में व्यय करते हैं। ये लोग काली, मनसा आदि देव–देवियों की मूर्तियाँ या कलश स्थापित करके पूजा करते हैं। अगर कोई हरिकथा का श्रवण या कीर्तन करे तो ये लोग उसे मारने को दौड़ पड़ते हैं। इन लोगों के कुकर्म से लक्ष्मी देवी जैसे देश छोड़कर कहीं चली गई हैं। दुष्ट, वैष्णवों को देखकर उन्हें चोर की संज्ञा देकर, ग्राम से बाहर भगा देते हैं। इस प्रकार उत्कल वासियों के पापों का कोई अन्त नहीं है। समूचा उत्कल प्रदेश महापाप से ग्रस्त हो गया है।)

यह जो वर्णन आया है वह उत्कलवासी, हिन्दू धर्मावलम्बियों के दुःखद अधोपतन एवं दुर्दशा का द्योतक है। दिल्ली के मुग़ल शासनाधीन उत्कल प्रदेश में हिन्दुओं को नाना प्रकार से प्रताड़ित करके बलपूर्वक मुसलमान धर्म ग्रहण करने के लिये बाध्य किया जा रहा था। जो धर्मप्राण हिन्दू धर्मान्तरण के लिये तैयार नहीं होते थे उन्हें या तो उत्कल प्रदेश छोड़कर भागना पड़ रहा था या वे लोग मुसलमानों द्वारा मारे जा रहे थे।

परवर्ती काल में श्रील श्यामानन्द प्रभु एवं श्रील रसिकानन्द प्रभु ने प्रकट होकर इस बेहाल हिन्दू धर्म के कर्णधारों के रूप में हिन्दुओं को संगठित करके, नाम संकीर्तन के प्रचार के द्वारा एवं कृष्ण प्रेम की बाढ़ से समूचे उत्कल प्रदेश को प्लावित कर दिया। उस समय मुसलमानों ने इन्हें भी पीड़ित करने का भरसक प्रयास किया। आगरा नगर के मुग़ल कोतवाल

ने श्रील श्यामानन्द प्रभु को साथी वैष्णवों के साथ कारारुद्ध कर दिया था। धारेन्दा के पठान शासक ने श्रीश्यामानन्द प्रभु के नाम संकीर्तनकारी साथियों के मृदंग, करताल आदि तोड़ दिये थे। केसियाड़ी के मुसलमान शासक ने ईर्ष्यावश श्रील श्यामानन्द प्रभु को कारारुद्ध कर दिया था। श्रील् रसिकानन्द प्रभु को भी उस समय वानपुर के सूबेदार अहम्मदी बेग ने प्रताड़ित करने का भरसक प्रयास किया था। श्रील श्यामानन्द प्रभु एवं श्रील रसिकानन्द प्रभु की ईश्वरीय शक्ति के प्रभाव से यवन उन दोनों का कोई भी अहित करने में सफल नहीं हुए, किन्तु साधारण उत्कलवासी हिन्दुओं का किस प्रकार दमन हो रहा था, उपरोक्त दृष्टान्तों से समझा जा सकता है।

एक तरफ तो उत्कलवासी हिन्दुगण श्रीकृष्ण बहिर्मुख होकर अत्याचार, अनाचार और पापाचार से ग्रस्त थे तो, दूसरी तरफ था हिन्दु धर्म की मूल धारा का विनाश करने के लिये मुसलमानों का प्रबल हिन्दु विद्वेष। थोड़े से कृष्ण भक्त, जोकि उस समय उत्कल में किसी तरह से निवास कर रहे थे, इस घोर संकट में अपनी रक्षा के लिये एवं समस्त उत्कलवासियों के उद्धार के लिये भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में कातर होकर प्रार्थना करने लगे, जैसाकि श्रीश्रीरसिक मंगल में वर्णन है –

"तार मध्ये ये बा आछे कृष्णेर किंकर।
अनुक्षण जानायेन चरण कमल।।
भृत्य पाठाइया प्रभु करह उद्धार।
सहन ना जाय जीबेर एइ दुःख भार।।

–श्रीश्रीरसिकमंगल– पू/३/२०, २३

(अर्थात्–उस समय जो भी भगवान श्रीकृष्ण के भक्त लोग थे, कातर होकर अनवरत श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में ज्ञापन देने लगे– हे प्रभो! जीवों के इस दुःख को हम सहन नहीं कर पा रहे हैं। आप किसी सेवक को शीघ्र भेजकर इनका उद्धार करो।)

दुःखी भक्तों के कातर आह्वान से गोलोकाधिपति भगवान श्रीकृष्ण

के हृदय कमल में विशेष आलोड़न की सृष्टि हुई। अन्त में भक्तवांछा कल्पतरु श्रीयशोदानन्दन श्यामसुन्दर ने नित्यलीला से अपनी नित्य प्रेयसी श्रीकनकमंजरी को जीवों के उद्धार के लिये एवं श्रीब्रजमण्डल में दिव्यातिदिव्य, मधुरातिमधुर उज्ज्वल प्रेम रस का प्रचार करके लोक कल्याण के लिये पृथ्वी पर प्रेरण करने का संकल्प कर लिया।

"उत्कलेर लोक सब पापे दृढ़ मन।
कृष्ण प्रियारूपे श्यामानन्द हइला जनम्।।"

– श्रीश्रीरसिकमंगल – पू/२/११

(अर्थात–उत्कल प्रदेश के सभी लोगों को पाप कर्म में सम्पूर्ण रूप से दृढ़ चित्त देखकर, कृष्ण प्रिया (कनक मंजरी) ने, श्रीश्यामानन्द प्रभु के रूप में जन्म लिया।)

।। श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दर देवो विजयते ।।

"प्रभु श्रीश्री श्यामानन्द चरितामृतम्"

प्रथम अध्याय

आविर्भाव एवम् बाललीला

पश्चिम बंगाल के मिदनापुर ज़िले के अन्तर्गत, भारतीय वायुसेना की कोलाइकुण्डा घाटी के पश्चात् भाग में एक गाँव है, जिसका नाम धारेन्दा है। किन्तु क्योंकि एक अन्य गाँव, जिसका नाम बहादुरपुर है, इसके बिल्कुल निकट है, इसलिए इन दोनों गाँवों को एक साथ धारेन्दा बहादुरपुर के नाम से जाना जाता है। सोहलवीं शताब्दी में यही धारेन्दा बहादुरपुर गाँव, तत्कालीन उड़ीसा राज्य का भाग था। इसी धारेन्दा गाँव में उन दिनों, सद्‌गोप कुल में जन्मे एक व्यक्ति निवास करते थे, जिनका नाम श्रीकृष्ण मण्डल था।

धारेन्दा बाहादुरपुरे पूर्ब अबस्थिति।
शिष्टलोक कहे श्यामानन्द जन्मतथि।।

—श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (१/३५४)

(अर्थात् श्रीकृष्ण मण्डल पहले धारेन्दा बहादुरपुर में निवास करते थे। श्री श्यामानन्द प्रभु का जन्म वहीं हुआ था।)

ये श्री कृष्ण मण्डल अत्यन्त शान्त, सौम्य, सुदर्शन, देव–ब्राह्मण भक्ति परायण तथा परम कृष्ण भक्त थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम दूरिकादेवी था। दूरिकादेवी भी हर प्रकार से अपने कृष्ण भक्त पति की अनुगामिनी तथा स्वयं भी परम भक्तिमति थीं। ऐसे मणि कांचन का संयोग बिरला ही संघटित होता है।

'पति पत्नी दोहें तारा ब्रह्मण्य बिदित।
सर्बधर्म परायण अति शुद्ध चित्त।।'

—श्रीश्री रसिक मंगल (पू/२/२)

(अर्थात् पति पत्नी दोनों अत्यन्त धर्मपरायण तथा शुद्ध चित्त वाले थे, यह सब लोग जानते हैं।)

पारिवारिक कलह के कारण श्रीकृष्ण मण्डल को अपना पैतृक गाँव छोड़कर कई वर्ष तक उड़ीसा के दंडेश्वर नामक ग्राम में जाकर रहना पड़ा। इन सरल स्वभाव दम्पत्ति के जीवन में विपत्ति का अभाव न था। पैतृक ग्राम छोड़ने पर भी विपत्ति ने इनका दामन न छोड़ा। साधारण मायाबद्ध जीव, अपने प्रियजनों की विरह से सर्वाधिक दुःखी हो जाते हैं। श्रीकृष्ण मण्डल जी की कई सन्तानें एक के बाद एक, काल कबलित हो गईं, किन्तु इस के बाबजूद भी ये परम भक्त दम्पत्ति बिंदुमात्र भी विचलित नहीं हुए। इन विपत्तियों को भवितव्य जानकर, इन दोनों ने सम्पूर्ण रूप से, काय, मन तथा वाक्य से अपने आपको एकाग्रचित्त से श्री भगवान के चरणारविन्द में समर्पित कर दिया। भक्तवत्सल भगवान अपने निजजनों की अनेक प्रकार से परीक्षा लिया करते हैं। यह भगवान का स्वाभाविक गुण है। स्वर्णकार, स्वर्ण को विशुद्ध करने के लिए, बारम्बार प्रचण्ड अग्नि में जलाते हैं, जल में निक्षेप करते हैं एवम् लौह मुद्गर से कठिन से कठिन प्रहार करते हैं। इसके पश्चात् ही स्वर्ण विशुद्ध होता है। श्रीभगवान भी अपने भक्तों के जीवन में नाना प्रकार की विपत्तियों का संचार करके, उनकी भक्ति को विशुद्ध कर लेते हैं। विशुद्धिकरण की इस प्रक्रिया में से गुजरने के बाद, भक्तजनों के जीवन में केवल आनन्द की धारा ही प्रवाहित होती रहती है।

भक्तवत्सल श्रीकृष्ण ने, श्रीकृष्ण मण्डल तथा दूरिकादेवी की नाना प्रकार से परीक्षा लेने के पश्चात्, इनके घर में अपने प्रिय परिकर, श्रीश्यामानन्द प्रभु को उन दोनों के पुत्र के रूप में प्रकट किया।

चैत्र पूर्णिमा ते जन्मिलेन श्यामानन्द।
दिने दिने बाड़िलेन जैछे बाड़े चन्द्र।।

—श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (६/१४)

(चैत्र पूर्णिमा को जन्म लेकर श्री श्यामानन्द प्रभु चन्द्रमा की भाँति दिन प्रतिदिन बढ़ने लगे।)

सन्, १५३५ (ईसवी) के चैत्रमास की शुभ मधुपूर्णिमा वाले दिन,

श्रीकृष्ण मण्डल जी तथा श्रीमती दूरिकादेवी जी को निमित्त बनाकर, श्रीकृष्ण के अतिप्रियजन "प्रेयसी कनक मंजरी" इस भक्तयुगल के पुत्र के रूप में प्रकट हुए।

पुत्र के गौरवर्ण शरीर, उन्नत नासिका, प्रशस्त ललाट, आकर्षक विस्तृत नैन, कुंचित केश, आजानू लम्बित भुजाएँ, क्षीणकटि, विस्तृत वक्षःस्थल और अधरों पर मृदु हास्य आदि लक्षणों का (जो सब महापुरुषों के ही लक्षण हैं) दर्शन करके, श्रीकृष्ण मण्डल जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी भार्या से, इस विलक्षण शिशु का अत्यन्त यत्न से पालन पोषण करने के लिए कहा। उन्होंने यह भी कहा कि शायद प्रभु उसकी रक्षा करेंगे।

क्योंकि श्रीकृष्ण मण्डल जी की पहली कई संतानें काल कबलित हो चुकी थीं, इसलिए गाँव के लोगों ने इस पुत्र के दीर्घकाल तक जीवित रहने के विषय में शंका व्यक्त की। किसी किसी ने सोचा कि शिशु का नाम उत्तम होने पर यमराज की दृष्टि उस पर भी पड़ सकती थी। इसलिए उन लोगों ने यही उचित समझा कि बालक का मामूली सा नाम रखा जाए, जिससे अशुभ ग्रहों की दृष्टि इस सुन्दर बालक पर न पड़े। इसी कारण उन लोगों ने मिलकर नवजात शिशु का नाम दुखिया रखा। क्योंकि माता पिता की पहली कई संतानों के नष्ट हो जाने के दुःख के भीतर ही इस शिशु का पालन हो रहा था, यह सोच विचार कर, पड़ोसियों ने भी इसका नाम दुःखी ही रहने दिया।

'माता पिता दुःख सह पालन करिल।
सेई हेतु दुःखी नाम प्रथमे हइल।।'

—श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (१/३५६)

(अर्थात् माता पिता ने क्योंकि अत्यन्त दुःख के साथ इसका पालन किया, इसलिए इस का नाम दुःखी हुआ।)

भक्तगणों के जीवन चरित्र की चर्चा करने पर, आमतौर पर यह देखा जाता है कि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में उनमें से कोई कोई तो अत्यन्त चंचल तथा उद्दण्ड प्रकृति के होते थे, परन्तु परवर्ती काल में उनके जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन हो जाता था। कोई—कोई भक्त, प्रारम्भिक जीवन

से ही भक्तप्रवर प्रह्लाद की भाँति अति शांत प्रकृति के होते थे। श्रीकृष्ण भक्त दुःखी जी इसी दूसरी श्रेणी के थे। शिशु के शान्त, सौम्य स्वभाव, अत्यन्त विनम्र व्यवहार, सरलता, सुशीलता, भक्ति परायणता आदि गुणों को देखकर माता पिता तथा पड़ोसी, उससे बहुत स्नेह करने लगे।

श्रीकृष्ण मण्डल जी ने दुःखी जी के अन्नप्राशन तथा चूड़ाकरण आदि सारे संस्कार समारोहपूर्वक सम्पन्न किए। बाल्यावस्था से ही दुःखी जी के हृदय में श्रीकृष्ण भक्ति का चरम प्रकाश होने लगा। सन् १५४० (ईसवी) में पाँच वर्ष की आयु में विद्या आरम्भ होने पर, दुःखी खूब मन लगाकर विद्या का अभ्यास करने लगे। अन्य बालक जब अपना समय बाल्यावस्था के खेल–खेलने में व्यतीत करते थे, तब दुःखी समय को बर्बाद न करके, अत्यंत गम्भीर तथा शांत रूप से समय को केवल अध्ययन में ही व्यय करते थे। अलौकिक धी–शक्ति तथा असाधारण प्रतिभा के कारण, अल्पकाल में ही व्याकरण आदि के पाठ समाप्त करके, वे काव्य आदि का अध्ययन करने लगे।

कखन ना जाय अन्य बालकेर मेले।
व्याकरण आदि पाठ हैल अल्पकाले।।

–श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (१/३६१)

(अर्थात् दूसरे बालकों के साथ कभी भी खेलते नहीं थे। अल्प आयु में ही व्याकरण आदि का पाठ समाप्त कर लिया।)

पौगंड अवस्था का अतिक्रमण करके, किशोरावस्था में पदार्पण करते ही दुःखी का हृदय कृष्ण अनुराग के दिव्य आवेश से तरंगित रहने लगा। वैष्णवों के श्रीमुख से श्री श्री निताई गौरांग एवम् उनके परिकरों की सुमधुर चरित्र–कथाओं को सुनकर तथा श्रीकृष्ण के लीलामृत का पान करके, उनका श्रीकृष्णानुराग दिन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगा। यौवनावस्था की दुर्निवार आसक्ति भी कृष्णानुराग के प्रबल तरंगाघात से किधर बह गई, पता भी न चला। हर समय श्रीकृष्ण नाम श्रवण, श्रीकृष्ण नाम कीर्तन तथा श्रीविग्रहों के दर्शन को छोड़कर, अन्य विषय उनके निकट सारहीन प्रतीत होने लगे। प्रबल श्रीकृष्णानुराग से वे कभी "हा निताई", "हा

गौर", "हा कृष्ण" कहकर हंसते थे, कभी पागलों की भाँति नृत्य करते थे और कभी एकान्त में बैठकर रोते रहते थे।

श्रीकृष्ण भक्ति और विषयों में आसक्ति, दो बिल्कुल विपरीत विषय हैं। जिनके मन में श्रीकृष्णभक्ति का उदय हो गया, वे महान विषयों के बीच रहते हुए भी, पंक के बीच पद्म के समान निर्लिप्त भाव से अवस्थान करते हैं। जिनके हृदय में श्रीकृष्णानुराग उदित हो गया, उनकी विषयों के प्रति वितृष्णा अनिवार्य है, जैसे श्रील रघुनाथदास गोस्वामी के चित्त में प्रबल श्रीकृष्णानुराग उदित होने पर, उन्होंने पितृ–पितृव्य के अपरिसीम ऐश्वर्य तथा परमासुंदरी स्त्री के आकर्षण का मलवत् परित्याग कर दिया था और श्रीकृष्ण प्रेम की उद्दाम तरंगों में पूर्णरूपेण निमज्जित हो गए थे। मायिक विषयों की मनोहारिणी मूर्ति भी दुःखी जी के चित्त को लुभा न सकी। श्री कृष्ण प्रेम की मन और प्राणों को आकर्षित करने वाली तरंग में उन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

'गृहासक्ति सुख जाने विषेर समाने।
किछुई ना भाय तारे एका कृष्ण बिने।।'

–श्रीश्री रसिक मंगल (पू/२/२८)

(अर्थात् श्रीकृष्ण प्रेम को छोड़कर, गृह सम्बन्धी सुख उनको विष समान लगता था।)

श्रीकृष्ण भक्ति सारे सद्गुणों को आकर्षित करती है। दुःखी के हृदय में श्रीकृष्ण–भक्ति के बढ़ने पर, वे अपने माता पिता को मायिक माता पिता मात्र न मानकर, उन दोनों के प्रति गुरु के समान श्रद्धा भक्ति रखने लगे। परम श्रीकृष्ण भक्त माता पिता भी, पुत्र को श्रीकृष्ण के प्रेम में निमज्जित देखकर, अत्यन्त प्रफुल्लित होने लगे। शास्त्रज्ञ श्रीकृष्ण मण्डल जी जानते थे कि जिस वंश में श्रीकृष्ण भक्त संतान का जन्म होता है, उस वंश की चौदह पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। वह वंश धन्य हो जाता है। इसलिए अपने पुत्र को सुदुर्लभ श्रीकृष्ण प्रेम का अधिकारी जानकर दुःखी जी के जनक जननी, अत्यन्त सुख का अनुभव करने लगे एंवम् अपने आपको परम भाग्यवान मानने लगे। मण्डल दम्पत्ति ने अत्यन्त प्रसन्न होकर

दुःखी से यों कहा–

कृष्ण मंत्रे दीक्षा लह जथा मने लय।

–श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (१/३६६)

(अर्थात् तुम्हारा मन जहाँ चाहे, वहीं जाकर सद्गुरु से कृष्ण मंत्र की दीक्षा ग्रहण करो।)

माता पिता के इस कृपादेश को सुनकर, दुःखी का मन आनन्द से विभोर होकर नृत्य करने लगा। आकाश से चंद्रमा जैसे अनायास ही उनके करतल पर उतर आया हो। जिस समय दुःखी इस चिन्ता में डूबे थे कि वे माता पिता से श्री गुरुदेव के चरणों का आश्रय ग्रहण करने के लिए किस प्रकार आज्ञा प्राप्त करेंगे, ठीक उसी समय श्रीकृष्ण की अन्तःप्रेरणा से उनके माता पिता ने स्वतः ही प्रफुल्लित मन से उसके लिए आज्ञा दे दी।

अत्यन्त सौभाग्य से ही जीव को सद्गुरु की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में वेदस्तुति में यों लिखा है–

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं,
य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः।
व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं,
वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ।।

–श्रीमद्भागवत १०/८७–३३

(अर्थात् हे अजन्मा प्रभो ! जिन योगियों ने अपनी इन्द्रियों और प्राणों को वश में कर लिया है, वे भी जब गुरुदेव के चरणों की शरण न लेकर उच्छृंखल एवम् अत्यन्त चंचल मन रूपी तुरंग को अपने वश में करने का प्रयास करते हैं, तो अपने साधनों में सफल नहीं होते। उन्हें बार–बार खेद और सैंकड़ों विपत्तियों का सामना करना पड़ता है और केवल श्रम और दुःख ही हाथ लगता है। उनकी ठीक वही दशा होती है, जो समुद्र में बिना कर्णधार की नाव पर यात्रा करने वाले यात्रियों की होती है।)

तात्पर्य यह है कि जो मन को वश में करना चाहते हैं, उनको गुरु की अनिवार्य आवश्यकता है। सद्गुरु के सिवाय शिष्य को संसार रूपी समुद्र से पार कराकर, श्रीकृष्ण चरणारविन्द को प्राप्त कराना किसी

साधारण मनुष्य का कर्म नहीं है। श्री श्री हरिभक्तिविलास में गुरु के जो लक्षण वर्णित हैं, वे इस प्रकार हैं–

जिनका वंश पतितादि दोषहीन है, जो स्वयं भी पतितादि दोष रहित हैं, अपने विहित आचार में रत हैं, गृहस्थ आश्रमी, क्रोधहीन, वेदविद, सर्वशास्त्रज्ञ, श्रद्धावान, द्वेषरहित, प्रियवादी, प्रियदर्शन, शुचि (पवित्र), सुवेषधारी, युवा, सर्वभूतों के हित में रत, धीमान, स्थिरमूर्ति, पूर्ण अर्थात् जिनकी कोई आकांक्षा नहीं है, अहिंसक, विवेचक, वात्सल्य आदि गुणवान, भगवद् पूजा में कृतबुद्धि, कृतज्ञ, शिष्य वत्सल, निग्रह व अनुग्रह में सक्षम, होम मंत्र परायण, तर्क–वितर्क के प्रकारज्ञ, शुद्ध चित्त, कृपा के आलय, पुरश्चरण शील आदि गरिमायुक्त व्यक्ति ही गुरु होने के योग्य हैं।

श्री श्री चैतन्यचरितामृत में भी लिखा है किः–

किबा विप्र किबा शूद्र न्यासी केन नय।
जेई कृष्ण तत्व बेत्ता सेई गुरु हय।।

(२/८/१००)

(अर्थात् जो भी कृष्ण तत्त्ववेत्ता हो वही गुरु हो सकता है, चाहे वह ब्राह्मण हों, शूद्र हो अथवा सन्यासी हो।)

मगर सद्गुरु चयन के लिए नित्यसिद्ध दुःखी को कोई परेशानी नहीं हुई। वैष्णवों के मुख से श्रील गौरीदास पंडित ठाकुर के प्रिय शिष्य श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर की असाधारण भक्ति रीति की ख्याति सुनकर दुःखी ने मन ही मन में उनको गुरुदेव के रूप में वरण कर लिया। श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर के प्रति श्रीश्री गौर नित्यानंद की अहैतुकी कृपा की बात उस समय के सभी वैष्णव लोग भली–भाँति जानते थे। श्रील हृदयचैतन्य अधिकारी ठाकुर, श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रिय परिकर श्रीमद्गदाधर पंडित के भ्रातृ पुत्र थे। एकबार श्रीश्री गौर नित्यानन्द, श्रीगौरी दास पंडित के भय से, श्रील हृदयानन्द अधिकारी ठाकुर के हृदय में प्रवेश कर गए थे, इसीलिए श्रील गौरीदास पंडित ने अपने प्रिय शिष्य का नाम रखा था, श्रील हृदय चैतन्य।

घटना इस प्रकार है। श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर के प्रथम

जीवन का नाम श्रील हृदयानन्द एवम् उनके पिताजी का नाम था, श्री जगन्नाथ। श्री गौरीदास पण्डित ठाकुर उनको श्री गौर नित्यानन्द की सेवा के लिए, श्रीगदाधर पण्डित से अनुरोध करके ले आये थे। क्योंकि श्री जगन्नाथ जी, श्री गदाधर पण्डित के भाई थे, इसलिए श्रील हृदयानन्द जी, श्री गदाधर पण्डित के भतीजे लगते थे। श्री गौरीदास पण्डित जी ने, श्रील हृदयानन्द को कृष्ण मंत्र की दीक्षा प्रदान करके, अम्बिका में श्री गौर–नित्यानन्द की सेवा में नियुक्त कर दिया।

अम्बिका में श्री गौर–नित्यानन्द के श्री विग्रहों के प्रकट होने की कथा अत्यन्त चित्ताकर्षक है।

ब्रज लीला में श्री सुबल, श्री कृष्ण के प्रिय नर्म सखा थे एवम् श्रीमती राधारानी के साथ श्रीकृष्ण के मिलन में भी सहायता किया करते थे। ब्रज के नन्दनन्दन जब नदिया में श्री गौरसुन्दर के रूप में प्रकट हुए तो श्री सुबल भी श्रीगौरीदास पण्डित के रूप में प्रकट हुए। हर समय श्री गौर–नित्यानन्द के मधुर संग के सिवाय, श्री गौरीदास पण्डित को सारी सृष्टि अंधकारमय दिखती थी, किन्तु श्री गौर–नित्यानन्द को अपनी भक्तवत्सलता की पराकाष्ठा के रूप में अलग–अलग स्थानों में भ्रमण करके, भक्तगणों पर कृपा वृष्टि करनी पड़ती थी। इधर श्री गौरीदास पण्डित चाहते थे कि दोनों भाई अम्बिका में उनके निकट अवस्थान करके, उनकी प्रेम सेवा को ही स्वीकार करते रहें। भक्तवत्सल श्री गौरसुन्दर ने तब अपने प्रिय सखा को आनन्द प्रदान करने के लिए एक अद्‌भुत उपाय का उद्‌घाटन किया। नवद्वीप से नीम की लकड़ी मंगवाकर, श्री गौर–नित्यानन्द के दो श्रीविग्रहों का निर्माण करवाया तथा श्री गौरीदास पण्डित के द्वारा उनकी स्थापना भी करवायी, किन्तु श्री गौरीदास पण्डित जी इससे सन्तुष्ट न हुए तथा उन्होंने श्री गौरसुन्दर से यों कहा–"सखा! तुम मुझे बालसुलभ सांत्वना क्यों प्रदान कर रहे हो? ये दोनों श्रीविग्रह क्या नाम संकीर्तन में तुम लोगों जैसा मधुर–मधुर नृत्य कर लेंगे? या तुम्हारे समान साक्षात रूप से मेरी सेवा ग्रहण कर लेंगे?" कौतुक चूड़ामणि श्री गौरसुन्दर ने तब एक दिव्यलीला प्रकट कर दी। श्री गौरीदास पण्डित ने देखा कि श्री मन्दिर में सेवित श्री श्री गौर–नित्यानन्द के श्रीविग्रह अकस्मात् आंगन में आकर, दोनों भुजाएँ

ऊपर उठाकर नृत्य कर रहे थे। तदनन्तर श्री गौरसुन्दर ने इससे भी अधिक रहस्य लीला प्रकट की। उन्होंने श्री गौरीदास को चार पत्तलों में नैवेद्य परोसने के लिए कहा। श्री गौरीदास द्वारा केले के पत्तों पर चार जगह नैवेद्य परोसने पर, श्री गौरसुन्दर व श्री नित्यानन्द, मंदिर में स्थापित अपने दोनों के श्रीविग्रहों को लेकर भोजन ग्रहण करने के लिए बैठ गए। श्री गौरीदास को आश्चर्यचकित करते हुए, दोनों अचल श्रीविग्रह भी अत्यन्त तृप्ति के साथ भोजन ग्रहण करने लगे। भोजन ग्रहण करने के उपरान्त श्रीगौरसुन्दर जी, श्री गौरीदास जी से बोले–"गौरीदास! हम चारों में से किन्हीं दो श्रीविग्रहों को मंदिर में सेवा ग्रहण करने के लिए मनोनीत करो।" श्री गौरीदास जी ने प्रसन्नतापूर्वक चारों विग्रहों में से उन दो विग्रहों को ही, जो उनसे (श्रीगौरीदास से) बातें कर रहे थे, मनोनीत कर दिया। लेकिन जब दो शेष श्रीविग्रहों ने यों कहा कि–"गौरीदास! तो हम लोग जा रहे हैं।" तब श्री गौरीदास पण्डित अत्यन्त दुविधाग्रस्त होकर, शंकित हो उठे। उनके मन में भय उत्पन्न हो गया कि कहीं ब्रज के वे चतुर श्याम उनको ठग कर न चले जायें। श्री गौरीदास जी की इस शंकापूर्ण कातर स्थिति को देखकर, श्री गौरसुन्दर ने कहा–"गौरीदास! तुम संशय मत करो। इन दोनों श्रीविग्रहों को तुम मंदिर में रखकर, प्रेम सेवा अर्पित करते रहो। मैं तुम्हें वर देता हूँ कि जब भी तुम सेवा अर्पित करोगे, हम दोनों भाई साक्षात् रूप से प्रकट होकर तुम्हारी प्रेम सेवा को स्वीकार करेंगे।"

एइ दुइ बिग्रह रूपे आमरा दुइजन।
नित्य नित्य तोमार घरे करिब भोजन।।

–प्रेम विलास–१२

(अर्थात् इन दोनों श्रीविग्रहों के रूप में हम दोनों नित्य तुम्हारे घर में भोजन करेंगे।)

तब से श्री गौर नित्यानन्द जी के श्रीविग्रह, अम्बिका में साक्षात् रूप से श्री गौरीदास जी की प्रेम सेवा को स्वीकार करते चले आ रहे थे। परवर्ती काल में, श्री गौरीदास जी ने श्रील हृदयानन्द को, श्री गदाधर पण्डित जी के यहाँ से लाकर, इन श्री गौर नित्यानन्द के श्रीविग्रहों की सेवा में नियुक्त कर दिया।

हर वर्ष फाल्गुनी पूर्णिमा को, श्री गौरीदास पण्डित, श्री गौरसुन्दर जी का आविर्भाव महोत्सव अत्यन्त समारोह के साथ मनाते थे। एक वर्ष महोत्सव के पहले श्री गौरीदास पण्डित को किसी आवश्यक कार्यवश अम्बिका से बाहर जाना पड़ा। जाते समय वे महोत्सव आयोजन के लिए सामग्री संग्रह आदि का सारा कार्यभार श्रील हृदयानन्द जी के कंधों पर डाल गए। फाल्गुनी पूर्णिमा को केवल दो दिन ही रह गए थे। श्री गौरीदास पण्डित जी के वापिस न लौटने के कारण, श्रील हृदयानन्द जी अत्यन्त चिंतित हो गए। महोत्सव के लिए आवश्यक सामग्री का प्रबंध हो गया था परन्तु वैष्णव भक्तों तथा कीर्तन मण्डलियों को तब तक निमंत्रण नहीं भेजे जा सके थे। ऐसी परिस्थिति में महोत्सव कैसे सम्पन्न होगा, यह सोचकर श्रील हृदयानंद जी बेचैन हो गए। अंत में श्रील हृदयानन्द जी ने, श्री गुरुदेव जी के चरणारविंद का ध्यान करके उनके ही नाम से वैष्णव भक्तों तथा नाम संकीर्तन मण्डलियों के निकट महोत्सव के लिए निमंत्रण पत्र प्रेषित कर दिये।

महोत्सव की तैयारी भी कुशलतापूर्वक चलती रही। श्री गौरीदास पण्डित जी फाल्गुनी पूर्णिमा के पहले दिन रात्रि को अम्बिका लौट आये और महोत्सव की सारी तैयारी देखकर बहुत प्रसन्न हुए, किन्तु जब उनको पता चला कि श्रील हृदयानन्द ने उनसे पूछे बिना, उनकी अनुपस्थिति में उनके नाम से वैष्णवों तथा कीर्तन मण्डलियों को निमंत्रण प्रेषित कर दिये थे, तो वे क्रोधित हो उठे और श्रील हृदयानन्द जी से बोले–"हृदयानन्द ! तुमने मेरी अनुमति के बिना ही, मेरे नाम से निमंत्रण पत्र प्रेषित कर दिए। तुम्हारा यह कार्य तुम्हारी स्वतंत्र बुद्धि का ही परिचायक है। अतः तुम मेरे स्थान का परित्याग करके, दण्ड स्वरूप अन्यत्र निवास करो।"

बाह्ये क्रोध करि करे हृदये भर्त्सन।
मोर बिद्यमाने कैला स्बतन्त्राचरण।।
निमंत्रण पत्री पाठाइला जथा तथा।
जे केला से कैला एबे ना रहिबे एथा।।

–श्रीश्री भक्तिरत्नाकर (७/४१८)

(अर्थात् बाहर से क्रोध प्रदर्शित करके, श्रील हृदयानन्द की भर्त्सना करते हुए उन्होंने कहा कि "तुमने मेरे होते हुये स्वतंत्र आचरण करके यहाँ–वहाँ निमंत्रण पत्र भेज दिये हैं। जो किया सो किया, अब तुम यहाँ नहीं रहोगे।")

श्रीगुरुदेव के इन भर्त्सना भरे वचनों को सुनकर श्रील हृदयानन्द को यूं लगा मानों उनके मस्तक पर वज्राघात हो गया हो। उनका तालु सूख गया, कण्ठ रुद्ध हो गया और देह विवर्ण हो गई। श्रीगुरुदेव की मर्यादा क्षीण न हो, श्री गौरसुंदर का आविर्भाव महोत्सव समारोह सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाए, यह सोचकर ही उन्होंने श्रीगुरुदेव की अनुपस्थिति में निमंत्रण पत्र प्रेषित कर दिये थे। इसके लिए श्री गुरुदेव का क्रोध और उनके द्वारा अपने परित्याग का निर्देश, भाग्य का निर्मम परिहास ही तो था।

श्रीगुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करके, उनके चरणारविन्द का ध्यान करते हुए और लोचनों से अश्रुपात करते हुए, श्रील हृदयानन्द, श्रीगुरुदेव के मंदिर का त्याग करके गंगा किनारे आकर रहने लगे। वहाँ पर रहने का विशेष कारण यही था कि श्रीगुरुदेव गंगा स्नान के लिए आया करेंगे और चाहे दूर से ही सही, उनके श्री चरणों के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। ऐसे समय पर एक धनी भक्त, श्रील हृदयानन्द जी द्वारा प्रेषित निमंत्रण पत्र के आधार पर महोत्सव के लिए बहुत सारी सामग्री लेकर गंगा जी के उसी घाट पर उतरे, जिस पर श्रील हृदयानन्द जी वास करते थे। ये धनी भक्त जानते थे कि श्रील हृदयानन्द जी, श्री गौरीदास जी के प्रियतम शिष्य थे किन्तु वे इस बात से अनभिज्ञ थे कि श्रीगौरीदास पण्डित जी ने श्रील हृदयानन्द को अम्बिका से निष्काशित कर दिया था। वणिक ने श्रील हृदयानन्द जी से कहा–"देव ! मैं महोत्सव के लिए बहुत सारा सामान ले आया हूँ। आप कृपा करके इन सारे पदार्थों को स्वीकार करके मुझे कृतार्थ करें।" श्रील हृदयानन्द जी ने उसी क्षण, एक वैष्णव के हाथ, वणिक द्वारा महोत्सव के लिए सामान लाने की सूचना, अपने श्रीगुरुदेव के पास प्रेषित की। श्री गौरीदास जी पण्डित ने, श्रील हृदयानन्द जी का नाम सुनते ही क्रोधित होकर उपेक्षापूर्वक उन संदेशवाहक वैष्णव महोदय से कहा–"हृदयानन्द को कहो कि इन पदार्थों को मेरे पास भेजने

की आवश्यकता नहीं। हृदयानन्द उन पदार्थों से पृथक रूप से गंगा किनारे महोत्सव कर ले।"

शुनि बाह्ये क्रोध करि कहे कह गिया।
करुक उत्सब से सामग्री सब लैया।।

—श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (७/४२५)

(अर्थात् उन्होंने संदेश सुनकर बाहर से क्रोध प्रदर्शित करते हुए कहा कि हृदयानन्द से जाकर कहो कि उन द्रव्यों से वह स्वयं उत्सव कर ले।)

उन वैष्णव ने वापिस आकर श्रील हृदयानन्द जी से, श्री गौरीदास जी के वचनों को ज्यों का त्यों कह दिया। श्रील हृदयानन्द ने विचार किया कि चाहे गुरुजी ने क्रुद्ध होकर ही पृथक उत्सव करने का आदेश दिया था, लेकिन उनका आदेश अवश्य पालनीय ही था। इसलिए श्री गुरुदेव जी की इस आज्ञा का पालन करते हुए, श्रील हृदयानन्द जी ने गंगा किनारे पृथक उत्सव आयोजन के लिए चारों ओर निमंत्रण पत्र प्रेषित कर दिये। धनी वणिक द्वारा लाए गए सामान से महोत्सव की व्यवस्था होने लगी।

फाल्गुणी पूर्णिमा वाले दिन, श्री गौरीदास पण्डित ठाकुर ने श्रीश्री गौरसुन्दर का आविर्भाव महोत्सव श्री गौर नित्यानन्द मंदिर में और श्रील हृदयानन्द जी ने गंगा किनारे प्रारम्भ किया। अम्बिका में महोत्सव के लिए सहस्रों की संख्या में वैष्णव जनों का आगमन हुआ। श्री नाम संकीर्तन की मधुर ध्वनि से अम्बिका में जमीन—आसमान गूंज रहे थे। श्रीनाम की मधुर ध्वनि सुनकर, वैष्णव भावविह्वल होकर भूमि पर लोट—पोट हो रहे थे। चारों ओर आनन्द का वातावरण था। मध्याह्न् के समय उत्तम प्रकार से रसोई तैयार होने के उपरान्त, श्री गौरीदास पण्डित जी ने, श्री गौर नित्यानन्द को नैवेद्य अर्पित करने के लिए, पुजारी बड़े गंगादास जी को आदेश दिया। किन्तु श्री गंगादास जी ने श्री मंदिर के द्वार खोल कर ज्यों ही भीतर प्रवेश किया, वे विस्मित, भीत एवम् शंकित होकर चीत्कार करते हुए, श्री गौरीदास जी को पुकारने लगे। श्री गौरीदास जी ने तुरन्त आकर देखा और आश्चर्यचकित रह गए कि श्री गौर निताई के श्रीविग्रह मंदिर में नहीं थे।

सिंहासन रिक्त पड़ा था। पहले किमकर्त्तव्य विमूढ़ होने पर भी, श्री ब्रज के नर्म सखा श्री गौरीदास पण्डित जी, अपने अनुभव के आधार पर तुरन्त ताड़ गए कि प्रेमाधीन श्रीगौर नित्यानन्द जी उस समय कहाँ जा सकते थे। हालांकि श्री गौरसुन्दर ने श्री गौरीदास जी को वचन दिया था कि जब भी वे (गौरीदास जी) सेवा करेंगे, श्री गौर नित्यानन्द साक्षात् रूप से प्रकट होकर उनकी सेवा ग्रहण करेंगे, किंतु आज श्री गौरसुंदर ने अपने वचन को भंग कर दिया था। श्रीगौरीदास जी का हृदय प्रबल दुःख की ज्वाला से विक्षिप्त हो उठा कि उनके प्राण सर्वस्व, उनके आराध्य, उनके प्रिय सखा, उनको तज कर कहाँ चले गए? क्षुब्ध, व्यथित तथा कातर गौरीदास जी एक छड़ी हाथ में लेकर दोनों भाइयों को ढूँढ़ने के लिए निकल पड़े। प्रिय नर्म सखा के मन में आज ऐसे भाव आ गए कि–"तुम कहीं भी एक बार मुझे मिल जाओ, तुम्हारे इस कार्य के लिये आज मैं तुम्हें उचित दण्ड देकर ही रहूँगा।"

इधर श्री गुरुदेव के आदेश के अनुसार, गंगा किनारे श्रील हृदयानन्द द्वारा आयोजित फाल्गुणी पूर्णिमा का महोत्सव भी चल रहा था। प्रातःकाल से ही झुण्ड के झुण्ड वैष्णव आकर महोत्सव में योगदान कर रहे थे। श्री नाम संकीर्तन की मण्डलियाँ मधुर स्वर से श्रीकृष्ण नाम कीर्तन में लीन थीं। भावविह्वल वातावरण में वैष्णव एक दूसरे का आलिंगन करके अश्रुविसर्जन करने लगे। श्रील हृदयानन्द भी नाम के सुमधुर कीर्तन के साथ भावविह्वल होकर मधुर नृत्य करने लगे। श्रील हृदयानन्द जी के मनोहारी नृत्य का अवलोकन करके उपस्थित नर–नारी भी भावविभोर होकर अपनी सुध–बुध तथा अपना धीरज खो बैठे। श्रील हृदयानन्द के अंगों में स्वेद, कम्प, अश्रु आदि प्रकाशित होने लगे। उनके दोनों नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा प्रवाहित होकर उनके अंगवस्त्र को भिगोने लगी। सारा वातावरण कृष्णमय हो उठा। ऐसी अवस्था में भक्तवत्सल श्री गौर नित्यानन्द और स्थिर न रह सके और श्रील हृदयानन्द के प्रेमाकर्षण के वशीभूत होकर, श्री गौरीदास पण्डित के अम्बिका स्थित मंदिर से पलायन करके, श्रील हृदयानन्द जी के उत्सव के स्थान पर पहुँचकर, दोनों बाहें उठा–उठाकर, श्रील हृदयानन्द के साथ भावावेश में नृत्य करने लगे।

नितार्इ–चैतन्य दुइ प्रभु प्रेममय।
नाचे संकीर्तन मध्ये देखये हृदय।।
–श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (७/४२६)

(अर्थात् दोनों प्रेममय प्रभु श्री निताई–चैतन्य, संकीर्तन में नृत्य कर रहे थे और श्री हृदय चैतन्य देख रहे थे।)

गंगा के किनारे आज जैसे गोलोक का ऐश्वर्य प्रकाशित हो रहा था।

इधर श्री गौरीदास पण्डित छड़ी हाथ में लिए, श्रीगौर निताई को ढूँढते–ढूँढते गंगा किनारे आ गए। वहाँ उन्होंने क्या देखा कि श्री गौर निताई दोनों भाई, श्रील हृदयानन्द के प्रेमाकर्षण में आकर दोनों भुजाएँ उठा–उठा कर उनके साथ नृत्य कर रहे थे। श्री गौरीदास जी को हाथ में छड़ी लिए अपनी ओर आते देखकर, दोनों भाई डर गए। उन दोनों ने सोचा कि–"ब्रज के वही प्रिय नर्म सखा, हाथ में छड़ी लेकर आ रहे हैं। वचन भंग के अपराध के लिए, हम दोनों भाईयों को अवश्य ही दण्ड देंगे।" ऐसा सोचकर ऐश्वर्य का प्रकाश करके, एक स्वरूप में, वे दोनों शीघ्र ही अम्बिका के मंदिर को लौट गए तथा दूसरे स्वरूप में श्री गौरीदास से डरकर श्रील हृदयानन्द के हृदय में प्रवेश कर गए। दूर से ही श्रीगौरीदास जी ने सारे घटनाक्रम को प्रत्यक्ष देखा।

दुई भाई देखि पण्डितेर क्रोधाबेश।
अलक्षिते गिया कैल मंदिरे प्रबेश।।
चैतन्य चन्द्रेर एइ अद्‌भुत बिलास।
प्रबेशे हृदय हृदये देखे गौरी दास।।
–श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (७/४३८, ४३६)

(अर्थात् श्री गौरीदास जी ने देखा कि दोनों भाई, उनके क्रोधावेश को देखकर, अलक्षित रूप से एक स्वरूप में मंदिर में चले गए और एक स्वरूप में श्रील हृदयानन्द जी के हृदय में प्रवेश कर गए)

इस सारी अलौकिक घटना को प्रत्यक्ष देखकर, श्रीगौरीदास पण्डित जी ने अकस्मात् अपने हाथ की छड़ी को भूमि पर फेंककर, उन्मत्त

होकर श्रील हृदयानन्द जी को दृढ़ आलिंगन में जकड़ लिया।

प्रेम के अश्रुओं की धारा से उनका वक्षःस्थल प्लावित होने लगा। वाष्प–रुद्ध कण्ठ से वे कहने लगे–"हृदय ! तुम धन्य हो। धन्य है तुम्हारा प्रेमाकर्षण। स्वयं भगवान तुम्हारे प्रेमाकर्षण के कारण अपने द्वारा दिये हुए वचन को भंग करके आज तुम्हारे साथ नृत्य कर रहे हैं। तुम्हारे प्रति श्री गौर निताई की ऐसी कृपा के दर्शन करके मैं भी आज धन्य हो गया। कृतकृत्य हो गया।" वात्सल्य तथा स्नेह से भरे श्री गौरीदास, श्रील हृदयानन्द को चुम्बन प्रदान करने लगे। उन्होंने वाष्परुद्ध कण्ठ से श्रील हृदयानन्द से आगे यों कहा– "हृदय ! तुम्हारे प्रेमाकर्षण के कारण यहाँ आकर, श्री चैतन्य आज मेरे सम्मुख ही तुम्हारे हृदय में प्रविष्ट हो गए, इसलिए आज से तुम्हारा नाम होगा श्री हृदय चैतन्य।"

हृदयेर प्रति कहे तुइ धन्य धन्य।
आजि हइते तोर नाम हृदय चैतन्य।।

–श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (७/४४३)

(अर्थात् श्री गौरीदास पण्डित ने श्रील हृदयानन्द से कहा कि तुम धन्य हो। आज से तुम्हारा नाम होगा हृदय चैतन्य।)

प्रिय शिष्य के गर्व से गर्वित श्री गौरीदास पण्डित, श्रील हृदयानन्द को अम्बिका में लौटा लाये। अपनी एक मात्र कन्या श्रील हृदयानन्द को समर्पित करके, श्री गौरीदास पण्डित ने श्री गौर नित्यानन्द की सेवा भी उन्हीं को समर्पित कर दी।

दुःखी ने अम्बिका में श्री गौर नित्यानन्द की कथा तथा श्री हृदयचैतन्य की अलौकिक भक्ति रीति की कथा वैष्णवों के मुख से श्रवण कर रखी थी, जिसके कारण मन ही मन में उन्होंने श्री हृदयचैतन्य के चरणारविन्द में ही अपने आपको समर्पित कर दिया था। माता पिता से श्री गुरुचरणों का आश्रय ग्रहण करने का आदेश मिलने पर, श्री दुःखी अत्यन्त विनम्रता से कहने लगे–"पिता श्री ! अम्बिका में श्री गौरसुन्दर के परमप्रिय श्री गौरीदास पण्डित के प्रियतम शिष्य श्री हृदयचैतन्य अधिकारी ठाकुर ही मेरे आराध्य हैं और मैंने उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए अम्बिका में जाने

का मन बना लिया है। आप दोनों मुझे आशीर्वाद दीजिए कि श्री प्रभुपाद जी मेरे जैसे अभाजन को अपने सेवक के रूप में स्वीकार करलें।'' उनका पुत्र, श्री हृदय चैतन्य को, श्री गुरुदेव के रूप में वरण करना चाहता था, यह जानकर, श्री दुःखी के माता पिता दोनों अत्यन्त प्रफुल्लित हो गए। श्री हृदय चैतन्य के प्रति श्री गौरसुन्दर की अहैतुकी कृपा कथा से उस समय वैष्णव जगत के सभी लोग अवगत हो चुके थे और इस कारण श्री हृदय चैतन्य प्रभु के प्रति वे सब अत्यन्त श्रद्धा व भक्ति रखते थे। दुःखी द्वारा ऐसे सद्गुरु का चयन करने पर श्रीकृष्ण मण्डल जी तथा श्रीमती दूरिका देवी जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। मगर भगवद्सृष्ट माया की क्या असाधारण गति है? अपत्य स्नेह का क्या इन्द्रजालिक रूप है? श्रीकृष्ण मण्डल अपने मुख से ही दुःखी को सद्गुरु के चरणों का आश्रय ग्रहण करने की अनुमति प्रदान करने के बाबजूद भी, प्रिय पुत्र के विच्छेद की आशंका से भयभीत हो गये। प्रकट में उन्होंने कहा–"पुत्र ! अम्बिका का मार्ग अत्यन्त दीर्घ है। तुम अकेले इस कठिन मार्ग को पार करके अम्बिका कैसे जाओगे? इसके अतिरिक्त अम्बिका का मार्ग भी तुम्हारे लिए अज्ञात है तथा विपत्ति स्वरूप है। कितनी नदियाँ पार करनी पड़ेंगी। कितने भयानक पशुओं से परिपूर्ण वन आदि पार करने होंगे। उसके उपरान्त ही तुम अम्बिका नगरी में पहुँच सकोगे। इसलिए तुम्हें फिलहाल अम्बिका जाने का कार्यक्रम स्थगित कर देना चाहिए। भविष्य में उपयुक्त सुविधा देखकर ही इस स्थान के लिए प्रस्थान करना चाहिए।" अपने पिता के मनोभाव समझकर, दुःखी ने उत्तर दिया–"पिता जी, हमारे इस अंचल से बहुत सारे भक्तगण गंगा स्नान के लिए जायेंगे। मैं उन लोगों के साथ अनायास जा सकूँगा। इस लिए आप काल्पनिक भय से शंकित न होकर, प्रफुल्लित मन से मुझे अम्बिका जाने की आज्ञा प्रदान करें।" कोई अन्य उपाय न देखकर, श्रीकृष्ण मण्डल ने दुःखी को अम्बिका जाने की अनुमति तो दे दी परन्तु मन से वे बिल्कुल नहीं चाहते थे कि दुःखी प्रस्थान करें। इसलिए अपने आत्मीय परिजनों के माध्यम से परोक्ष रूप से दुःखी के अम्बिका जाने में विघ्न डालने लगे। उनके मन को इस भय ने घेर लिया कि जन्म से ही परम कृष्ण भक्त दुःखी कहीं कठोर वैराग्य का अवलम्बन करके, उन लोगों को त्यागकर सदा के

लिए न बिछुड़ जायें। भीषण वर्षा से जब नदी में उफान आता है तो उसके बेग को बालू के बांध बनाकर रोका नहीं जा सकता। वह प्रबल रूप से स्फीत नदी समुद्र के साथ मिलकर ही दम लेती है। कृष्ण प्रेम से स्फीत दुःखी को आत्मीय स्वजनों का किसी भी प्रकार का प्रतिरोध अम्बिका जाने से नहीं रोक सका। श्री गुरुदेव के चरणाश्रय के प्रबल आकर्षण से सारे विघ्नों का अतिक्रमण करके, अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिए दुःखी ने दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ने का फैसला कर लिया।

बिरक्त हइल चित्त कृष्ण पाइ कि प्रकारे।
अबश्य चाहिए आमि गुरु करिबारे।।

–प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् दुःखी का चित्त परम विरक्त हो गया। उन्होंने सोचा कि कृष्ण प्राप्ति के लिए उन्हें मार्गदर्शक के रूप में अवश्य ही गुरु का वरण करना चाहिए।)

द्वितीय अध्याय

अम्बिका में श्री गुरूचरणाश्रय

सन् १५५३ (ईसवी) के फाल्गुण मास की एक हिमशीतल रात्रि थी। घने कोहरे के कारण पृथ्वी सफेद चद्दर ओढ़े हुए प्रतीत हो रही थी। प्रभात होने में अभी देर थी। गृह के सभी लोग प्रगाढ़ निद्रा में थे, किन्तु संसार वीतरागी दुःखी के लोचनों में आज निद्रा कहाँ? बिना दूसरों को आभास दिये, निःशब्द रूप से गात्रोत्थान करके, दुःखी गृह से बाहर आ गए। भक्तिपूर्ण चित्त से अपने माता पिता के चरणों में मन ही मन प्रणाम करके, श्री गुरुदेव के चरणारविन्द का स्मरण करते हुए, मुख से श्रीकृष्ण नाम लेते हुए उसी कोहरे से ढकी अंधकारमय रात्रि में ही दुःखी ने अकेले ही अम्बिका की ओर प्रस्थान किया। श्री दुःखी जानते थे कि पुत्रवत्सल श्रीकृष्ण मण्डल अभी उनको किसी प्रकार भी अम्बिका जाने की अनुमति नहीं देंगे। इसलिए इन्होंने अंधकारमय रात्रि में ही गृह त्याग का मार्ग अपनाया। श्री कृष्ण चरणांरविन्द के प्रति तीव्र आकांक्षा के वशीभूत होकर, स्वर्ग से भी श्रेष्ठ, धन–जन से परिपूर्ण स्व–गृह का त्याग करके, छिन्न वस्त्र–परिधान करके वैरागी के वेश में ही वे अम्बिका के लिए प्रस्थित हुए।

रात्रि उठि संसार छाड़ि गेला दूरदेश।
सब दूर कैल, नैल बैरागीर बेश।।

–प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् रात्रि में उठकर संसार को छोड़कर बहुत दूर अम्बिका के लिए चल दिये। अपने विलास बहुल परिधान को त्यागकर दुःखी ने वैरागी का वेश धारण कर लिया।)

दुःखी के मन में यह भय भी घर कर चुका था कि कहीं श्री कृष्ण मण्डल आदमी भेजकर रास्ते से ही उन्हें पकड़ कर वापिस न बुलवा लें। इसलिए उन्होंने सीधे मार्ग को त्यागकर बहुत घूमकर जाने वाले वक्र मार्ग से चलना आरम्भ किया।

यह मार्ग बहुत लम्बा होने के साथ–साथ बहुत कष्टप्रद भी था। बहुत धनी परिवार में जन्म और पालन–पोषण होने के कारण, दुःखी कायिक कष्टों–क्लेशों से बिल्कुल अनभिज्ञ थे, फिर भी वे इन कष्टों को सहन करते हुए, कभी किसी गाँव में, कभी किसी देवालय में, कभी किसी निर्जन स्थान में, कभी किसी वृक्ष के मूल में ही रात्रिवास करते हुए आगे बढ़ते गए। रास्ते में जो भी फल आदि अनायास प्राप्त हो जाता, उसी से पेट भर लेते थे। बांए हाथ के सीधे पथ को छोड़कर वक्रपथ से दक्षिणोत्तर मुखी होकर चलते–चलते, नारादेव पारकर, मिदनापुर के मार्ग से वे खानाकुल कृष्ण– नगर में, श्रीअभिराम गोस्वामी के श्रीपाट में आ उपस्थित हुए। वहाँ श्री गोपीनाथ जी के मनोहारी श्रीविग्रहों के दर्शन करके दुःखी जी गद्‌गद् हो गये। उसके उपरांत मार्ग में केवल सुमधुर श्रीहरिनाम पान करते हुए, भूख प्यास सब कुछ भुला कर क्रमशः चलते–चलते वे चिराकांक्षित गंतव्य स्थान अम्बिका में आ पहुँचे।

यह संध्या का समय था। अम्बिका के घर–घर में पवित्र मंगलमय शंखध्वनि हो रही थी तथा गृहणियां, धूप दीप लेकर तुलसी मंचों के निकट, श्री वृन्दा जी को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर रही थीं। ऐसे समय में एक देवालय से शंख, घण्टा, कांसर, मृदंग, करताल एवम् संध्या आरती के पद की मधुर ध्वनि ने दुःखी के कर्ण–कुहरों में प्रवेश किया। एक अम्बिका निवासी से जिज्ञासा करने पर, उन्हें मालूम हुआ कि श्रील हृदय चैतन्य सेवित श्री श्री गौर–नित्यानन्द के श्रीमंदिर से ही आरती की वह मधुर ध्वनि आ रही थी। दीर्घ पथ अतिक्रमण करने के कारण श्रांत–क्लान्त दुःखी को जब यह मालूम हुआ कि वे अपने चिराकांक्षित गंतव्य स्थान के पास पहुँच गए थे, तो आनन्दोल्लास से उनका सर्वांग पुलकित हो उठा। वे उस सुमधुर आरती की ध्वनि को श्रवण करते–करते ऊर्ध्वश्वास में उस ओर दौड़ने लगे।

दुःखी श्री गौर–नित्यानन्द के मंदिर में आ उपस्थित हुए। श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर स्वयं श्री गौर नित्यानंद की संध्या आरती कर रहे थे। शंख, घंटा, कांसर आदि की मधुर ध्वनि के साथ भक्तगण मृदंग, करताल, वेणु, वीणा यंत्र आदि वाद्ययंत्र लेकर, भावविह्वल चित्त से संध्या आरती के पद गा रहे थे। मंदिर के अभ्यंतर भाग में रत्नवेदी के ऊपर रत्न

सिंहासन पर श्री गौरीदास पण्डित की प्रेमसेवाधीन श्रीगौर नित्यानन्द के श्रीविग्रह भुवन को आलोकित करते हुए विराजमान थे। उनके श्रीअंग के प्रकाश से करोड़ों शशधरों एवं करोड़ों बाल सूर्यों की स्निग्ध ज्योति भी पराभूत हो रही थी। श्री गौर नित्यानन्द की इस असमौर्ध्व रूप राशि के दर्शन करके, भावविभोर होकर दुःखी आत्मविस्मृत हो गए एवं अतिशय सुख के कारण नृत्य करने लगे।

से सुखे डूबिल चित्त लागिल हियाय।

—प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् उस सुख में उनका चित्त डूब गया। वह सुख उनके हृदय को स्पर्श कर गया।)

रात्रि का एक प्रहर व्यतीत हो गया। प्रसाद ग्रहण करने का समय आने पर, वहाँ के सेवक समागत वैष्णवों को अत्यन्त आदर के साथ पंगत करने के निर्दिष्ट स्थान पर ले गए। एक सेवक, श्री दुःखी का परिचय प्राप्त होने पर, उनको भी प्रसाद ग्रहण करने के लिए बुलाकर अंदर ले गया। अंदर जाकर दुःखी ने देखा कि उनके आराध्य, प्राणों के ठाकुर, श्रील हृदय चैतन्य कई मूर्ति वैष्णवों के साथ इष्ट गोष्ठी कर रहे थे। श्रीकृष्ण कथा रस में वे कभी हंस रहे थे तो कभी रो रहे थे।

देखिल ठाकुर बैष्णब गण सने बसि।
कृष्ण कथा कहे क्षणे कांदे क्षणे हासि।।

—प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् दुःखी ने देखा कि श्रील हृदय चैतन्य वैष्णवों के साथ श्रीकृष्ण कथा कहते हुए कभी हंस रहे थे और कभी रो रहे थे।)

धीर, स्थिर, शान्त, सौम्य, भाव–विह्वल, दया की प्रतिमूर्ति, श्रील हृदय चैतन्य के दर्शन करके, दुःखी ने उनको साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। एक सेवक द्वारा प्रभुपाद जी के साथ दुःखी का परिचय करवाये जाने पर, प्रभुपाद ने दुःखी की ओर स्नेहसिक्त लोचनों से निहार कर, उनको प्रसाद सेवन करने के उपरान्त, विश्राम करने का आदेश दिया।

प्रसाद सेवन करके दुःखी शयनागार में गये किन्तु उनको निद्रादेवी आकर्षित न कर सकीं। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु की उस भावगम्भीर प्रशांत

मूर्ति का स्मरण करके, वे उद्विग्न चित्त से सोचने लगे कि करुणा के सागर श्री गुरुदेव क्या सचमुच उनको अपने सेवक के रूप में स्वीकार कर लेंगे? क्या उनके प्रति श्री गुरुदेव की कृपा का वर्षण नहीं होगा? वे किस प्रकार अपने मन की बात गुरुदेव के सम्मुख प्रकाशित कर सकेंगे? इस प्रकार सोचते–सोचते श्रांत क्लान्त दुःखी बहुत देर बाद, संशय युक्त चित्त लेकर, गम्भीर निद्रा से आच्छन्न हो गये।

निशा का अवसान हुआ। उषा की अरुण प्रभा से विमण्डित होकर प्राची दिशा प्रकाशित होने लगी। पक्षी कुल तरु की डालों पर बैठकर सुमधुर स्वर से सुप्रभात का जयगान करने लगे। इस मधुर बेला में दुःखी ने श्री गुरुचरणारविन्द का ध्यान करके शय्या से गात्रोत्थान किया। इसके उपरान्त शीघ्रता से वे अपने प्रातः कालीन कृत्यों का समापन करके एक सम्मार्जनी (सोहनी) लेकर, रास मण्डप आदि का संस्कार करने लगे। संस्कार करते हुए वे कोमल कण्ठ से इस प्रकार गा रहे थे–

भज गौरांग कह गौरांग लह गौरांगेर नाम रे।
जे जन गौरांग भजे से हय आमार प्राण रे।।

(अर्थात् गौरांग का भजन करो, गौरांग कहो, गौरांग का नाम लो। जो गौरांग का भजन करता है, वह मेरा प्राण स्वरूप हो जाता है।)

इसी समय ठाकुर श्रील हृदय चैतन्य आश्रम से बाहर आये। उन्होंने नवागत दुःखी को एकनिष्ठ होकर सेवा करते देखा। उनकी सेवा निष्ठा के दर्शन करके, श्री गुरुदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए। गुणी व्यक्ति अनायास ही दूसरे गुणी व्यक्ति को पहचान लेते हैं, जैसे जौहरी कांच के टुकड़ों में पड़े हीरे को पहचान लेता है। श्रील हृदय चैतन्य ठाकुर भी इस नवागत युवक को देखते ही पहचान गए। उन्हें तत्क्षण मालूम हो गया कि वे नवयुवक (दुःखी) भजन के योग्य पात्र थे। श्रील हृदय चैतन्य ठाकुर के दर्शन करते ही दुःखी ने सोहनी को एक तरफ रखकर, शीघ्रता से उनको साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया।

श्री दुःखी रासमण्डप आदि की सेवा में ही लगे रहने लगे। थोड़े दिन के पश्चात् उनकी सेवानिष्ठा देखकर प्रसन्न श्रील हृदय चैतन्य जी ने उनको अपने पास बुलाया। श्री दुःखी ने श्री गुरुदेव के पास आकर उनको

साष्टांग प्रणाम किया और भूमि पर दृष्टि रखते हुए हाथ जोड़कर उनके एक ओर खड़े हो गए। दुःखी की ऐसी भक्तोचित दीनता एवम् शांत स्वभाव देखकर, श्रील हृदय चैतन्य का हृदय वात्सल्य स्नेह से परिपूर्ण हो गया। अति स्नेहसिक्त कण्ठ से उन्होंने दुःखी से प्रश्न किये—"वत्स ! तुम्हारा नाम क्या है? तुम कहाँ से आये हो? इस संसार में तुम्हारा कौन कौन है?"

श्रील हृदय चैतन्य जी के प्रश्नों के उत्तर में श्री दुःखी ने धीरे-धीरे यों कहा—

पृथ्वी ते केह नाइ हइ जन्म दुःखी।
चरण दर्शन करि हइयाछि सुखी।।

—प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् इस पृथ्वी पर मेरा कोई नहीं है। मैं जन्म से दुःखी हूँ। मगर आपके चरणों के दर्शन करके मैं अब सुखी हूँ।)

"प्रभु ! मेरा पितृदत्त तथा पड़ोसियों द्वारा प्रदत्त नाम दुःखी है। मगर आपके श्री चरणों के दर्शन करने के पश्चात् मैं अब दुःखी नहीं रह गया अपितु अब त्रिलोकी में, मैं सर्वापेक्षा सुखी हो गया हूँ। इस स्थान से दक्षिण दिशा में धारेन्दा नामक गाँव में मेरा निवास है।"

दुःखी जानते थे कि माता पिता तथा भ्राता, भगिनी (भग्नी) आदि के साथ सम्बन्ध, केवल मात्र इस जन्म के थे किन्तु श्री गुरुदेव के साथ उनका सम्बन्ध जन्म जन्मान्तर का था। इसलिए हाथ जोड़कर उन्होंने आगे कहा—"हे गुरुदेव! आपके चरणारविन्द को छोड़कर मेरा इस संसार में कोई नहीं है। आपके सुशीतल चरणारविन्द ही मेरा एक मात्र आश्रय हैं।"

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु दुःखी के इन वचनों को सुनकर, अत्यन्त प्रसन्न हुए एवं कहने लगे—"वत्स ! तुम्हें कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं। तुम मेरे पास रहकर श्री गौर-नित्यानन्द के पुजारी के रूप में उनकी सेवा करो।"

अपूर्व बालक देखि बड़ सुख पाइल।
पुजारी सेबा ते थाक आपने कहिल।।

—प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् इस अपूर्व बालक को देखकर श्रील हृदय चैतन्य अत्यन्त

प्रसन्न हुए और उसे श्री गौर नित्यानन्द की, पुजारी के रूप में सेवा करने का आदेश दिया।)

एक दिन श्रील हृदयचैतन्य प्रभु मंदिर में बैठे हुए थे तथा दुःखी दत्त–चित्त होकर अपना सेवा कार्य कर रहे थे। श्रील हृदयचैतन्य प्रभु उनकी सेवा निष्ठा और सेवा–परिपाटी का अवलोकन करके बहुत ही हर्षित हुए। दुःखी को अपने निकट बुलाकर वे बोले–"वत्स ! बिल्कुल सत्य बताओ कि क्या सचमुच इस संसार में तुम्हारा कोई नहीं है? तुम किसके सेवक हो और कौन से परिवार से तुमने दीक्षा ग्रहण की है?"

पूर्वोक्त प्रश्नों को सुनकर दुःखी के नेत्रों में अश्रु आ गए। उन्होंने हाथ जोड़कर उत्तर दिया–"प्रभु ! आपके श्रीचरणों को छोड़कर मेरी कोई अन्य गति नहीं। यदि आप कृपा करके मुझे अपने चरणों की सेवा में नियुक्त करेंगे तभी मेरा मनुष्य जीवन सार्थक व सफल होगा।" यह उत्तर सुनकर श्रील हृदय चैतन्य प्रभु दुःखी की मनोभावना समझ गये परन्तु उन्होंने सहसा कोई अन्य प्रश्न और मन्तव्य प्रकट नहीं किया। वे केवल हंस भर दिये।

श्रील् गोपाल भट्ट गोस्वामी पाद द्वारा रचित श्रीश्रीहरिभक्तिविलास ग्रंथ में लिखा है कि दीक्षा से पूर्व गुरुदेव व शिष्य एक वर्ष तक एकत्र रह करके, पहले एक दूसरे को समझते हैं। अमात्यज दोष जैसे नृपति में तथा भार्याजात पातक जैसे निज पति पर आ जाता है, उसी प्रकार शिष्य द्वारा अर्जित पातक पुंज भी श्री गुरुदेव को अवश्य ही प्राप्त होते हैं। शिष्य की उत्तम रूप से परीक्षा करने के उपरांत, शिष्य द्वारा मंत्र रक्षा करने का उपयुक्त विवेचन करके ही, शिष्य को मंत्र प्रदान करना चाहिए। शुष्क भूमि में बीज रोपण करने से वह बीज अंकुरित नहीं होता। अगर येन केन प्रकारेण हो भी जाये तो सम्बंधित वृक्ष अधिक पुष्ट नहीं होता अर्थात् कमज़ोर रह जाता है और उत्तम फल प्रदान नहीं करता। इस तथ्य को ध्यान में रखकर श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने कुछ समय तक दुःखी की हर प्रकार से परीक्षा करने के उपरान्त, उनकी सर्वोपयुक्तता विवेचना करके, ईसवी सन् १५५३ में उनको श्री हरिनाम महामंत्र प्रदान किया एवं अपनी सेवा का अधिकार भी दिया।

कृपा हैल प्रभुर डाकिला निज सन्निधाने।
मस्तक धरिया हरिनाम दिला काने।।

—प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने कृपा करके दुःखी को निकट बुलाकर, सिर पर हाथ रखकर, उनके कान में श्रीहरिनाम दिया।)

मंत्र ग्रहण करने के उपरान्त, दुःखी अम्बिका में ही रहकर श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार मंदिर तथा रासमण्डप आदि का परिछन्नतापूर्वक मार्जन आदि करने लगे।

क्रमशः दुःखी का अम्बिका में अवस्थान करने का एक वर्ष पूर्ण होने को आया। निष्ठापूर्वक श्रीगौर नित्यानन्द के श्रीविग्रहों की सेवा, श्री मंदिर आदि का मार्जन तथा प्रेमपूर्वक श्री हरिनाम महामंत्र का जप आदि करते करते, ईसवी सन् १५५४ की फाल्गुण पूर्णिमा तिथि आ गई। कलियुग पावनावतार एवं श्रीराधाकृष्ण के मिलित श्रीविग्रह, श्री गौर सुन्दर का पावन आविर्भाव बासर। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने दुःखी को श्रीकृष्ण मंत्र की दीक्षा प्राप्त करने की अनुमति दे दी। दुःखी का हृदय आनन्द से हिलोरें लेने लगा। लम्बे एक वर्ष के उपरान्त उनके मन की अभिलाषा पूर्ण होने जा रही थी। श्री गुरुदेव उनको दीक्षा प्रदान करने वाले थे। दुःखी ने शीघ्रतापूर्वक गंगाजी में स्नान करके, शुद्ध वस्त्र पहिने और श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के चरणारविन्द में जाकर श्रद्धापूर्वक साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने अत्यन्त शुभक्षण देखकर, श्री दुःखी के दक्षिण कर्ण में श्रीकृष्ण मंत्र प्रदान किया।

कृष्ण मंत्र कृपा कैल माथे हात धरि।
शतबार जपिबा मंत्र कृष्ण ध्यान करि।।

—प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् माथे पर हाथ रखकर श्रीकृष्ण मंत्र प्रदान किया तथा श्रीकृष्ण का ध्यान करके एक सौ बार जपने को कहा।)

श्रीकृष्ण मंत्र की दीक्षा प्रदान करने के बाद श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने दुःखी का नामकरण किया दुःखी कृष्ण दास।

आजि हैते तोमार नाम दुःखी कृष्ण दास।
सेबा कर मोर एइ स्थाने करि बास।।

–प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् आज से तुम्हारा नाम दुःखी कृष्ण दास हुआ। तुम मेरे इस स्थान पर रहकर सेवा करते रहो।)

दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् दुःखी कृष्ण दास का श्रीकृष्णानुराग शुक्लपक्ष के मयंक की भान्ति बढ़ने लगा। आहार, निद्रा, विश्राम सब त्याग कर के, दिवारात्र अविराम श्रीकृष्ण प्रेमामृत पान करते करते दुःखी मस्त हो गए। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु भी अत्यन्त स्नेहपूर्वक श्री कृष्ण दास को सख्य भाव के भजन के गुप्त तत्त्वों का उपदेश देने लगे। श्रीकृष्णदास की अतुलनीय भक्ति रीति की कथा धीरे–धीरे सारे वैष्णव जगत में चर्चा का विषय बन गई।

तृतीय अध्याय

श्रीश्यामानन्द प्रभु जी के तीर्थ पर्यटन

श्री कृष्ण मंत्र की दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त श्रीकृष्ण दास धीरे–धीरे अन्तर्मुखी होने लगे। श्रीगुरु चरणारविंद की सेवा, श्री गुरुदेव के निर्देश के अनुसार तन्मय होकर भजन, अहर्निश श्री नाम जप, श्री कृष्ण लीलाओं का श्रवण आदि भक्ति के अंगों का अनुष्ठान करके भी जैसे उनकी पिपासा मिट नहीं रही थी। यों लगता था जैसे कहीं अपूर्णता थी। वे मन ही मन चाहने लगे कि वे श्रीधाम वृन्दावन सहित भारत के सभी तीर्थों की यात्रा करें। वे सोचने लगे कि इसके फलस्वरूप कहीं उनको शान्ति प्राप्त हो जाय किन्तु लज्जा तथा संकोचवश वे अपने इस अंर्तद्वंद्व के विषय में श्री गुरुदेव से भी निवेदन नहीं कर पा रहे थे। फिर वे मन ही मन सोचने लगे कि श्री गुरुदेव के चरणारविंद की सेवा करने मात्र से ही सारे तीर्थों की यात्रा के फल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए तीर्थों की यात्रा करने की कोई आवश्यकता नहीं। फिर भी वे अनुभव करते रहते थे कि तीर्थ यात्रा का आकर्षण उनके मन को अत्यन्त चंचल और अधीर बनाता जा रहा था। तीर्थ गमन की अदमित वासना बहुत यत्न करने पर भी दब नहीं रही थी, जिसके कारण श्रीकृष्णदास की अशांति बढ़ती गई।

भक्तवांछाकल्पतरु भगवान अपने एकान्त भक्तों की इच्छाओं को अवश्य पूर्ण करते हैं किन्तु ऐसे कौशल से पूर्ण करते हैं कि उनकी अनिर्वचनीय कृपा की कथा को स्मरण करके भक्तगण भाव विह्वल हो जाते हैं। श्रीकृष्णदास के हृदय में तीव्र और बलवती होती तीर्थ दर्शन की इच्छा के दिनों में एक दिवस श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने स्नेहयुक्त स्वर से श्रीकृष्णदास को अपने निकट बुलाकर एक अकल्पनीय आदेश प्रदान किया, जो इस प्रकार था–

उत्कले बैष्णब कर सर्ब घेर घर।।

तोमार कृपाय हबे तोमार समान।
हेन जन उत्कले हैला सन्निधान।।
तारे लय सर्ब जीबे कर प्रेमदान।
चैतन्येर आज्ञा हरे कृष्ण षोल नाम।।

—श्रीश्री रसिक मंगल (पूर्व ४६—५१)

(अर्थात् उत्कल प्रदेश के घर घर में सबको वैष्णव धर्म में दीक्षित करो। वहाँ तुम्हारे समान, श्री कृष्ण के एक प्रिय जन का आविर्भाव हो चुका है। उनको साथ लेकर सब जीवों को प्रेम भक्ति का दान करो। श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार सभी जैसे हरे कृष्ण नाम ग्रहण करें।)

यहाँ पर सर्वज्ञ प्रभु श्रील हृदय चैतन्य ने श्री रसिकानन्द प्रभु के प्राकट्य की ओर इंगित किया है। परवर्तीकाल में श्रीकृष्णदास ने, श्री अनिरुद्ध के अवतार श्री रसिकानन्द प्रभु को साथ लेकर कैसे उत्कल देश के घर घर में जाकर श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा प्रचारित गोलोक के प्रेमधन, श्री हरिनाम संकीर्तन का प्रचार किया था, वह सब इस ग्रन्थ के परवर्ती अंश में आलोच्य है।

श्री गुरुदेव ने जब श्रीकृष्ण दास को उत्कल में जाने का आदेश दिया, तब वे मन ही मन सोचने लगे कि गुरुदेव जब स्वयं ही उनको अपनी चरणसेवा से वंचित करके उत्कल देश में जाने का आदेश दे रहे थे तो इस अवसर का लाभ उठाते हुए, उनसे तीर्थ पर्यटन के लिए अनुमति के लिए प्रार्थना करना असंगत नहीं होगा। इधर जब श्रील हृदय चैतन्य जी उनको उत्कल में धर्म प्रचार करने का महान दायित्व सौंपने लगे, तब वे अत्यन्त लज्जित भी हुए। वे भगवान के नित्यसिद्ध परिकर होने के बाबजूद, वैष्णवोचित दीनता के कारण, यह भी सोचने लगे कि उन जैसे अधम व अयोग्य व्यक्ति को किस कारण श्री गुरुदेव इतना वृहत् गुरुदायित्व सौंप रहे थे। किन्तु श्री गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करके उत्कल में नाम व प्रेम का प्रचार करने जाने से पूर्व, श्रीकृष्णदास ने श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के चरणों में इस प्रकार निवेदन किया—

मोरे कृपा कर प्रभु सुबल नंदन।
मोर मने साध आछे तीर्थ पर्यटन।।

–श्रीश्री रसिक मंगल (पूर्व २/५४)

(अर्थात् हे श्री गौरीदास पण्डित सुबल के प्रिय शिष्य ! मेरे मन में तीर्थ पर्यटन की तीव्र अभिलाषा है।)

उन्होंने यह निवेदन किया कि, "अगर आप की आज्ञा हो तो मैं श्रीधाम वृन्दावन सहित भारत के सारे तीर्थों का दर्शन करना चाहता हूँ।"

श्री कृष्णदास के मन की श्रीधाम वृन्दावन के दर्शन की अभिलाषा को जानकर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने उनको प्रसन्न चित्त से इसके लिए अनुमति प्रदान कर दी। उन्होंने अनुमति प्रदान करते हुए कहा कि–"हे वत्स ! श्री वृन्दावन धाम सब तीर्थों का सार है। स्वयं ब्रजेन्द्र नन्दन श्रीकृष्ण ने श्रीमती राधारानी तथा ब्रजगोपियों को साथ लेकर, वृन्दावन की गली–गली, कुञ्ज–कुञ्ज में, नील यमुना के किनारे, गिरिराज गोवर्धन की तलहट्टी में अद्भुत मार्धुयमयी लीलाएँ की थीं। इसलिए तुम निश्चित रूप से श्री वृन्दावन के दर्शन करने के लिए जाओ।"

दुःखी श्रीकृष्णदास, श्री गुरुदेव से अनायास ही तीर्थ यात्रा की अनुमति मिल जाने से आनन्द से उल्लसित हो उठे परन्तु श्री गुरुदेव के चरणारविंद से होने वाले विच्छेद के कारण उनका हृदय दुःख से भी विदीर्ण होने लगा। वे गुरुदेव के चरणारविंद को अपने वक्षःस्थल पर धारण करके, व्याकुल होकर रोने लगे। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने उनको नाना प्रकार से स्रान्त्वना प्रदान करके तीर्थाटन के लिए उद्‌बुद्ध किया एवं श्री गौर नित्यानन्द की आशीर्वाद प्रार्थना करने के लिए उनको मन्दिर में ले गए। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने श्री गौर–नित्यानन्द के श्री चरणों में श्रीकृष्णदास जी के मंगल के लिए प्रार्थना की तथा ठाकुर जी का प्रसादी वस्त्र लाकर उनके सिर पर बांध दिया। श्री गुरुदेव एवं श्री गौर–नित्यानन्द का आशीर्वाद प्राप्त करके, श्रीकृष्णदास जी पुनः पुनः श्री गुरुदेव तथा प्रभु द्वय को प्रणाम करके, अत्यन्त दीन हीन भेष में तीर्थ दर्शन करने के लिए, ईसवी सन् १५५४ में मात्र १६ वर्ष की अवस्था में, बिल्कुल अकेले ही, निःसहाय तथा निःसम्बल अवस्था में अम्बिका से वृन्दावन के लिए निकल पड़े। मुख में सर्वदा

श्रीकृष्ण नाम, अन्तर में श्रीकृष्ण चिन्तन तथा मन में तीव्र उत्कण्ठा लिये, वे आगे बढ़े जा रहे थे। मार्ग में जो कुछ अनायास प्राप्त हो जाता, उसी से येन–केन प्रकारेण, उदर पूर्ति कर लेते। कभी अन्न, कभी फल, कभी कन्द मूल तथा कभी केवल जल मात्र आहार करके ही, श्रीकृष्ण के चिन्तन में भावविह्वल, श्रीकृष्णदास एक के बाद एक तीर्थों का दर्शन करने लगे।

वे पहले वक्रेश्वर एवं वैद्यनाथ के दर्शन करके फिर गया क्षेत्र में उपस्थित हुए। गया में श्री विष्णु पादपद्मों के दर्शन करके, भावविह्वल होकर वे आनन्द के आवेग में नृत्य करने लगे। गया से काशी जाकर उन्होंने दशाश्वमेध घाट पर स्नान किया और फिर बाबा विश्वनाथ के दर्शन किये। परम वैष्णव बाबा विश्वनाथ के दर्शन करके, श्रीकृष्णदास जी ने भक्तिपूर्ण चित्त से उनको बारम्बार प्रणाम किया। फिर वे प्रयाग पहुँच गए। वहाँ पर गंगा, यमुना, सरस्वती के संगम स्थान पर स्नान करके वे अपने को धन्य और कृतार्थ मानने लगे। प्रयाग से वे ब्रज के लिए निकल पड़े। चलते–चलते वे क्रमशः मथुरा नगरी में आ पहुँचे। कलकल निनाद से प्रवाहित श्रीकृष्ण प्रेयसी नील यमुना के दर्शन करके वे अपने आपको धन्यातिधन्य मानने लगे और भावविह्वल होकर, उन्होंने उसमें अवगाहन स्नान किया।

श्री यमुना जी के वक्ष में श्रीराधा श्यामसुन्दर जी की माधुर्यमयी लीलाओं का स्मरण करके वे अश्रु विसर्जन करने लगे। फिर वे गोवर्धन गए। श्री गिरिराज जी के दर्शन करके उन्हें श्री श्यामसुन्दर जी के द्वारा की गई विभिन्न लीलाओं का स्मरण हो आया। सात दिन तक वामहाथ की कनिष्ठ अंगुली पर विशाल गिरिराज पर्वत को धारण करके, देवराज इन्द्र का दर्प चूर्ण करने जैसी लीलाओं का स्मरण होते ही, श्रीकृष्ण दास जी भावावेश में आकर नृत्य करने लगे तथा भक्तिपूर्ण चित्त से गिरिराज गोवर्धन की स्तुति करने लगे, यथा–

सप्ताह मेवाच्युत हस्त पंकजे, भृंगायमानम फल मूल कन्दरैः।
संसेव्यमानम हरिमात्म वृन्दकै गोवर्धनाद्रिमशिरसा नमामि।।

–श्री मनोहर भजन दीपिका

श्री गिरिराज जी की परिक्रमा के समय उन्हें श्री राधाकुण्ड तथा

श्री श्यामकुण्ड दृष्टिगोचर हुए। अमृत मधुर वारि, प्रस्फुटित मनोहर कमलों से परिपूर्ण तथा पंक्तिबद्ध कुंजों से घिरे इन कुण्ड द्वय का दर्शन करके वे अपने चक्षुओं को धन्य तथा सफल अनुभव करने लगे। दोनों कुण्डों के चिन्मय जल का स्पर्श करके, वे दुष्पार भव सागर को गोखुर के छोटे से खड्डे के समान लंघ्य समझने लगे। वे दोनों कुण्डों को भक्ति सहित प्रणाम करके करबद्ध होकर प्रेमरस से सिक्त–चित्त से निम्नलिखित श्लोकों का पाठ करने लगे–

श्री कृष्ण कुण्ड यमदण्ड विखण्ड शौण्ड
माम् मण्ड्याद्य निजचण्ड प्रताप वृन्दैः।
यैः पापराशि परिताप कुलम् विधूय
श्री कृष्ण चन्द्र पदसेवन भाजनम् स्याम।।

–श्री श्री बिन्दु प्रकाश (३२)

(अर्थात् हे श्यामकुण्ड! तुम यम के दण्ड को खंड–खंड करने में अत्यन्त दक्ष हो। तुम मुझे भी शोभित करो, जिस की सहायता से मैं अपनी समस्त पापराशि और परितापों को दग्ध करके, श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा करने की योग्यता प्राप्त कर सकूँ।) तथा

दूरान्निशम्य महिमानमतीव रम्यम्
गान्धर्विका सरसि दीन जनाश्रयम् तम्।
प्राप्तोऽस्मि ते सविधमत्र तथा तनुत्वम्
कारुण्य मीशयुगलम श्री मयिसतकृपम स्यात्।।

–श्रीश्री बिन्दुप्रकाश (३३)

(अर्थात् हे राधाकुण्ड ! दीन दुखियों के एक मात्र आश्रय! तुम्हारी रमणीय महिमा को दूर से श्रवण करके, तुम्हारे निकट आया हूँ। अब तुम मुझ पर ऐसी कृपा करो, जिससे युगल श्री राधाकृष्ण मेरे प्रति कृपावान हो जायें।)

श्रीकृष्णदास क्रमशः गोकुल, द्वादशवन आदि का भ्रमण करके, आविष्ट चित्त से दर्शन करने लगे। श्रीकृष्णानुराग में सराबोर होकर कभी वे धीरे–धीरे तथा कभी अत्यन्त द्रुत गति से ब्रज मण्डल की लीला स्थलियों का दर्शन कर रहे थे। ब्रजमण्डल की सारी लीला स्थलियों का दर्शन करने

के बाद, उन्होंने पाण्डवों की नगरी हस्तिनापुर का भी दर्शन किया। हस्तिनापुर से वे द्वारिकापुरी चले गए, जहाँ श्री रणछोड़ राय जी के दर्शन करके वे प्रफुल्लित हो उठे। श्रीकृष्णदास जी हर समय अकेले ही भ्रमण कर रहे थे, ऐसा नहीं था। तीर्थों में बहुत से स्थानों पर सहयात्री भी मिल जाते थे, किन्तु कठोर वैराग्ययुक्त कृष्णदास, देहज्ञान शून्य होकर कभी पूर्व दिशा में तो कभी पश्चिम दिशा में, कभी उत्तर तो कभी दक्षिण दिशा में अनिर्दिष्ट रूप से भ्रमण कर रहे थे, जिसके फलस्वरूप उनके सहयात्री बहुत प्रयास के बाबजूद भी उनके साथ नहीं चल पा रहे थे।

कुछ दिन द्वारिका में अवस्थान करने के उपरान्त, श्रीकृष्णदास जी गंगासागर में कपिल मुनि के आश्रम को गये। गंगासागर से वे मत्स्य तीर्थ, शिव कांची, विष्णु कांची, कुरुक्षेत्र, पृथुदक, बिन्दु सरोबर आदि होकर प्रभास तीर्थ गये। तीर्थ दर्शन के आनन्द से वे कोई क्रम न रखकर, जिस किसी तीर्थ का नाम सुनते, उधर ही चल देते थे। इस प्रकार वे त्रीतकुपायन, विशाला, ब्रह्मतीर्थ, चन्द्रतीर्थ, प्रतिस्रोता, प्राची, सरस्वती, नैमिषारण्य आदि के दर्शन करके, अयोध्या पहुँच गए। वहाँ भगवान श्री रामचन्द्र जी की लीला स्थलियों के दर्शन करके वे बहुत ही आनंदित हुए। सरयु, कौशिकी, पौलत्स्य आश्रम, गोमती, गण्डकी तथा महेन्द्र पर्वत होते हुए वे हरिद्वार पहुँच गये। हरिद्वार से बद्रिकाआश्रम पहुँच कर, वे बद्रीविशालजी के दर्शन करके प्रफुल्लित होकर नृत्य करने लगे। बद्रीनाथ क्षेत्र के अन्य दर्शनीय स्थानों के दर्शन करके नयनों के जल से वक्षःस्थल को प्लावित करते हुए वे चम्पा, भागीरथी, सप्तगोदावरी, धेनु तीर्थ, श्रीपर्वत, द्राविड़ नगरी, वैंकटाद्रिनाथ, कामकोटिपुरी, कांची, दक्षिण मधुपुरी, कृतमाला, ताम्रपर्णी, मलय पर्वत, अगस्त्य यज्ञशाला, कलिंग, अनंतपुर, पंचअप्सरा सरोवर, गोकर्णाक्ष, कुलानक, त्रिगर्त, दुर्वेषण, आर्या, निर्विंध्या, पयोस्विनी धाम, रेवा, माहिष्मति पुरी, मलयतीर्थ, सुरपारक, प्रतिचीरी होकर सेतुबंध रामेश्वरम् में प्रविष्ट हुए।

केवल मात्र तीर्थों के नामों का श्रवण करके, श्रीकृष्ण दास जी धेनुतीर्थ, अवन्ती, जिऔड़ नृसिंह, गोदावरी, देवपुरी, त्रिमल्ल, कूर्मनाथ आदि के दर्शन करके, अन्त में नीलाचल में आकर उपस्थित हुए। बहुत दूर से ही श्री जगन्नाथ देव जी के श्रीमंदिर के चूड़ा के दर्शन करके वे भावविह्वल

होकर प्रफुल्लित–चित्त से ऊर्ध्वश्वास से दौड़ते हुए, अरुण स्तम्भ के निकट पहुँचे और श्री पतित पावन के दर्शन करके, प्रेमाश्रु विसर्जित करने लगे। भक्तों की चरणरज से अभिषिक्त बाइस सीढ़ियों पर श्रीकृष्णदास पुनः–पुनः लोटने लगे। किंचित धीरज धारण करते हुए, उत्कण्ठित चित्त से उन्होंने जब गरुड़ स्तम्भ के पश्चात् भाग से सुदर्शन के साथ, श्री जगन्नाथ, श्री बलभद्र तथा श्री सुभद्रा जी के दर्शन किये तो भावावेश में उनके दोनों नेत्रों से बन्या की धारा के समान प्रेमाश्रु बहकर उनके अंग तथा वस्त्रों को भिगोने लगे। आवेश में उनका कण्ठ रुद्ध हो गया तथा सर्वांग पुलकित हो उठा।श्री जगन्नाथ जी के मुखारविन्द के दर्शन करके उस असमौर्ध्व रूपराशि के अमृत समुद्र में अपनी सुध–बुध खो बैठे। श्रीकृष्णदास तन्मय होकर नृत्य करने लगे। कतिपय दिवस नीलाचल में अवस्थान करके सारे दर्शनीय स्थानों का दर्शन करते–करते एवं वैष्णव महंतों से सम्भाषण करते हुए, श्रीकृष्णदास जी परमानन्द में समय बिताने लगे।

श्रीधाम पुरी से श्री कृष्णदास जी पुनः गंगासागर चले गये। लोगों की यह मान्यता है कि–

सर्वतीर्थ बारबार, गंगा सागर एक बार।।

– जनश्रुति

(अर्थात् बाकी सभी तीर्थों में बार–बार जाना होता है किन्तु गंगासागर में एक बार जाना ही बहुत है।)

इस उक्ति का कारण यह है कि उन दिनों, आने जाने के साधन इतने बढ़िया नहीं थे। गंगासागर साधारण नावों द्वारा जाना पड़ता था। जो भी भक्त इन नावों द्वारा गंगासागर स्नान करने जाते थे, उनमें से अधिकांश नावों के समुद्र में डूब जाने के कारण, मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। कई भक्त हिंस्र पशुओं (व्याघ्र आदि) का भोजन बनकर, मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे, किन्तु भगवान की असीम कृपा से श्री कृष्ण दास ने निर्विघ्न रूप से गंगासागर में स्नान करके कपिल मुनि के आश्रम के दर्शन भी किये। ईसवी सन् १५६२ में लगभग आठ वर्ष में, भारत के सारे तीर्थों का दर्शन करके वे वापिस अपने जन्म स्थान धारेन्दा लौट आये।

कत दिन रहि गंगा सागरे ते गेला।
तथा हैते आसि जन्मस्थान परशिला।।

—श्रीश्री रसिक मंगल (पूर्व २/६४)

(अर्थात् कुछ दिन नीलाचल में रहकर श्रीकृष्णदास जी गंगासागर गए। वहाँ से उन्होंने अपने जन्मस्थान में प्रवेश किया।

इतने वर्षों के पश्चात् अपने हृदय के धन को पुनः प्राप्त करके पिता श्री कृष्ण मण्डल तथा माता दूरिका देवी के आनन्द का पाराबार न रहा, जैसे चक्षुविहीन व्यक्तियों ने मानों दोनों चक्षु प्राप्त कर लिये हों। श्री कृष्णदास जी ने माता–पिता को वैष्णव बुद्धि से साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। अपने प्रियतम पुत्र को आलिंगनाबद्ध करके उनके माता–पिता आनन्दाश्रुओं से अपने वक्षःस्थलों को प्लावित करने लगे एवं उनके आत्मीय कुटुम्बी जन भी प्रिय श्रीकृष्णदास जी को प्राप्त करके आनन्दसागर में डूब गए। पुत्र स्नेह के वशीभूत होकर श्री कृष्ण मण्डल ने श्रीकृष्णदास जी को गृह में आबद्ध करने के लिए, इस समय उनकी इच्छा न रहने पर भी, श्रीमती गौरांग दासी के साथ उनका विवाह सम्पन्न किया। माता पिता की इच्छानुसार श्रीकृष्णदास जी ४ वर्ष के लगभग (ईसवी सन् १५६२ से १५६६ तक) उनकी (माता पिता की) सेवा के लिए घर पर ही रहे।

❖

चतुर्थ अध्याय

श्री धाम वृन्दावन में भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन

जिस व्यक्ति को एक बार भी अमृत की मधुरता का आस्वादन प्राप्त हो गया हो, साधारण मिष्ठद्रव्य से कभी उसकी तृप्ति और प्रीति नहीं हो सकती । साधारण मधुरता उसके चित्त को कभी आकर्षित नहीं कर सकती। वैसे तो श्रीकृष्णदास जी अपने माता–पिता की आज्ञा तथा इच्छा के अनुसार, घर में अवस्थान कर रहे थे, परन्तु उन का हृदय हर पल, हर समय, किसी अननुभूत वस्तु को प्राप्त करने की आकांक्षा से बेचैन रहने लगा। गृह सुख उन के चित्त को आकर्षित न कर सका। श्री गुरुदेव के चरणारविन्द के दर्शन करने की आकांक्षा, दिन प्रति दिन तीव्र होती गई, जिसके कारण, श्रीकृष्णदास जी अपने माता–पिता तथा पत्नी की अनुमति लेकर, ईसवी सन् १५६६ में धारेन्दा से श्रीपाट अम्बिका में आ पहुँचे। गुरुदेव श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर इतने वर्षों के बाद अपने प्रियतम शिष्य को देख और मिलकर, बहुत ही प्रसन्न हुए। श्रीकृष्णदास जी ने स्वतः ही श्री गुरुदेव तथा श्री गौर–नित्यानन्द की सेवा में अपने तन, मन और प्राण समर्पित कर दिये।

सामान्य सेवा कार्य करने के साथ साथ, वे यथासमय श्री गुरुदेव के श्रीमुख से निःसृत, श्री गौर एवम् श्रीकृष्ण लीलाओं का तन्मय होकर श्रवण करते तथा नित्य नियमपूर्वक नाम जप भी करते थे। इस प्रकार वे गम्भीर निष्ठा के साथ नवधा भक्ति के सभी अंगों का यजन करने लगे।

एकदिन गुरुदेव ने उन को आदेश दिया कि; –

"प्रभु निताइ–प्राण गौरांगेर फूलबाटीते जलदिते आदेशिलेन हृदय चैतन्य।"

–श्री गुरु कृपार दान (३/१६/५४४)

(अर्थात श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने श्री कृष्णदासको प्रभु नित्यानन्द एवं प्राण गौरांग की पुष्पवाटिका में जल देने के लिये आदेश दिया।)

श्री गौर–निताइ प्रभु की पुष्पवाटिका को सींचने का आदेश प्राप्त होने पर, श्री कृष्णदास जी ने अपने आप को धन्यातिधन्य एवम् परम सौभाग्यशाली अनुभव किया। उन्होंने इस आज्ञा को सहर्ष शिरोधार्य कर लिया और इस का पालन करने के लिये, इस प्रकार जी जान से जुट गये कि स्वयं श्रील हृदय चैतन्य प्रभु भी स्तम्भित रह गए। वे प्रतिदिन मिट्टी के कलश को गंगा जी के जल से भर कर, सिर पर रख कर लाते और श्री निताइ–गौरांग जी की पुष्पवाटिका के पौधों को सींचते। इस कार्य के लिये न जाने उन्हें कितने ही कलश जल से भर कर प्रतिदिन लाने पड़ते थे किन्तु वे कभी थकान अनुभव नहीं करते थे। उन के उत्साह में कभी कमी नहीं आई। श्री निताइ–गौरांग प्रभु की वाटिका के सिंचन का सौभाग्य प्राप्त करके, वे सदा प्रफुल्लित रहते तथा प्रेम व आनन्दोद्रेक से, उन की आंखों से, रह रह कर आंसुओं की धारा फूटा करती थी। मुख से "हा प्रभु हृदय चैतन्य" कहते कहते, वे सदा गुरु आज्ञा पालन में इतना तल्लीन रहते कि उन को निद्रा एवम् खान पान की भी सुध न रहती।

पुष्पवाटिका के सिंचन हेतु, प्रतिदिन कई कई बार जल से भरे कलश को सिर पर ढोने के कारण, उन के सिर पर धीरे–धीरे घाव हो गया और उस में कीड़े पड़ गए।

"माथाय मृत्‌कुम्भ लये, जल बहन करते करते।
माथाय तार घा होल, ताते होल पोकार जन्म।।"

–श्री गुरु कृपार दान (३/१६/४८१)

(अर्थात सिर पर रखकर, मिट्टी के कलश में जल भर कर लाते लाते, उनके सिर पर घाव हो गया तथा उस घाव में कीड़े पैदा हो गये।)

गुरु आज्ञा पालन के व्रती शिष्य को, घाव तथा कीड़ों की ओर ध्यान देने की सुध–बुध व फुरसत ही कहां थी। अन्ततः कीड़े बढ़ते गए और उनके पूरे शरीर पर रेंगने लग पड़े परन्तु श्री कृष्णदास जी इन से बेखबर ही रहे।

एक दिन दुःखी श्रीकृष्णदास ने, गंगाजल से भरे कलश को सिर से उतार कर जब भूमि पर रखा, उस समय श्रील हृदय चैतन्य प्रभु पुष्पवाटिका में उसी स्थान पर विद्यमान थे। कलश नीचे रखते ही, एक

कीड़ा भी उस के साथ भूमि पर गिर पड़ा, जिसे गुरु जी ने देख लिया। उनको जिज्ञासा ने आ घेरा। उन्होंने पूरी तरह छानबीन की, जिसपर उन को पता चला कि सिर पर रखकर कलश में पानी ढोते ढोते, श्री कृष्णदास के सिर पर घाव हो गया था और उस में कीड़े पड़ गये थे किन्तु श्री गुरुदेव की आज्ञा के पालन में विघ्न न आ जाये, इसलिए उन के प्रिय शिष्य ने किसी को कुछ भी नहीं बताया था। यह सब जान कर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, स्तम्भित रह गये। प्रिय शिष्य के प्रति वात्सल्य–स्नेह तथा करुणा से, उन का मन भर आया। उनकी आज्ञा का पालन करने के लिये, श्री कृष्णदास ने इतनी यातना और कष्ट सहे, किन्तु आज्ञा पालन से तनिक भी विचलित नहीं हुए, यह देखकर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने, श्री कृष्णदास को दृढ़ आलिंगन में आबद्ध कर लिया। उनकी आँखों से प्रेमाश्रुओं की धारा प्रवाहित हो उठी। वे सोचने लगे कि "कृष्णदास में निश्चितरूप से श्रीकृष्ण भजन के लिए उपयुक्त आधार है, इसलिये इसे, उपयुक्त समय पर श्रीकृष्ण भजन के लिये, श्रीराधा कृष्ण की लीला स्थली, श्रीधाम वृन्दावन को भेजूँगा।" इस के पश्चात नित्यसिद्ध श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने, श्री कृष्ण दास जी के सिर के घाव पर, अपने दिव्य करकमल का संचालन किया। उनका स्पर्श पाते ही वह घाव, उसी क्षण निरामय हो गया।

लगभग तीन मास व्यतीत हो गये, फिर भी श्रीकृष्णदास के मन में जो अभिलाषा थी, वह किसी प्रकार भी पूर्ण नहीं हो पा रही थी। वे सर्वदा मन में एक अभाव अनुभव करते रहते थे। इस प्रकार कुछ दिवस और बीत जाने के उपरान्त, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने, श्री कृष्णदास के मन के भावों को पढ़कर, उन को यह आदेश दिया:–

"आज्ञा दिल शीघ्र करि याह बृन्दाबने।"

–श्रीश्री भक्तिरत्नाकर–(१/३८२)

(अर्थात तुम शीघ्र वृन्दावन जाओ।)

श्री हृदय चैतन्य जी ने श्रीकृष्णदास को आदेश दिया, "वत्स! तुम शीघ्र वृन्दावन गमन करो। इस से तुम्हारा परम मंगल होगा। श्री वृन्दावन में, श्रील जीव गोस्वामी तुम्हारी हर विषय में सर्वतोरूप से सहायता करेंगे। उन से तुम्हारे मन की सारी अभिलाषाएं पूर्ण होंगी।" उन्होंने श्री जीव

गोस्वामी के लिए एक पत्र भी लिख कर दिया।

श्री कृष्णदास ने, श्री गुरुदेव के आदेशानुसार, श्रीनिताइ–गौरांग के चरणारविन्द में प्रणाम करके एवम् श्री गुरुदेव के चरणों को हृदय में धारण करके, अति व्याकुल हो कर, रोते हुए, श्रीपाट अम्बिका से ब्रजधाम को प्रस्थान किया। पहले वे अम्बिका से नवद्वीप आए। श्री गौड़मण्डल के दर्शन करके, वे आनन्दविभोर हो गये। प्रेमावेश से उन के लोचनों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे, जिनसे उन का वक्षःस्थल प्लावित हो गया। श्री कृष्णदास जी जानते थे कि वृन्दावन की भान्ति गौड़ मण्डल की भूमि भी चिन्तामणिमय थी। श्रील नरोत्तम ठाकुर ने स्वरचित प्रार्थना में यों कहा हैः–

"श्री गौड़मण्डल भूमि जेबा जाने चिन्तामणि,
तार हय ब्रज भूमे बास।।"

(अर्थात श्री गौड़मण्डल की भूमि को जो व्यक्ति चिन्तामणिमय जानता है, उसी का ही ब्रजभूमि में निवास होता है।)

श्री कृष्णदास ने गौड़ मण्डल के विरह से व्याकुल हो कर, करुण क्रन्दन करते हुए, "हाय निताई" "हाय गौर", "हाय गौड़ मण्डल" उच्चारण करते और विलखते हुए, गौड़ मण्डल से ब्रजधाम के लिए प्रस्थान किया। ब्रज मण्डल में पहुँचने पर, वहाँ की अभिनव शोभा के दर्शन करके, श्री कृष्णदास प्रफुल्लित हो उठे। वहाँ की रत्न निर्मित भूमि, अति मनोहर वन प्रदेशों, नये नये वृक्षों और प्रेमरस वेष्ठित पर्यावरण का अवलोकन करके, प्रीति प्लावित चित्त से, उन्होंने उस पावन भूमि को प्रणाम किया। विशाल सहकार तरु, मनोहर तमाल द्रुम, शोकहीन अशोक, सुशोभन कुन्द, प्रस्फुटित किंशुक, साधु चरित्र शुक पक्षी एवम् प्रफुल्लित कदम्ब के पुष्पों से वेष्टित कानन, उनके आनन्द को वर्धित कर रहे थे। वे कानन नवजाति के बकुल, चम्पक, कुरुवक, दाड़िम आदि के सुगन्धित पुष्पों से सुशोभित थे तथा देवताओं के चित्त को भी हरण करने वाले उपवनों से चारों ओर से परिवेष्टित थे।

दुःखी श्रीकृष्णदास जी ने ब्रज मण्डल में भ्रमण करते करते, श्री कृष्ण की शैशव लीला के आनन्द से सम्पुटित नन्द गाँव में, गोपराज श्री नन्दराय जी के भवन के दर्शन करके, आनन्दातिरेक से बहते अश्रुओं से,

अपने वक्षःस्थल को प्लावित करते हुए, वहां की भूमि को साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। इस स्थान के दर्शन करके उन का हृदय आनन्दातिरेक से व्याकुल हो उठा।

नन्दगाँव से श्रीकृष्णदास जी, वृषभानु नगर के दर्शन करने की अभिलाषा से बरसाना पहुँचे। सच्चरित्र साधुओं के साथ बरसाने के दर्शन और परिक्रमा करके, उन्होंने अभिलाषित आनन्द प्राप्त किया। तत्पश्चात् वे हरिदास श्रेष्ठ, प्रवाहमान प्रेमरस के भारवाहक, गिरिराज गोवर्द्धन पहुँचे। श्रीकृष्ण के अभिन्न कलेवर गिरिराज जी के दर्शन करके, श्रीकृष्णदास जी द्वापर युग में भगवान श्री कृष्ण द्वारा इन गिरिराज को धारण करने की लीला को स्मरण करके, पुलकित हो उठे। परम विद्वान होते हुए भी, वे निर्लज्ज गंबार की भान्ति नृत्य करने लगे। गिरिराज की स्तुति करते हुए वे राधाकुण्ड जा पहुँचे। श्री राधाकुण्ड तथा श्यामकुण्ड की परिक्रमा करके, वे श्रीमती राधारानी व श्री श्यामसुन्दर के द्वारा कुण्ड द्वय के प्राकट्य की लीला का स्मरण करके, भावविह्वल होकर कुण्ड के तीर पर बैठ कर, प्रेमोद्भूत अश्रुविसर्जित करने लगे। ऐसे समय पर, दास नामक ब्रजवासी ने वहाँ पहुँच कर, श्रीकृष्णदास जी को परम प्रेमविह्वल अवस्था में देखा। वे उनको श्रील रघुनाथ दास जी गोस्वामी के पास ले गये।

श्यामानन्द चेष्टा देखी दास ब्रजबासी।
जिज्ञासिल सकल परमानन्दे भासि।।
श्रीदास गोस्वामीर निकटे लइया गेला।
श्यामानन्द गमन बृत्तान्त जानाइला।।

—श्रीश्री भक्तिरत्नाकर (६/२३, २४)

(अर्थात श्रीश्यामानन्दजी की भावविह्वल अवस्था को देख कर, दास नामक ब्रजवासी ने परमानन्द से उनके विषय में पूरी जानकारी प्राप्त की। फिर दास, उनको श्री रघुनाथ दास जी के पास ले गया और उन को श्री श्यामानन्द के आगमन के विषय में सूचित किया।)

श्री रघुनाथदास जी गोस्वामी, बंगाल के सप्तग्राम नामक क्षेत्र के जागीरदार, श्री गोवर्द्धन के सुपुत्र थे। उस सस्ते जमाने में ही, उन की जागीर की वार्षिक आय, बारह लाख रुपये थी। पिता की अतुल सम्पत्ति व

वैभव तथा परम सुन्दरी युवती भार्या सहित कोई भी सांसारिक वस्तु उनको संसार में आबद्ध करके न रख सकी। कलियुग पावनावतार, श्री गौरसुन्दर के चरण कमल मकरन्द के दुर्निवार आकर्षण से, सारी मायिक उपाधियों को मलवत् त्यागकर, श्रीधाम पुरी में अत्यन्त दीन हीन रूप से, वे श्री गौरसुन्दर के चरणारविंद के सान्निध्य में आकर रहने लगे। श्रीमन्महाप्रभु के अप्रकट होने के पश्चात्, विरह कातर श्रील रघुनाथ दास जी, श्री ब्रजमण्डल में आकर, श्री राधाकुण्ड के किनारे अवस्थान करने लगे। अहर्निश श्री राधा श्यामसुन्दर जी की लीला का स्मरण करते–करते, चौबीस घण्टे में मात्र आठ तोला छांछ (मट्ठा), आहार के रूप में ग्रहण करके, वे श्री राधाकुण्ड में कठोर भजन में निमग्न रहने लगे।

श्रीकृष्णदास जी ने, श्रील दास गोस्वामी जी की कुटीर में प्रवेश करके देखा कि एक सूखी लाठी के सदृश, चलत् शक्तिविहीन वृद्ध, ध्यान निमीलित लोंचनों के साथ बैठे थे एवं उन के दोनों चक्षुओं से अविराम धारा के रूप में अश्रु बह रहे थे। महान वैराग्य छटा उनके श्री अंग को भेद कर, प्रकाशित हो रही थी। श्री कृष्णदास जी ने उनको बारम्बार प्रणाम किया।

श्रीदास गोस्बामी अति अनुग्रह कैल।
बसाइया निकटे कुशल जिज्ञासिल।।

–श्रीश्री भक्तिरत्नाकर (६/२६)

(अर्थात् श्रील रघुनाथदास गोस्वामी जी ने अति अनुग्रह के साथ, श्रीश्यामानन्द जी को अपने पास बैठाकर, उनकी कुशलक्षेम के विषय में जिज्ञासा प्रकट की)

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी ने अत्यंत मधुर स्वर से श्री कृष्णदास जी से अपना परिचय देने को कहा। जब परिचय प्राप्त हो गया और यह ज्ञात हो गया कि श्री कृष्णदास जी ने श्रील गौरीदास पण्डित ठाकुर के शिष्य श्री हृदय चैतन्य प्रभु से दीक्षा ग्रहण की थी, तो अत्यन्त आदरपूर्वक उनको अपने पास बैठाया। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु एवम् उन की प्रेम सेवाधीन, श्रीनिताइगौर की सेवा परिपाटी के विषय में जानकर, श्रील दास गोस्वामी जी बहुत संतुष्ट हुए। तत्पश्चात् श्रील दास गोस्वामी जी ने श्री कृष्णदास जी को निकटवर्ती कुटिया में, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी

जी के दर्शनों के लिए भेजा।

आनन्द पाइया तारे कृपा कैल अति।
कुंजान्तरे कबिराज देखह सम्प्रति।।

—प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् श्रील रघुनाथदास गोस्वामीजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर, निकटवर्ती कुटिया में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी के दर्शनों के लिए, श्री श्यामानन्द जी को कहा।)

श्री कृष्णदास ने वहां पहुंच कर देखा कि जराजीर्ण, कंकालवत् देह तथा लगभग दृष्टिशक्ति विहीन "श्रीश्री चैतन्य चरितामृत" के रचयिता श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी पाद, दोनों चक्षुओं को निमीलित किये, श्री राधा श्यामसुन्दर जी के लीला स्मरण में निमग्न थे। वे श्रीकृष्णदास जी का परिचय प्राप्त करके बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने श्री कृष्णदास जी के मस्तक पर हाथ रख कर, उन्हें बारम्बार आशीर्वाद प्रदान किया।

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी पाद ने उस दिन, श्री कृष्णदास जी को अपने निकट रखकर, रात्रि श्री कृष्ण लीलामृत सुख से अतिवाहित (व्यतीत) की। दूसरे दिन प्रातःकाल ही, दास नामक ब्रजवासी के साथ, उन को श्री वृन्दावन में, श्रील जीव गोस्वामी पाद के पास भेज दिया। श्री राधाकुण्ड से श्री वृन्दावन आते समय, श्रीकृष्णदास जी ने केशीतीर्थ के उपकंठ में, कामदेव से भी अधिक मनोरम, मनोहारी लोचन और ईषत्हास्य युक्त, मेघवर्ण श्री गोविन्ददेव जी के दर्शन किये। श्री गोविन्ददेव जी के परिध ाान में विद्युतवर्ण का पीताम्बर, मस्तक पर मयूरपुच्छ युक्त चूड़ा, गले में मनोहर पुष्पमाला, उनके सौंदर्य को और भी वर्धित कर रहे थे। ये श्रीविग्रह, क्रीड़ामुद्रा, त्रिभंग भंगिमा में दण्डायमान थे और उनके अधर प्रान्त में मुरली संलग्न थी। उन के चरणतल अरुणवर्ण के थे। सर्वांग से अनिन्दनीय, उन श्रीविग्रह के दर्शन करके, श्री कृष्णदासजी के लोचन द्वय अश्रुओं से परिपूर्ण हो गये। वे परमानन्द में डूब कर अपने आप को खो बैठे। इस के अनन्तर श्रीकृष्णदास जी ने प्रफुल्ल हास्ययुक्त वदन विशिष्ट, प्रणय हेतु आशाप्रद, निखिल विश्व के आनन्द प्रदाता, लावण्य के सागर, भक्तवांछापूरक, श्रीश्री गोपीनाथ जी के दर्शन करके सभी क्लेशराशि का नाश किया।

सर्वप्राणियों के मनमोहक, निखिल तत्त्व के श्रेष्ठ भाजन, श्री मदनमोहन जी के दर्शन करके, प्रेमाविष्ट श्री कृष्णदास जी, उन्हें बारम्बार प्रणाम करने लगे।

तदनंतर श्री कृष्णदास जी, श्री वृन्दावन में श्रील जीव गोस्वामी जी के निकट उपस्थित हुए। पाण्डित्य, विद्वत्ता, दीनता, भजन निष्ठा आदि हर विषय में श्रील जीव गोस्वामी, उस समय ब्रजमण्डल के वैष्णव समाज के एकछत्र अधिपति थे। आचार्यत्व के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान, गोस्वामी जी के छत्रतल में उस समय सम्पूर्ण वैष्णव समाज सहज रूप से प्रतिष्ठित था। श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील रूप गोस्वामी उस समय अप्रकट हो चुके थे। हाँ, उन दिनों श्री चैतन्य महाप्रभु के पार्षद श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी, श्रील लोकनाथ गोस्वामी, श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी, श्रील रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रील भूगर्भ गोस्वामी, श्रील स्वरूप दामोदर, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी आदि ब्रजमण्डल को अलंकृत कर रहे थे।

श्री कृष्णदास जी ने ज्यों ही आकर श्रील जीव गोस्वामी के चरणारविन्द में दण्डवत् प्रणाम किया, गोस्वामी पाद उन को देख कर चौंक पड़े। उनके सर्वांग में एक अनिर्वचनीय आनन्द की सिहरन प्रवाहित हो उठी। उनको लगा कि इतने दिन के पश्चात उनकी प्रतीक्षा का अवसान हो गया था। श्रीचैतन्य महाप्रभु के आवेश अवतार, श्री श्रीनिवास तथा श्री नित्यानन्द जी के आवेशावतार, श्री नरोत्तम ठाकुर पहले ही उन के पास पहुँच चुके थे। उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया कि अब श्री अद्वैताचार्य के आवेशावतार (दुःखी श्री कृष्णदास) ने भी ब्रजमण्डल में पदार्पण किया था।

नित्यानन्द छिला जेइ, नरोत्तम हैला सेई,
श्री चैतन्य हैला श्रीनिबास।
श्री अद्वैत जांरे कय श्यामानन्द तिंहो हय,
ऐछे हैला तिनेर प्रकाश।।

—प्रेम विलास (२०)

(अर्थात जो श्री नित्यानन्द थे, वे ही श्री नरोत्तम हुए एवम् श्री चैतन्य, श्रीनिवास हुए। श्री अद्वैत ही श्री श्यामानन्द रूप में प्रकट हुए। इस प्रकार तीनों का प्रकाश हुआ।)

"श्री महाप्रभुर शक्ति श्रीनिबास हय।
नित्यानन्देर शक्ति नरोत्तमे कहय।।
अद्वैत प्रभुर शक्ति हय श्यामानन्द।
जांर कृपाय उतकलिया पाइल आनन्द।।

–प्रेम विलास (२०)

(अर्थात श्री श्रीनिवास, श्रीमन्महाप्रभु की शक्ति हैं, तथा श्री नरोत्तम, श्री नित्यानन्द जी की शक्ति हैं। श्रीश्यामानन्द जी, श्री अद्वैत प्रभु की शक्ति हैं, जिन की कृपा से उत्कल निवासियों ने आनन्द प्राप्त किया।)

"से तिनेर अप्रकटे, ए तिनेर आबिर्भाब।
सर्बदेश कैला धन्य दिया भक्ति भाब।।"

–प्रेम विलास (२०)

(अर्थात श्री चैतन्य, श्री नित्यानन्द एवम् श्री अद्वैताचार्य के अप्रकट होने के पश्चात्, श्री श्रीनिवास आचार्य, श्री नरोत्तम ठाकुर तथा श्री श्यामानन्द प्रभु जी ने प्रकट होकर, समस्त देशवासियों को भक्तिभाव दान कर के धन्य कर दिया।)

भक्ति की इस मूर्तिमान त्रिवेणी द्वारा, श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा निर्देशित व प्रचारित, ब्रज के विशुद्ध प्रेमरस के प्रसार–प्रचार सम्बंधी भविष्य के कार्यक्रम को क्रियान्वित करने की योजना को अमली जामा पहनाने के लिये, श्रील जीव गोस्वामी जी तब आत्मचिन्तन में लीन हो गए।

श्रील जीव गोस्वामी ने अत्यन्त आदर के साथ, वात्सल्य भाव से, श्री कृष्णदास जी को प्रेमालिंगन प्रदान किया तथा उन के नाम, निवास, एवम् श्री गुरुदेव का परिचय प्राप्त करके, अत्यन्त संतोष अनुभव किया।

**"श्री जीव गोस्वामी अति बात्सल्य स्नेहेते।
आलिंगन करि आज्ञा करिल बसिते।।**

श्री भक्ति रत्नाकर (६/३१)

(अर्थात श्रील जीव गोस्वामी ने अत्यन्त वात्सल्य और स्नेह से श्री कृष्णदास जी का आलिंगन करके उन को बैठने के लिए आज्ञा दी।)

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु एवम् गौड़ मण्डल के गौर भक्तों का समाचार पाकर, श्रील जीव गोस्वामी अत्यन्त आनन्दित हुए। श्री कृष्णदास

जी की धीर, स्थिर, शान्त, सौम्य मूर्ति, वैष्णवोचित दीनता, वैराग्य का चरम प्रकाश, असामान्य प्रतिभा युक्त अवयव आदि देख कर, श्रील जीव गोस्वामी जी ने उन से प्रश्न किया, "वत्स! तुम अपने घर को प्रत्यावर्त्तन करने की आकांक्षा हृदय में धारण किये हुए हो या नहीं, यह बतलाओ।" उत्तर में श्री कृष्णदास जी ने विनम्रतापूर्वक कहा, "प्रभु! अगर आप की कृपा हो जाय तो यह अधम तो आप के श्रीचरणों की सेवा अंगीकार करके, ब्रजमण्डल में ही अवस्थान करने की अदम्य इच्छा हृदय में पोषित किये बैठा है।"

श्री कृष्णदास जी के विनम्र उत्तर से संतुष्ट हो कर श्रील जीव गोस्वामी पाद बोले, "अति उत्तम। तुम श्रीनिवास व श्री नरोत्तम के साथ अवस्थान करके, भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन किये जाओ।" उन दिनों श्री नरोत्तम व श्री श्रीनिवास नामक ये दो बालक, वृन्दावन में श्रील जीव गोस्वामी पाद के पास रह कर, भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन कर रहे थे।

श्री श्रीनिवास जी के पिता का नाम श्री गंगाधर भट्टाचार्य एवम् माता का नाम श्रीमती लक्ष्मीप्रियादेवी था। श्री श्रीनिवासाचार्य का जन्म काटोआ के निकटवर्ती गाँव चाखिन्दा, जो नदिया ज़िले में पड़ता था, में हुआ था। श्री श्रीनिवास के आविर्भाव से पूर्व, उनके माता पिता पर नीलाचल में श्रीमन्महाप्रभु की विशेष कृपा हुई थी। इस दम्पत्ति के मनोभावों को जान कर, श्रीमन्महाप्रभु ने कहा था "पुत्र की कामना से आए इन ब्राह्मण दम्पत्ति के यहां, श्री श्रीनिवास नामक पुत्र होगा, जिसके माध्यम से मैं, श्री रूप तथा श्री सनातन द्वारा रचित भक्ति ग्रन्थों का प्रचार करूंगा।" श्री श्रीनिवास आविर्भूत होकर, श्रीमन्महाप्रभु, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु व श्री अद्वैताचार्य प्रभु का साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सके। वे, श्री रूप तथा श्रीसनातन का चरणाश्रय प्राप्त करने के उद्देश्य से वृन्दावन के लिए रवाना हुए, परन्तु मथुरा में पदार्पण करते ही उनको, इन गोस्वामी द्वय के अप्रकट होने का समाचार मिला, जिसे सुनकर वे बहुत ही हताश हुए। हताशा में वे बंगाल वापिस जाने का संकल्प कर ही रहे थे कि श्री रूप सनातन ने स्वप्न में आकर उनको वृन्दावन गमन का आदेश दिया।

"फिरि केने जाह, बापु जाह बृन्दाबन ।
मनोरथ सिद्धि हउक बांछित पूरण।।"

—प्रेम विलास (६)

(अर्थात वत्स! तुम लौट कर क्यों जा रहे हो? तुम वृन्दावन जाओ, जहां तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा एवं वांछित पूर्ण होगा।)

इसलिये श्री श्रीनिवास जी ने वृन्दावन में आकर, श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी जी से दीक्षा ग्रहण की और फिर वे श्रील जीव गोस्वामी के निकट भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन करने में जुट गये।

श्री नरोत्तम ठाकुर पद्मा नदी के तटवर्ती क्षेत्र गोपालपुर के अधिपति, राजा श्रीकृष्णानन्द के सुपुत्र थे। उनकी माता का नाम नारायणी देवी था। प्रबल श्रीकृष्ण अनुराग के कारण, वे सारे राजसी ऐश्वर्य, विलास, वैभव तथा भोग सुखों का मलवत, परित्याग करके, साधन भजन के उद्देश्य से, श्रीवृन्दावन चले आए। अपने प्रगाढ़ प्रभावकारी सेवा कार्यों से, श्री लोकनाथ गोस्वामी पाद को सन्तुष्ट करके, उन से श्रीनरोत्तम ठाकुर ने दीक्षा ग्रहण करने में सफलता प्राप्त की। तदनन्तर श्रीश्रीनिवास जी की भान्ति, वे भी श्रील जीव गोस्वामी के निकट अवस्थान करके भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन करने लग पड़े।

श्रील जीव गोस्वामी जी के मुख से श्री श्रीनिवास जी तथा श्री नरोत्तम ठाकुर, दोनों का नाम श्रवण करके, श्री कृष्णदास जी का हृदय आनन्दातिरेक से नृत्य करने लगा। उन लोगों से अभी तक उनका साक्षात्कार भी नहीं हुआ था किन्तु उन को यों लगा कि वे दोनों मानो उनके कितने ही निकटतम जन थे। श्रीकृष्णदास जी के हृदय में नामालूम कैसे अभिनव आनन्द की धारा प्रवाहित होने लगी। उन्हें अनुभव होने लगा जैसे श्री श्रीनिवास तथा श्रीनरोत्तम, दोनों उनके जन्म जन्म के प्रियतम्, सुहृद थे।

"श्रीनिबास नरोत्तम नाम श्रबणेते।
पुलके ब्यापिल अंग उल्लास मनेते।।

—श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (६/३६)

(अर्थात श्री श्रीनिवास, श्री नरोत्तम नाम श्रवण करते ही, श्रीकृष्णदास जी के अंग पुलकित हो उठे तथा मन उल्लसित हो गया।)

श्री कृष्णदास जी ने अत्यन्त उत्कण्ठित होकर उन दोनों के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। दैवीय क्रम से, श्रीश्रीनिवास तथा श्री नरोत्तम

ठाकुर जी ने, उसी समय, श्रील जीव गोस्वामी जी की चरणवन्दना के उद्देश्य से वहां पदार्पण किया तथा श्रील गोस्वामी पाद ने उन दोनों के साथ श्रीकृष्णदास जी का परिचय करवा दिया। श्री कृष्णदास जी ने आनन्दसागर में निमग्न होकर तत्क्षण उन दोनों को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया, जिस पर, श्री श्रीनिवास जी ने उनको को प्रगाढ़ आलिंगन में ले लिया एवं श्री नरोत्तम ठाकुर ने उन को प्रति प्रणाम किया। इन तीनों के महामिलन से उस दिन जो आनन्द की लहरें उद्वेलित हो उठीं, उनका अनुभव करके श्रील जीव गोस्वामी पाद, आनन्दाश्रु विसर्जित करने लगे। उन्हें लगा जैसे एक ही वृन्त में तीनों कुसुम–कलियां प्रस्फुटित हो उठी हों। जैसे गंगा–यमुना–सरस्वती का महामिलन हो गया हो।

"श्रीनिबास नरोत्तम, श्यामानन्द तिने।
जे अद्भुत रीत ताहा कहिते केबा जाने।।

–श्रीश्री भक्तिरत्नाकर (६/४६)

(अर्थात् श्री श्रीनिवास, श्री नरोत्तम तथा श्री श्यामानन्द की जो अद्भुत रीत है, उसको कौन कह सकता है।)

अनुभवी श्रील जीव गोस्वामी जी ने अनुभव किया कि श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी के द्वारा प्रचारित प्रेम धर्म का पूरे भारतवर्ष में प्रचार होने में अब विलम्ब नहीं होगा। शुभदिन तथा शुभ क्षण में, श्रील जीव गोस्वामी ने, श्री कृष्णदास से भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ करवाया।

श्री श्रीनिवास व श्री नरोत्तम के साथ वे क्रमशः व्याकरण, न्याय तथा काव्य आदि का अध्ययन समाप्त करके, श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित भक्तिरसामृतसिंधु तथा उज्ज्वल नीलमणि आदि भक्ति ग्रन्थों का आस्वादन करने लगे। असाधारण धी शक्ति एवम् प्रतिभा के कारण अति अल्पकाल में ही, श्री कृष्णदास जी अध्ययन समाप्त करके, श्रील जीव गोस्वामी के टोल (संस्कृत स्कूल) में अध्यापक हो गए।

श्री दुःखी कृष्णदास जी अध्ययन करते थे, अध्यापन करते थे, श्रील जीव गोस्वामी जी की सेवा करते थे, श्रीकृष्ण लीलाओं का श्रवण करते थे तथा बीच बीच में अम्बिका में गुरुदेव श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के निकट, बृजमण्डल का एवं अपना सम्वाद भी प्रेषित करते थे। श्रीधाम वृन्दावन से

जब वैष्णव लोग गौड़ मण्डल को जाते थे, तो उनके माध्यम से वे ब्रजमण्डल के संवाद प्रेषित करते थे। गौड़ मण्डल से जो भक्तलोग वृन्दावन आते थे, उनके द्वारा श्री गुरुदेव के साथ साथ गौड़ मण्डल के भक्तों का कुशलक्षेम भी उन्हें मिलता रहता था। गुरुदेव श्रील हृदय चैतन्य प्रभु भी बीच–बीच में अपने प्रियतम शिष्य, श्री कृष्णदास जी तथा श्रील जीव गोस्वामी के निकट, गौड़मण्डल के संवाद प्रेषित करते रहते थे। साथ–साथ वे ब्रजमण्डल के कुशल समाचार भी ग्रहण करते रहते थे।

एकबार, श्रील हृदय चैतन्य प्रभुजी ने, श्री कृष्णदास जी को लिखा–

श्रीजीबे जानिबे तुमि आमार सोंदर।

–श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (१/४०८)

(अर्थात श्रील जीव गोस्वामी जी को तुम मेरे जैसा ही समझना।)

"कृष्णदास! श्रील जीव गोस्वामी पाद को तुम मेरे जैसी गुरुवत श्रद्धा व मान्यता प्रदान करना तथा वे जो भी उपदेश देवें, उनका अवश्य अनुसरण करना। भजन के विषय में तुम्हारी जो भी जिज्ञासाएं हों, उनका समाधान भी तुम उन्हीं के द्वारा करना।" श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने एक पत्र में श्रील जीव गोस्वामी पाद को भी इस प्रकार लिखा :–

''इहार जे मनोभीष्ट पुराबे सर्बथा''

–श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (१/४०७)

(अर्थात् श्री कृष्णदास के मन में जो भी अभिलाषा हो, उसे आप अवश्य पूर्ण करना)

"कृष्णदास को मैं आपको समर्पित कर रहा हूं। भजन विषयक जो भी उपदेश हैं, उन्हें कृष्णदास को प्रदान करके आप उसके मन की, श्री कृष्ण विषयक सभी अभिलाषाओं को पूर्ण कीजियेगा।"

इस प्रकार श्री कृष्णदास, श्री वृन्दावन धाम में श्रीश्रीनिवास तथा श्री नरोत्तम के प्राणों के रूप में एवम् श्रील जीव गोस्वामी के चक्षुओं की मणि के रूपमें, परमानंद से कालातिक्रमण करने लगे।

❖

पंचम अध्याय

श्री दुःखी कृष्णदास पर श्रीमती राधारानी जी की कृपा

श्रील गौरीदास पण्डित ठाकुर सख्य रस के उपासक थे। श्रीकृष्णदास क्योंकि उनके अनुशिष्य थे, इस लिए वे भी सख्यभाव से ही उपासना करते थे, किन्तु श्रील जीव गोस्वामी पाद के निकट भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन करके, वे अनुभव करने लगे कि शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवम् मधुर भावों में, मधुर भाव ही श्रेष्ठ था। मधुर भाव की उत्कृष्टता को हृदयंगम करके, श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी की मधुरातिमधुर निकुंज लीला में सेवा प्राप्ति के लिए, श्री कृष्णदास जी लालायित हो उठे। मन की इस तीव्र अभिलाषा को वे गोपनीय नहीं रख सके और एक दिन मौका देख कर, श्रील जीव गोस्वामी के सम्मुख, इस अभिलाषा को प्रकट कर दिया। श्रील जीव गोस्वामी सुन कर सोचने लगे कि, "मधुर भजन के निगूढ़ तत्त्वों का, श्रीकृष्णदास को उपदेश देने में कोई बाधा नहीं है। जीव की क्रमबद्ध उन्नति वांछनीय ही है। यदि कृष्णदास सख्य भाव से मधुर भाव में आकर भजन कर सकता है, तो उससे उस का भजन ही उत्कर्ष और वृद्धि को प्राप्त होगा। आचार्य परम्परा में भी ऐसे अनेक दृष्टान्त उपलब्ध हैं। श्री बल्लभ भट्ट वात्सल्य रस के उपासक थे पर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की अनुमति से, उन्होंने मधुर रस के भजन के लिए, श्रील गदाधर पण्डित जी से किशोर गोपाल मंत्र की दीक्षा ग्रहण की थी। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने भी कृष्णदास के श्री कृष्ण विषयक मनोभीष्ठ को पूर्ण करने के लिए, मुझे आदेश प्रदान किया है। इस लिए अगर मैं कृष्ण दास को मधुर भजन के उपयोगी उपदेश प्रदान करता हूँ, तो इस से किसी प्रकार की मर्यादा का उल्लंघन नहीं होगा। कृष्णदास भी मधुर भजन का अत्यन्त योग्य पात्र है।" इन सब विषयों पर विचार करने के उपरान्त, श्रील जीव गोस्वामी पाद, श्री कृष्णदास

को मधुर भजन के गूढ़ तत्त्वों का उपदेश देने लग पड़े। श्री कृष्णदास ने भी श्रील जीव गोस्वामी से कहा कि :–

जांर ग्रन्थ तांर मत करिले आश्रय।
तबे से सकल सिद्धि बरदायक हय।।

–प्रेमविलास (१२)

(अर्थात जिनके ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, अगर उन के मतवाद को भी हम ग्रहण कर लें तो अनायास ही सिद्धि प्राप्त होती है।)

श्री कृष्णदास सोचने लगे कि "मैं श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित ग्रन्थों का अध्ययन कर रहा हूं। श्रील रूप गोस्वामी मधुर रस का भजन करते थे। इस लिए अगर मैं उन के अभिप्रेत मधुर भजन का अनुशीलन कर सकूं, तो अनायास ही श्री श्री राधाश्यामसुन्दर जी की मधुरातिमधुर सेवा प्राप्त कर सकूंगा।"

श्रील जीव गोस्वामी पाद ने प्रसन्न होकर श्री कृष्णदास जी को श्रीमती राधारानी का षड़ाक्षर मंत्र प्रदान किया।

"राधिका जीउर मंत्र षड़ अक्षर दिल"

–प्रेमविलास (१२)

साथ ही साथ कामबीज मंत्र भी प्रदान किया।

"काम बीज कहिल तबे विशेष प्रकार।
राधाकृष्ण लीलाय युक्त तरवन जपिवार।।"

–प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् श्रीराधाकृष्ण की युगल लीला के समय जप करने के लिए विशेष रूप से कामबीज मंत्र भी प्रदान किया।)

रागानुगा मार्ग में कामानुगा अंग ही कुंज सेवा प्राप्ति का साधन है एवम् मन में स्मरण तथा मनन करना ही इस साधन का मूल अंग है। हमारी इस पंचभौतिक यथावस्थित देह के द्वारा, श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर के उस दिव्य निकुंज की सेवा प्राप्ति नहीं हो सकती है। उस चिन्मय अप्राकृत धाम की अप्राकृत सेवा के लिये, उसके अनुरूप अप्राकृत देह की प्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है। मन में अंतश्चिन्तित मंजरी देह से, श्री गुरु रूपी सखीके अनुगत हो कर समयोपयोगी सेवा का अनुशीलन करना पड़ता है। ऐसे अनुशीलन करते करते :–

"साधने साधिबे जाहा।
सिद्ध देहे पाबे ताहा।।"

(अर्थात् जिस सेवा को लेकर साधन करेंगे, सिद्ध देह में उसी सेवा को ही प्राप्त होंगे।)

उसी भाव से, उसी सेवा का स्मरण करते हुए, देह के भंग होने पर सिद्ध मंजरी स्वरूप में, श्रीमन्नंद ब्रजमें, श्रीब्रजेन्द्र नंदन की सर्वोत्कर्षिणी सेवा को प्राप्त होते हैं। श्रीराधाकृष्ण की इस गूढ़ निकुंज लीला में अंश ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त करने के लिए, सखियों के अनुगत होने के अतिरिक्त अन्य कोई भी पथ नहीं है।

श्री चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ में यों लिखा हैः–

"राधा कृष्ण लीला एइ अति गूढ़तर।
दास्य वात्सल्यादि भाबेर ना हय गोचर।।"

–श्रीश्री चैतन्य चरितामृत मध्य (८)

(अर्थात् श्रीश्री राधाकृष्ण की यह गोपन लीला, दास्य, सख्य तथा वात्सल्य आदि भावों में गोचर नहीं होती।)

"सखी बिनु एइ लीलाय नाहि अन्येरगति।
सखी भावे तारे जेइ करे अनुगति।।
राधा कृष्ण कुंज सेवा साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय।।"

–श्रीश्री चैतन्य चरितामृत मध्य (८)

(अर्थात् सखियों को छोड़ कर, इस युगल लीला में अन्य किसी का अधिकर नहीं। सखियों का भाव लेकर, जो उनके अनुगत हो कर भजन करता है, वही श्री राधाकृष्ण की निकुंज सेवा को प्राप्त कर सकता है। उस सेवा को प्राप्त करने का अन्य कोई मार्ग नहीं।)

इस प्रकार श्री कृष्णदास ने श्रील रूप गोस्वामी के अभिप्रेत मधुर भजन का तथा श्रील जीव गोस्वामी के अनुगत होकर, सखी भाव को पूर्णरूपेण स्वीकार करके मानसिक सेवा का अधिकार प्राप्त किया।

श्री जीव गोस्वामी श्यामानन्दे कृपा करि।
करिलेन मानस सेवार अधिकारी।।

–श्रीश्री भक्ति रत्नाकर (६/५१)

(अर्थात् श्रील जीव गोस्वामी ने कृपा करके, श्री श्यामानन्द को मानस सेवा करने का अधिकार प्रदान किया।)

इस प्रकार श्री कृष्णदास अन्तःश्चिन्तित देह से, श्री रूप मंजरी के कृपा निर्देश के अनुसार अहर्निश श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी की प्रेम सेवा में निमग्न हो गए।

श्री कृष्णदास जी बारम्बार श्रील जीव गोस्वामी से साक्षात् सेवा के लिये प्रार्थना करते रहते थे, किन्तु वे उन्हें टालते हुए, केवल भजन करने का आदेश ही दिया करते थे। एकबार श्री कृष्णदासजी ने श्रील जीव गोस्वामी पाद से यों कहा "प्रभु! आपके चरणों में मेरा यही विनम्र निवेदन है कि बिना सेवा किये, श्रीधाम वृन्दावन में अधिक देर नहीं ठहर सकूंगा।"

श्री कृष्णदास जी की तीव्र सेवा आकांक्षा को अनुभव करके, अन्त में श्रील जीव गोस्वामी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उन्होंने आदेश दिया कि "कृष्णदास ! तुम निर्मल चित्त से कुँज स्थलियों का मार्जन करते हुए, भक्तिग्रन्थों का अध्ययन तथा श्री कृष्णकथा का भी निरंतर श्रवण करते रहो।" तदवधि श्री कृष्णदासजी भावाविष्ट होकर, श्री राधाकृष्ण की लीला स्थलियों का दर्शन करने लगे तथा कुँज सेवा की अभिलाषा से निर्मल चित्त साधुओं व भक्तों के साथ, वहाँ अवस्थान करने लगे। कभी वे ध्यान में निमग्न, कभी हरि संकीर्तन में नियुक्त, तो कभी–कभी आनन्दावेश में अभीष्ट मन्त्र का जप करते थे। प्रतिदिन निशा अवसान से दिगभाग प्रकाशित होते ही, विमल चित्त से द्रुत सोहनी के द्वारा कुँज आदि को निर्मल करते थे।

उपरोक्त प्रकार से द्वादश वर्ष तक यत्न–पूर्वक कठोर साधना करके, श्री कृष्णदास ने अपने सिद्ध स्वरूप का प्रकाश किया। एकबार श्री कृष्णदास, रात्रि के समय, अपनी भजन कुटीर में बैठे हुए, श्री राधा श्यामसुन्दर जी की अष्टकालीन लीला के स्मरण में लीन थे। लीला स्मरण में उन्होंने देखा कि "श्री श्यामसुन्दर जी, मृगनयनी ब्रज–सुन्दरियों के साथ कुंज में, नृत्य गीत आदि के रंग में मत्त थे। श्री राधा जी ने, अपनी सखियों के साथ, एक दूसरे की बाहें पकड़ कर एक मण्डली का निर्माण किया, एवं श्री श्यामसुन्दर जी, उनके बीच में, तारिकाओं से घिरे हुए चन्द्रमा की भांति शोभा पाने लगे। श्री श्यामसुन्दर जी तथा सभी ब्रजसुन्दरियाँ नृत्यगीत में

निमग्न हो गए। कई सखियाँ वाद्ययंत्र बजा रही थीं तथा कई मधुर कण्ठ से गीत गा रही थीं। कभी सखियों के साथ श्रीश्यामसुन्दर जी नृत्य कर रहे थे तो कभी उन के साथ श्रीमती राधारानी जी नृत्य कर रही थीं और श्री श्यामसुन्दर जी उन का दर्शन कर रहे थे।

एक अवसर पर, श्री श्यामसुन्दर जी को और अधिक आनन्द प्रदान करने के लिए, श्रीमती राधिका जी ने, सुललित छंद से, मधुमय, चित्ताकर्षक नृत्य. आरम्भ किया।

राधिकार नृत्य ताहे अत्यन्त प्रचुर।
खसिया पड़िल बाम पदेर नुपुर।।

–प्रेम विलास (१२)

(अर्थात् उस समय श्री राधिकाजी, द्रुतगति से नृत्य कर रही थीं, जबकि उनके बाएंचरण का नुपुर खिसक कर नीचे गिर पड़ा।)

नृत्य रस में लीन, श्रीमती राधारानी तथा उनकी सखियों में से किसी को भी पता नहीं चला कि मंजु घोष नामक वह एक नूपुर पांव से खिसक कर कुंज़ में गिर पड़ा था।

नृत्य के अन्त में, जब श्री युगल किशोर–किशोरी कुंज में रत्नमय पलंग पर शयन करने लगे, तो सभी सखियां गवाक्ष रन्ध्र से, उन की मिलन मधुर मूर्ति का दर्शन करने लगीं।

निशावसान पर, सखियों ने आकर सुख निद्रा भंग करके, जब श्री राधा श्यामसुन्दर जी को जगाया तो युगल किशोर किशोरी रसालस के कारण विवश होते हुए भी, लज्जित भाव से शीघ्रतापूर्वक, अपने अपने गृह के लिए प्रस्थान कर गए। तब–

सेइ काले उठिला दुःखिनी कृष्णदास।
रासस्थली देखिबारे मनेर उल्लास।।

–प्रेम विलास (१२)

(अर्थात उसी समय श्री दुःखी कृष्णदास उठकर खड़े हो गये। उनका मन रासस्थली को देखने के लिये उल्लसित हो रहा था।)

निशावसान होने पर, श्री कृष्णदास लोकातीत चेष्टा परायण होकर, रास स्थली तथा कुंजों का मार्जन करने के लिए, अपने एक हाथ में सोहनी

तथा दूसरे में घास छीलने वाला लोहे का खुरपा लेकर, मन ही मन श्रीश्री राधाकृष्ण के नाम का कीर्तन करते हुए, निधुवन के लिये चल दिये। वे निम्नलिखित कीर्तन करते जा रहे थे:–

भज गौरांग, कह गौरांग, लह गौरांगेर नाम रे।
जे जन गौरांग भजे, से हय आमार प्राण रे।
भज श्री कृष्ण, कह श्रीकृष्ण, लह श्री कृष्णेर नाम रे।
जे जन श्री कृष्ण भजे से हय आमार प्राण रे।
भज श्री राधे, कह श्री राधे , लह श्री राधार नाम रे।
जे जन श्री राधा भजे, सेइ हय आमार प्राण रे।

श्री कृष्णदास को गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर प्रत्यक्ष हुआ कि उस दिन रासस्थली में रासलीला के कारण अनेक मल्लिका लताएँ विदलित हो गई थीं। उस स्थान की सभी लताएं अभिनव पुष्प सौंदर्य से परिपूर्ण थीं। कुंज में, स्थान स्थान पर श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी के युगल चरणारविन्द के चिन्ह भी अत्यन्त प्रस्फुटित थे। उन चरण चिन्हों के दर्शन करके, श्री कृष्णदास जी भावावेश में उन पर लोटने लगे। फिर किंचित सुस्थिर होकर जैसे ही उन्होंने सोहनी के द्वारा कुंज सेवा करने का श्रीगणेश किया, अकस्मात् उन्होंने एक तरु के मूल में एक स्वर्ण नूपुर देखा।

"तरु मूले देखिलेन कनक बंकराजे।
सूर्य जेन हइयाछे उदय कुंज माझे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/४५)

(अर्थात वृक्ष के मूल में एक अपूर्व स्वर्ण नूपुर देखा। उस नूपुर के प्रकाश से यों प्रतीत हो रहा था, मानो कुंज में सूर्योदय हुआ हो।)

इस अलौकिक घटनाक्रम से, नाना प्रकार के रत्नों से खचित उस स्वर्ण नूपुर को देख कर, वे विस्मित रह गए। उस नूपुर के उज्ज्वल प्रकाश से सारी दिशाएं उद्भासित हो रही थीं। इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य, नेत्रों की प्रभा को हरण करने वाला नूपुर किसका था, यह सोच सोच कर जब श्री कृष्णदास जी, व्याकुल हो रहे थे, तभी उन्हें आकाशवाणी सुनाई पड़ी –

"जत्नपूर्वक इहा रक्षा कर"

–श्रीश्री बिन्दु प्रकाश (५५)

(अर्थात यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करो।)

श्रवण के लिए सुखदायक उस आकाशवाणी को सुनकर, श्री कृष्णदास के सारे दुःखों का परिहार हो गया और उन्हें बहुत आनन्द हुआ। इसके पश्चात् जैसे ही उन्होंने उस नूपुर से अपने मस्तक का स्पर्श कराया तो वे प्रेमावेश में पुलकित हो, आनन्दाश्रु विसर्जित करने लगे और कांपने लगे। अष्ट सात्त्विक भावों का विकार उनके शरीर में प्रकाशित हो उठा और वे स्वेद, कंप, अश्रु और पुलक आदि से युक्त होकर, भावावेश में नृत्य करने लगे। किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में, उन के मुख से केवल राधे–राधे, श्याम–श्याम ही उच्चारित होने लगा। बहुत प्रयत्न करने पर, बहुत समय के पश्चात्, वे अपनी भावनाओं को नियन्त्रित कर सके और अपेक्षित धैर्य धारण करके, नूपुर को अपने उत्तरीय वस्त्र में आच्छादित करने में सफल हो सके। इसके पश्चात् उन्होंने फिर से नृत्यस्थली, रासस्थली एवम् कुंजों का मार्जन आरम्भ किया। ऐसे समय पर, अपनी हितकारिणी सखियों के साथ, श्रीमती राधारानी जी, लोकदृष्टि निवारणार्थ, निज अंगों की शोभा को तिरोहित करते हुए, उस नूपुर का अन्वेषण करते हुए वहाँ आ पहुंची। रास रासेश्वरी ने अपनी प्रियसखी विशाखा के साथ लताओं के पीछे खड़े होकर, श्री ललिता सखी को उस अद्‌भुत तथा श्रेष्ठ नूपुर का अन्वेषण करने के लिए प्रेरित किया।

श्री ललिता जी, एक वृद्धा दरिद्रा ब्राह्मणी का भेष धारण करके, श्री कृष्णदास जी के पास पहुँचीं और उनसे कहने लगीं "हे महात्मन् ! कल सायंकाल मेरी नववधु इस स्थान पर पुष्पचयन करने के लिए आई थी। अकस्मात यहाँ एक शेर (श्रीकृष्ण) को अपने बिल्कुल समीप देखकर वह डर गई और तुरंत इस स्थान को छोड़ कर चली गई। इस हड़बड़ाहट में उसके बाएं चरण का नूपुर खुल कर नीचे गिर पड़ा, परन्तु उसे इसका उस समय पता न चला। अगर तुम को वह नूपुर यहाँ पर पड़ा मिला हो तो मुझे बतलाओ।"

श्री ललिता सखी के इन मधुर वाक्यों को सुनकर, श्री कृष्णदास जी के कर्णकुहरों ने परम तृप्ति का आभास अनुभव किया परन्तु अपने भावों को मन में छिपाते हुए, उन्होंने कौतुहल सा प्रदर्शित करते हुए ललिता जी

से ये प्रश्न किये, "हे देवी! आप कौन हैं? आप का निवास स्थान कहाँ है? कृपया आप अपना परिचय देकर मेरे कौतुहल की निवृत्ति कीजिये।"

श्री ललिताजी ने उत्तर दिया, "हे शान्तिपूर्ण चित्त वाले श्रेष्ठ साधु महोदय! मैं कान्यकुब्ज ब्राह्मणी हूँ। मथुरा मण्डल के यावट नामक ग्राम के निकट मेरा घर है तथा मेरा नाम राधा दासी है।"

"ललिता कहेन मोर नाम राधादासी ।
कन्नौज ब्राह्मणी मुंइ हउं ब्रजवासी।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/६३)

(अर्थात ललिता जी ने कहा, "मेरा नाम राधादासी है। मैं कान्यकुब्ज ब्राह्मणी हूँ तथा ब्रजवासिनी हूँ।")

ललिता जी ने आगे कहा, "हे कृष्णदास! तुम नित्य निर्मल चित्त से कुंजों का मार्जन करते हो, इसलिये अपनी नववधु के नूपुर के विषय में पूछताछ के लिए मैं तुम्हारे पास आई हूँ कि कहीं वह उज्ज्वल प्रभापुंज विशिष्ट नूपुर तुम को तो नहीं मिला। तुम सचसच मुझे बतलाकर मेरे संशय का निवारण करो, क्योंकि साधु पुरुष दूसरों के दुःख को सहन नहीं करते।"

श्री कृष्णदास ने संदिग्ध चित्त से किन्तु विनम्रता के साथ उत्तर दिया, "हे दीनजनों के प्रति कृपादृष्टि रखने वाली सरले! आप का अनुभव सही है। मुझे एक अप्राकृत, चिन्मय, दिव्य, इन्द्रनीलमणि से खचित स्वर्ण नूपुर मिला है। इस उज्ज्वल प्रभापूर्ण विशिष्ट नूपुर के स्पर्शमात्र से ही मैं जिस प्रकार श्री राधा प्रेम से उद्वेलित हो गया हूँ तथा जिस प्रकार मेरा हृदय अपार्थिव आनन्द का अनुभव कर रहा है, उससे मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि यह नूपुर किसी मर्त्यलोक– वासिनी साधारण स्त्री का नहीं है। निश्चित रूप से इस अप्राकृत नूपुर के साथ कोई रहस्य जुड़ा हुआ है। प्राचीन महान व्यक्तियों का कहना है कि, उपयुक्त सत्पात्रों के साथ ही यथायोग्य उत्कृष्ट वस्तुओं का संयोग होता है। अयोग्य पात्रों के साथ कभी भी उत्कृष्ट वस्तुओं का संयोग नहीं होता। हमें इस कथन को पूर्णरूपेण स्वीकार कर लेना चाहिये। क्योंकि प्रकटतः आप मर्त्यलोकवासिनी दिखती हैं, इसलिये आपकी वधु भी निश्चितरूपेण मर्त्यलोक के उपयुक्त ही होगी। ऐसा अलौकिक तथा अमूल्य नूपुर इस कारण, आपकी वधु का कदापि नहीं

हो सकता है। इन परिस्थितियों के कारण, मेरा मन यह दिव्य नुपूर आपको प्रदान करने के लिए उत्साहित नहीं हो रहा। इसके अतिरिक्त, आपके जीर्णशीर्ण वस्त्रों से आपकी दरिद्रता ही परिलक्षित होती है। आप जैसी दरिद्रा की बहू, इन्द्रनीलमणि खचित बहुमूल्य स्वर्ण नूपुर पहन सके, युक्तिसंगत नहीं लगता। इस पर भी, यदि आप की बहू यहां आकर मुझे दूसरे चरण में पहना हुआ बिल्कुल ऐसा ही नूपुर दिखला दे, तो मैं आपके गांव के पांच दस व्यक्तियों की साक्षी से यह महामूल्यवान नूपुर आप को दे सकता हूँ।"

"दस पांच जना साक्षी राखिब से स्थाने।
तोमार नूपुर आमि दिब ततक्षणे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/६६)

(अर्थात दस पांच व्यक्तियों की यहां साक्षी रखकर मैं यह नूपुर आपको दे दूंगा।)

वृषभानुराजनन्दिनी श्रीमती राधारानी जी, विशाखा आदि सखियों के साथ, लताओं के पीछे से छिपकर, श्रीललिता जी और श्री कृष्णदास जी के मध्य चल रहे इस वार्तालाप को सुन रही थीं। जब उन्होंने देखा कि ललिता जी चातुर्य में श्री कृष्णदास जी से जीत नहीं पा रही थीं, तो श्रीमती राधारानी ने श्री कृष्णदास के सम्मुख आकर, कृपापूर्वक उन से यों कहा "हे सुकृतिसम्पन्न साधु! अभी तुम कह रहे थे कि यह अलौकिक नूपुर किसी मर्त्यलोकवासिनी को नहीं दिया जा सकता। क्या वृन्दावन की सारी स्थावर–जंगम वस्तुएं अलौकिक नहीं हैं? क्या किसी साधारण अथवा लौकिक प्राकृत वस्तु को वृन्दावन में प्रवेश करने का अधिकार है?"

श्री कृष्णदास जी ने अत्यन्त चतुराई के साथ उत्तर दिया "हे देवी! आपका यह कथन कि वृन्दावन की समस्त वस्तुएं अप्राकृत और अलौकिक हैं, अक्षरशः सत्य है, किन्तु ये सारी वस्तुएं अप्राकृत अवयव विशिष्ट होने पर भी, अभी हम लोगों को वैसी नहीं दिखाई दे रहीं। सारे शास्त्रों और अभिज्ञ लोगों को भी यह प्रतीत है कि यह भूमि चिन्तामणियों से परिपूर्ण है मगर साधारण मिट्टी से बनी हुई सी ही दिखती है।"

अति चातुर्यशालिनी श्री ललिता जी ने दोनों के वार्तालाप को

सुनकर उनके मुखारविन्द पर दृष्टिपात करके, मृदु हास्य बिखेरा, फिर अपने कार्य की सिद्धि को दृष्टि में रखकर, श्री कृष्णदास जी से रहस्यपूर्वक बोलीं "हे सुबुद्धे! तुम्हारा कथन सत्य है। तुमको मिला यह नूपुर अप्राकृत ही है, एवं इसकी ये स्वामिनी भी रूप, गुण, स्वभाव, वस्त्रों तथा व्यवहार आदि के अनुसार, अप्राकृत ही हैं।"

ललिता जी के ये वाक्य सुनकर श्री कृष्णदास जी कुछ अप्रतिभ हो गए, पर रहस्यमय वाक्यों का प्रयोग करने वाली उस वृद्धा ब्राह्मणी को लक्ष्य करके वे कहने लगे, "हे देवियो! आप लोगों की बातों को समझ सकूं, ऐसी थोड़ी सी बुद्धि भी मुझ में नहीं है। ऐसे में आप के मनोगत कार्य का मुझे कैसे पता चल सकता है? अपार करुणा की समुद्र, आप लोगों के अभिप्राय को जानने के लिए मैं उत्सुक हूँ। कृपया आप मेरे संशय का निवारण कीजिए।"

परम रहस्यमयी श्री ललिता जी, श्री कृष्णदास जी की बात सुनकर यों बोलीं, "हे श्रेष्ठ कृपालब्ध साधु! मेरी दाहिनी ओर जो हास्यवदना देवी जी विराजमान हैं, वे ही तुमको प्राप्त इस अलौकिक नूपुर की स्वामिनी हैं। ये असाधारण गुणरत्नों से विभूषिता, श्री बृषभानु राजा की सुपुत्री, गोकुलराज के पुत्र की प्रेयसी, यावट गाँव की रहने वाली हैं। इन देवी का नाम श्रीमती राधिका जी है।"

यह अलौकिक परिचय पाकर, श्री कृष्णदास जी चमत्कृत हो उठे। उनका सर्वांग पुलकित हो उठा। मुख से वाक्य निःसरण बन्द हो गया। भावाविष्ट होकर, वे कातर स्वर में विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करने लगे, "हे कृपामयी! मैं अत्यन्त दुखी हूं। श्रेष्ठ गुणशालिनी, रत्नशोभिता, श्रीमती राधारानी जी के चरण कमल से यह नूपुर स्खलित होकर कैसे नृत्य शाला में गिर पड़ा? इस रहस्यमयी घटना का कृपा करके मेरे सम्मुख शीघ्र प्रकाश कीजिए, क्योंकि जब तक मैं इस रहस्यपूर्ण घटनाक्रम को सुन न लूं, तब तक मेरा अशांत चित्त शान्त नहीं हो सकेगा।"

'उत्तर में श्रीमती ललिता सखी ने यों कहा, "हे कृष्णदास! यद्यपि यह विषय अत्यन्त गोपनीय तथा रहस्यपूर्ण है, किन्तु क्योंकि तुम भाव मार्ग में सिद्धि प्राप्त करके, लीला आस्वादन के योग्य पात्र बन गए हो, इसलिए

मैं संक्षेप में इस परम रहस्यमयी लीला का वर्णन करने जा रही हूं। तुम श्रवण करो।"

"मनोरमा रजनी जब चन्द्र किरणों के योग से रमणीयता धारण करने लगी, आकाश में तारे शोभा सम्पादन करने लगे, पुष्प मधुमक्खियों से भर गए, शीतल, मृदु और मन्द पवन चलने लगी और कामदेव ऐश्वर्य से पूर्ण हो गए तो नन्दनन्दन श्री श्यामसुन्दर जी, चन्द्रमुखी ब्रज ललनाओं के साथ, अति उत्तम सुललित नृत्यलीला में मग्न हो गए। किन्तु निशा की समाप्ति पर भी, श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर को रास–रस के समुद्र में निमज्जित देखकर, शुक सारी तथा समयज्ञ बानरी वृक्ष पर बैठकर, निम्नलिखित भय उत्पन्न करने वाले श्लोक का पाठ करने लगे–

प्रोद्यदर्कांशु जटिला सतां वन्द्यारुणाम्बरा।
तपस्विनीव पूरतः प्रातः संध्येयमागता।।

–श्रीश्री विन्दुप्रकाश (७६)

(अर्थात उदीयमान सूर्य की किरण समूहरूपी जटाओं से युक्त, जटाधारी साधुओं की वंदनीया, अरुण वस्त्र धारण करने वाली, तपस्विनी का वेश धारण करके, यह प्रातःकालीन संध्या आ पहुंची है।)

"श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर युगल ने, जटिला (श्रीमती राधारानी की सास का नाम भी जटिला था) का नाम सुनते ही, बहुत भयातुर होकर तथा सुख भंग की वेदना को प्राप्त होकर, अपने अपने घर जाने का निश्चय किया। हैरान होकर चारों दिशाओं में दृष्टि दौड़ाते हुए सखियों के साथ, वे उसी समय रंगशाला से रवाना हुए। श्रीमती राधारानी बहुत तीव्र गति से जाती हुई, अपने मार्ग से भटकी हुई हिरणी की भांति शोभा पा रही थीं। तीव्र गति से चलने के कारण, उनके बांए चरण का मंजुघोष नामक इन्द्रनीलमणि खचित स्वर्ण नूपुर स्खलित होकर, रंगशाला में ही गिर पड़ा।

"अपने घर पहुंच कर श्रीमती राधारानी ने अपने बांए चरण पर दृष्टिपात किया और उसे नूपुर विहीन पाकर वे शंकित हो गईं। उन्होंने घबराकर अपनी सखियों से कहा "हे सखियो! रत्न समूह खचित स्वर्ण नूपुर, जिसे कल सायंकाल ही मेरी सास ने मुझे स्नेहपूर्वक भेंट के रूप में दिया था, मेरे बांए चरण से स्खलित होकर रास्ते में अथवा निकुंज में या

नृत्यशाला आदि में कहीं गिर गया है। इस विषय में अब क्या करना चाहिये, यह तुम लोग निश्चय करो।"

"यह सुनकर, एक सखी ने कहा, "द्रुत गति के कारण वह नूपुर कहीं रास्ते में गिर गया होगा।" दूसरी कोई कहने लगी, "नूपुर कहीं निकुंज में ही गिर गया होगा।"

किसी तीसरी ने मत व्यक्त किया, "निश्चय ही नूपुर कहीं नृत्यशाला में ही स्खलित होकर गिर पड़ा होगा।"

सखियों में सोचविचार तथा तर्क वितर्क चल ही रहा था कि परम बुद्धिमति सखी वृंदा वहां आ पहुंची। वह कहने लगी, "तुम चिंता मत करो। मैंने विचक्षण नामक शुक से सुना है कि किसी अति सौभाग्यशाली सज्जन को वह नूपुर रासस्थली में मिला है। इसलिए हे सखियो! अब हम शुभदा गांधर्वा के साथ, उस मनोहर रासस्थली में जायेंगी तथा उस सुशान्त सज्जन से उस नूपुर को ले आयेंगी।" वृंदा के वचनों को सुनकर, सखियों ने श्रीमती राधारानी से कहा, "हे राधिके! आप नूपुर को लाने के लिए अपनी विशिष्ट सखियों के साथ नृत्यशाला में जाइये।"

श्री ललिता सखी ने श्री कृष्णदास से आगे कहा, "हे सुभग! हे सुबुद्धे! हम सब विचार–विमर्श करने के बाद ही अत्यन्त गुप्त रूप से आपके पास आई हैं। कटुभाषिणी सास के सोकर उठने से पहले ही, जिस प्रकार नूपुर लेकर वापिस अपने घर पहुंच जायें, यह विचार कर तुम शीघ्र अति शीघ्र हम लोगों को नूपुर दे दो। इस के बदले में तुम और किसी भी इच्छित वस्तु के लिये प्रार्थना कर सकते हो। हम आप की अभिलाषा निश्चितरूप से पूरी करेंगी।"

कि बर मांगिबे मांग तोमारे से दिब।
वांछा सिद्ध करिया, नूपुर लयां याब।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/७३)

(अर्थात् तुम क्या वर मांगते हो, मांग लो। तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करके ही इस नूपुर को ले जाऊंगी।)

स्नेहशीला श्री ललिता सखी के मुख से यह उत्कृष्ट आनन्ददायक विवरण सुनकर, श्री कृष्णदास जी पुलकित होकर, श्री ललिता जी के चरणों

से लिपट गए। अपने उत्तरीय वस्त्र में रखे हुए श्रीमती राधारानीजी के बांए चरण के इन्द्रनीलमणि खचित मंजुघोष नामक नूपुर को निकाल कर, उन्होंने पहले अपने मस्तक पर धारण किया। तत्पश्चात उसे श्री ललिता सखी को समर्पित करते हुए उनसे करबद्ध प्रार्थना की, "हे परम करुणामयी! मैं आपके दिव्यस्वरूप के दर्शन करना चाहता हूं। कृपा करके मुझे दर्शन कराइये।"

"के तुमि तोमार रूप देखिब जे आमि।"

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/७५)

(अर्थात् तुम कौन हो? मैं तुम्हारे स्वरूप के दर्शन करना चाहता हूँ।)

श्रीमती ललिता सखी ने, श्री कृष्णदास जी की अभिलाषा जानकर उनसे कहा, "तुम मेरे स्वरूप के दर्शन करने की अभिलाषा रखते हो, किन्तु तुम अपने इन प्राकृत चक्षुओं के द्वारा, मेरे अप्राकृत दिव्य स्वरूप के कैसे दर्शन कर सकोगे, क्योंकि प्राकृत चक्षुओं द्वारा अप्राकृत रूप के दर्शन असम्भव हैं। क्या तुम मेरे स्वरूप के दर्शन करके स्थिर रह सकोगे?"

"देखिले आमार रूप, धैर्य ना रहिबे।
अचेतन हैले रूप, केमने देखिबे।।"

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/७६)

(अर्थात् मेरे स्वरूप के दर्शन करके तुम्हारा धैर्य जाता रहेगा। अचेतन होकर तुम मेरे स्वरूप के दर्शन कैसे करोगे?)

श्री कृष्णदास जी ने तब उत्कंठित होकर कहा, "हे देवी! आपकी कृपा होने पर, असम्भव भी सम्भव हो सकता है। इसलिए मुझे अपना एकान्त सेवक जानकर, अपने दिव्य स्वरूप के दर्शन कराकर, कृतार्थ कीजिए।"

श्री कृष्णदास की प्रार्थना से श्री ललिता जी का चित्त द्रवित हो गया। उन्होंने श्री कृष्णदास जी को दिव्य दृष्टि प्रदान की तथा श्री कृष्णदास जी उनके दिव्य स्वरूप के दर्शन करने लगे—

शुद्ध कांचन गुंजाभा, शुभ्र वस्त्रा सुलोचना।
कोटि कंदर्प लावण्या, कोटिन्दु ललिता सखी।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/८२/क)

श्री कृष्णदास जी, श्री ललिता जी के उस अप्राकृत दिव्य—चिन्मय

स्वरूप के दर्शन करके भावविह्वल हो गए। उनके शरीर में स्वेद, कम्प, अश्रु, पुलक आदि अष्ट सात्त्विक भावों के विकार परिलक्षित होने लगे। उद्दाम प्रेम तरंग से कम्पायमान होकर, वे मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। स्नेहशीला श्रीललिता जी ने तब अपने वरद अभय करकमल उनके धूली धूसरित अंग पर संचालित करके, श्री कृष्णदास जी की चेतना लौटाई और उनको धैर्य प्रदान किया।

तदनन्तर श्री ललिता सखी ने श्री कृष्णदास जी से पूछा, "कृष्णदास! तुम्हारे मन में यदि और कोई अभिलाषा है तो शीघ्र उसका भी प्रकाश करो। उसको भी मैं पूर्ण करूंगी।"

श्री कृष्णदास जी का चित्त, प्राकृत जीवों के चित्त की भान्ति माया के दलदल में आबद्ध नहीं था। इसलिये वे पुलकित चित्त और गद्‌गद कण्ठ से बोले, "हे देवी! यदि आप सचमुच मेरे मन की अभिलाषा को पूर्ण करना चाहती हैं, तो ऐसी कृपा कीजिए जिस से मैं आपकी दासी बनकर, श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी के निकुंज विलास में सेवा करने का अधिकार प्राप्त कर सकूं।"

कृपामयी श्री ललिता जी ने उत्तर में कहा "कृष्णदास! तुम्हारे इस प्राकृत देह से श्रीश्री राधा श्यामसुंदर की अप्राकृत कुंज सेवा प्राप्त नहीं हो सकती। अन्तश्चिन्तित देह सेश्रीरूप– मंजरी के आनुगत्य में कुंज सेवा करते रहो। प्राकृत देह भंग होने के पश्चात्, अपनी सिद्ध देह प्राप्त करने पर, श्रीश्री राधाश्यामसुंदर जी की कुंज सेवा का अधिकार भी प्राप्त कर सकोगे। हां, इसके अतिरिक्त अगर तुम्हारे मन में कोई और अभिलाषा हो, तो शीघ्र व्यक्त करो।"

इस पर श्री कृष्णदास जी ने श्री ललिता जी के चरणारविंद में यों निवेदन किया–

"मोर बांछा एइ, राइर चरण देखिते।
कोन उपाये दर्शन कराह त्वरिते।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/१०६)

(अर्थात् मेरे मन में यह अभिलाषा है कि मैं श्रीमती राधारानी जी के चरणारविन्द के दर्शन करूं। आप किसी भी प्रकार से तुरन्त उनके दर्शन करा दीजिये।)

श्री कृष्णदास जी की इस प्रार्थना को सुनकर, श्रीललिता जी चिन्तित हो गईं, किन्तु श्रीमती राधारानी जी ने इस प्रार्थना को सुनकर श्री ललिता जी से कहा, "ललिते! तुम कृष्णदास को मेरा निज मंत्र प्रदान करो।" फिर उन्होंने श्री वृन्दा जी से यों कहा, "वृन्दे! तुम कृष्णदास को मेरे सरोवर में स्नान करवा करके लाओ। उससे कृष्णदास सिद्ध मंजरी देह को प्राप्त होगा एवम् मेरे दर्शन कर सकेगा। तुम दोनों (ललिता जी तथा वृंदा जी) तदनुरूप कार्य करो, क्योंकि कृष्णदास मुझे बहुत ही प्रिय है।"

श्रीमती राधारानी जी के निर्देशानुसार, श्रीमती ललिता सखी ने श्री कृष्णदास को सिद्ध कृपा मंत्र, "षड़ैश्वर्यपूर्ण श्रीराधा मंत्र" प्रदान किया। उस मंत्र को जपते हुए श्री कृष्णदास ने जैसे ही श्री राधाकुण्ड में स्नान किया, विस्मयजनक रूप से वे तत्क्षण अप्राकृत मंजरी स्वरूप को प्राप्त हो गए।

"स्नान मात्रे सखी देह हइल ताहार।
देखिया ललिता चित्ते आनन्द अपार।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/११६)

(अर्थात स्नान करते ही श्री कृष्णदास जी सखी देह को प्राप्त हुए, जिसको देखकर ललिता जी अत्यन्त प्रसन्न हुईं।)

श्री कृष्णदास जी के उस मंजरी स्वरूप के दर्शन करके, वहां उपस्थित सभी लोगों के मन में मोह उत्पन्न हो गया। उनकी मंजरी देह की ज्योति, तप्त स्वर्ण की भांति थी। उनके वक्षःस्थल ने तुंगस्तन युगलों से विशाल आकार धारण किया था। उनका कटि भाग सिंह की कटि की भांति क्षीण था एवम् भौंहों का धनुष, कंदर्प को भी परास्त कर रहा था। उन्होंने भ्रमर समूह से खचित कौषेय वस्त्र द्वय धारण कर रखे थे। मंजूघोष नूपुर को अपने मस्तक पर रखकर, श्रीललिता जी तथा श्री रूपमंजरी के पीछे पीछे वे श्रीश्री राधारानी जी के निकुंज मंदिर में प्रविष्ट हुए।

श्री ललिता जी ने उन्हें श्रीमती राधारानी जी के रातुल चरणारविन्द में प्रणत करवाकर, मधुर और विनम्र वाणी से श्रीमती राधारानी जी से निवेदन किया, "हे राधिके! इस नति–परायणा, लज्जाशीला के मस्तक पर आप अपने चरण कमल रखकर, इसकी अपने गणों में गणना कीजिये।"

परम करुणामयी श्रीमती राधारानी जी ने तब उस लज्जा से

अवनत मंजरी (कृष्णदास) को स्नेहपूर्वक स्वहस्तों से अपने चरणों से उठाकर यों कहा, "जो पहले कृष्ण प्रिया थी, यह मेरे सम्मुख खड़ी मंजरी वही है। इस लिए मैं इस पर विशेष कृपा करके, इसको अपने गण के रूप में ख्याति दिलवाऊंगी।" फिर उन्होंने उस मंजरी (श्रीकृष्णदास जी) से यों कहा—

तुमि हओ नर्म्म सखी प्रिय सहचरी।।
ललिता जुथेते तुमि थाक सर्ब काले।
कुंज सेबा अधिकार तोमार गोचरे।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/१२३, १२४)

(अर्थात् तुम मेरी नर्म्म सखी सहचरी हो। तुम सदा ललिता के यूथ पर रहती हो। तुम्हें कुंज सेवा का अधिकार भी प्राप्त हुआ है।)

इसके बाद श्रीमती राधारानी ने, श्री ललिता सखी को आदेश देते हुए कहा—

"इंहारे नूपुर चिन्ह दियतः आपनि।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/१२५)

(अर्थात तुम इसको मेरे नूपुर चिन्ह प्रदान करो।)

इस आदेश का पालन करते हुए श्री ललिता सखी ने जैसे ही नूपुर चिन्ह देने के लिए श्रीराधारानी के स्वर्ण नूपुर का श्री कृष्णदास जी के ललाट से स्पर्श कराया, उनके (श्रीकृष्णदास के) ललाट का हरि मंदिर तिलक, श्रीमती राधारानी जी की चरणाकृति वाले दिव्य नूपुर तिलक में परिवर्तित होकर प्रकाशित हो उठा। उस उज्ज्वल तिलक के दर्शन करके, श्रीमती राधारानी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने अपने वक्षःस्थल पर स्थित कुमकुम, कपूर, चंदन व मधु को मिश्रित करके, चन्द्रकान्ति पत्थर पर घिसकर, नूपुर के चूड़ा के अग्र भाग द्वारा, अत्यन्त स्नेहपूर्वक, उस मृगनयनी मंजरी (श्रीकृष्णदास) के ललाट पर, नूतन तिलक के बीचों बीच, एक उज्ज्वल बिंदु की रचना कर दी।

ललाटे नूपुर स्पर्शे तिलक हैला।
नूपुरेर चूड़ा लागि माझे बिन्दु हैला।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/१२६)

(अर्थात ललाट पर नूपुर के स्पर्श से तिलक हो गया था। अब नूपुर के चूड़ा के स्पर्श से तिलक के मध्य बिन्दु प्रकाशित हो गया।)

उस उज्ज्वल बिन्दु युक्त तिलक को देखकर, श्रीललिता सखी ने कहा, "हे आनन्दमयी दयाशीले! आपने अपने करकमलों द्वारा तिलक के मध्य में उज्ज्वल बिंदु प्रदान करके, तिलक को एक नया रूप दे दिया है। आपके द्वारा रचित बिंदु से युक्त यह एकमात्र तिलक 'श्याम मोहन' तिलक के नाम से ख्याति प्राप्त करेगा।"

नासार्द्धम केश पर्यन्तम् ऊर्ध्वपुण्ड्रम सुशोभनम्।
मध्ये कृपा बिन्दु युक्तम् तिलकम् श्याम मोहनम्।।

– (महाजनोक्ति)

श्री ललिता जी ने आगे कहा, "श्रीमती राधारानी द्वारा अनुग्रहिता इस सखी ने, श्रीमती श्यामा (श्रीराधा) जी को अत्यन्त आनन्द प्रदान किया है। इसलिए आज से इसका नाम होगा श्यामानन्द।"

आमार श्यामार आजि हइला आनन्द।
आजि हइते तोमार नाम हउ श्यामानन्द।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३ / ११८)

(अर्थात मेरी श्यामा को आज तुमसे बहुत आनन्द प्राप्त हुआ है। इसलिए आज से तुम्हारा नाम होगा श्यामानन्द।)

श्री विशाखा सखी ने श्री कृष्णदास जी के उस उज्ज्वल कनक कान्तियुक्त स्वरूप का दर्शन करके, प्रफुल्लित होकर उनको कनकमंजरी नाम से सम्बोधित किया। प्रेमानन्दमयी श्रीमती राधारानी जी, कनकमंजरी को सम्बोधित करके कहने लगीं, "हे कृष्ण प्रिये कनकमंजरी ! श्री मधुसूदन को आनन्द प्रदान करने वाली एवम् मेरे नेत्रों को तृप्ति प्रदान करने वाली तुम, श्री ललिता तथा श्री विशाखा जैसी ही मेरी नित्यप्रिया हो।"

श्री ललिता तथा श्री विशाखा ने श्रीमती राधारानी के इन वचनों को सुनकर उनका अभिनन्दन किया और उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, "यह देवी आपके कृपाप्रसाद से अलौकिक महिमा को प्राप्त हो गई है। दाड़िम वृक्ष के नीचे कुंज के प्रांगण में आपके नूपुर की प्राप्ति के सौभाग्य के बल से, यह आपकी विशिष्ट सखियों में स्थान प्राप्त करने में सफल हो गई है। अहो!

यह कनकमंजरी धन्य एवम् अत्यन्त महिमान्विता है। शचि और सावित्री आदि देवरमणियां, निरन्तर इसके चरणों का अन्वेषण करेंगी, क्योंकि आपने इसकी अपनी विशिष्ट सखियों में गणना कर ली है।"

श्रीमती राधारानी ने कनकमंजरी रूपी श्री कृष्णदास जी को सम्बोधित करते हुए कहा, "हे कनकमंजरी! मेरी समस्त सखियों के साथ तुमने मुझे बहुत आनंद प्रदान किया है। अब तुम अपने निर्दिष्ट कार्य के सम्पादन के लिए, मर्त्यलोक में वापिस जाओ। मेरी कृपा से यह मधुर स्मृति निरन्तर तुमको आनन्द प्राप्त करवाती रहेगी।"

श्रीमती राधारानी के इस कथन को सुनते ही, कनकमंजरी रूपी श्री कृष्णदास जी कातर होकर आर्तनाद करने लगे। सारा लोक उनको हिलता हुआ प्रतीत होने लगा। उनके अंग विवर्ण और मलिन हो गए, जैसे एक निमेष में ही उनकी सारी श्री का नाश हो गया हो। अश्रुसिक्त नयनों और वाष्परुद्ध कण्ठ से, वे हाथ जोड़ कर विनय करते हुए कहने लगे, "हे कातरजनों के प्रति दयाशीले! आप अपनी अहैतुकी कृपा से मेरे जैसे दुर्गतिसम्पन्न व्यक्ति को, जब अपने श्रीचरणों के सान्निध्य में ले आई हैं तो फिर दोबारा मुझ अभागे को उस मायादग्ध मर्त्यलोक में न भेजें। आपने जो अपने रक्ताभ चरण कमलों की सेवा करने का सुदुर्लभ अवसर प्रदान किया है, उसे मुझसे न छीनें।"

परम कृपाशालिनी श्रीमती राधारानी ने, अपनी प्रिय सहचरी कनकमंजरी की इस कातर अभिव्यक्ति से अत्यन्त मार्मिक पीड़ा अनुभव की। कनकमंजरी के सिर पर अपना अभय वरद हस्त फेरते हुए तथा स्नेहसिक्त नेत्रों से उसकी ओर निहारते हुए, उन्होंने कहा, "हे नित्य सहचरी! हालांकि तुम मेरी श्रेष्ठा व प्रीति प्रदायिका संगिनी हो, किन्तु विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए, तुम मर्त्यलोकवासिनी बनी हो। तुम्हें मर्त्यलोक में जीवोद्धार का कार्य करना है। यह कार्य पूर्ण कर लेने पर तुम नित्यधाम में मेरी नित्यसेवा में फिर से नियुक्त हो जाओगी।"

किछुदिन उत्कलेते जीव उद्धारिया।
पुनरपि आमार सेवाय रहिबे आसिया।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/१६७)

(अर्थात तुम कुछ दिन उत्कल में जीवोद्धार का कार्य करके फिर मेरी सेवा में ही आकर रहोगी।)

श्रीमती राधारानी ने आगे कहा, "तुम मेरे विछोह के कारण मलिन, विवर्ण एवं कातर हो रही हो। इसलिए मैं तुमको अपने प्राणाधार स्वरूप, श्री श्यामसुंदर के अनिर्वचनीय सौंदर्य–माधुर्य से परिपूर्ण, इन दिव्य श्रीविग्रह को प्रदान कर रही हूं। इनकी प्रेम सहित, प्राणपण से सेवा करने पर, तुम मेरी विरहविधुरता को भूल सकोगी। मर्त्यजगतवासी भी इनके दर्शन और सेवा करके, सर्वोत्तम अभीष्ट प्राप्त कर सकेंगे। सकाम तथा निष्काम दोनों प्रकार के मनुष्यों के लिये ही ये श्रीविग्रह, साक्षात् कल्पतरु के सदृश हैं एवम् सर्ववांछाओं को पूर्ण करने वाले हैं।"

–श्रीश्री श्यामानन्द रसनिधि (३)

इस प्रकार कहकर रास रासेश्वरी श्रीमती राधारानीजी ने कनकमंजरी रूपी श्री श्यामानंद का स्नेहसिक्त नयनों से अवलोकन करते हुए, अपनी दिव्य कृपा प्रदर्शित करके, अपने हृदयकमल से श्रीश्री श्यामसुन्दर जी के अप्राकृत, दिव्य, चिन्मय, श्रीविग्रह प्रकट करके, श्री ललिता सखी के माध्यम से कनकमंजरी रूपी श्री श्यामानंद को प्रदान किये। इन श्रीविग्रह को प्रदान करती हुई, वे कनकमंजरी रूपी श्रीश्यामानंद जी से बोलीं "हे श्यामानंद! कलिहत जीव, अल्पायु तथा साधन भजनहीन हैं। इन जीवों के सहज उद्धार के सहज उपाय के रूप में, तुमको मैं ये श्रीविग्रह दे रही हूँ।

(१) "जो व्यक्ति इन श्रीविग्रह के भक्ति सहित, केवल एकबार दर्शन मात्र भी कर लेगा, वह प्रेमभक्ति प्राप्त करके पुनर्जन्म के जंजाल से छुटकारा पाकर, अत्यन्त दुर्लभ श्रीकृष्णधाम को प्राप्त करेगा। उसके घर में दुर्भाग्य, दरिद्रता तथा महापातक कभी विद्यमान नहीं रहेंगे।"

(२) "जो व्यक्ति नित्य इन श्रीविग्रह के दर्शन करेगा, उसकी पूर्ववर्त्ती तथा परवर्त्ती दस दस पीढ़ियां उसके साथ श्रीकृष्णधाम को प्राप्त करेंगी। इस लोक में वह व्यक्ति पुत्र, पौत्र तथा अन्य आत्मीय परिजनों के साथ, देवगणों के द्वारा भी वांछित अतुल सुख–सम्पदा तथा ऐश्वर्य का भोग करेगा। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ज्वाला और भय से मुक्त होकर, वह सौभाग्यशाली सिंह के समान विचरण करेगा।"

(३) जो व्यक्ति नित्य इन श्रीविग्रह के श्रीमंदिर का मार्जन करेगा, वह देवलोक के सब सुख भोगने के पश्चात, श्रीकृष्णलोक को प्राप्त होकर, श्रीकृष्णपरिकर के रूप में, श्रीकृष्ण की सेवा का आनन्द प्राप्त करेगा। जो व्यक्ति नित्य इनके मंदिर का मार्जन के पश्चात, गोबर से लेपन करेगा, उसके भार्याकुल, मातृकुल और पितृकुल में, किसी को भी यमपुरी में नहीं जाना पड़ेगा।

(४) जो पुण्यकर्मा व्यक्ति श्री श्यामसुंदर जी के मंदिर के ऊर्ध्वभाग में ध्वजा आरोहण करेगा तथा पताकाओं से श्रीमंदिर को सजाएगा, उसकी जन्म से लेकर संचित सारी पापराशि, तत्क्षण विनष्ट हो जाएगी।

(५) जो परम सौभाग्यशाली महात्मा, नित्य इन श्रीविग्रह का पूजन करेगा, वह महापुरुष सारे संसार का उद्धार करने की शक्ति अर्जित करेगा और उसके सारे मनोरथ सिद्ध होंगे।

(६) जो सौभाग्यशाली व्यक्ति, इन श्रीविग्रह को नवीन वस्त्र अर्पण करेगा, वह कुछ दिन चन्द्रलोक में निवास करने के उपरान्त, श्रीकृष्ण धाम को प्राप्त करेगा। वह सम्पत्तिशाली, सौभाग्यशाली, व्याधिमुक्त तथा रमणीप्रिय होकर, राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करके, अनंतकाल तक, हरिधाम में अवस्थान करेगा।

(७) जो धनाढ्य व्यक्ति, श्री श्यामसुंदर जी के श्रीविग्रह को मणिमुक्ता से खचित, उत्कृष्ट अलंकार प्रदान करेगा, वह चक्रवर्ती राजा, ससागर पृथ्वी का शासनकर्ता, शत्रुदलनकारी, पातकमुक्त, रमणीप्रिय, महासौभाग्यवान तथा राजसूय एवम् अश्वमेध यज्ञों के फल का प्राप्तकर्ता होकर, अंत में अनंतकाल तक श्रीकृष्ण के निजलोक में वास करेगा। जो व्यक्ति स्वर्णालंकार से सुसज्जित, श्रीश्री श्यामसुंदर जी के भक्तिपूर्वक दर्शन करने का मात्र एकबार भी सौभाग्य प्राप्त करेगा, उसके सप्तकुल परित्राण प्राप्त करेंगे।

(८) जो बहु पुण्यफलयुक्त व्यक्ति, श्रीश्री श्यामसुंदर जी के लिए फूलों के आभूषण, कुसुमछत्र, कुसुमण्डप तथा कुसुमपलंग आदि प्रदान करेगा, वह महत ऐश्वर्य, नाना प्रकार के उत्तम भोग, क्रीड़ा तथा विहार के अवसर प्राप्त करने के पश्चात, श्री श्यामसुन्दर जी के नित्यधाम को गमन करेगा।

(९) जो सौभाग्यशाली व्यक्ति, इन श्रीविग्रह को उत्तम नैवेद्य, उत्तमपेय आदि प्रदान करेगा, उसके सभी सत्मनोरथ पूर्ण होंगे। वह दीर्घायु, सौभाग्यशाली, समृद्धिसम्पन्न, शक्तिमान, रूपवान, शोकरहित, निरोग तथा रमणीप्रिय होगा और अग्निष्टोम, अतिरात्र, अश्वमेध व राजसूय यज्ञों का फल प्राप्त करके, अन्त में श्रीकृष्ण जी के परमपद को प्राप्त करेगा।

(१०) जो व्यक्ति भक्तिपूर्ण मन से, श्रीश्यामसुन्दर जी के मन्दिर की चार बार परिक्रमा करेगा, वह अखिल विश्व परिक्रमा, सर्वतीर्थ दर्शन, स्नान व प्रदक्षिणा, सर्वपातकों से मुक्ति तथा दश अश्वमेध यज्ञों के फल का लाभ प्राप्त करके, अंत में हंसयान पर आरूढ़ होकर, श्रीकृष्ण जी के निजधाम को गमन करेगा। उसके सभी सद्मनोरथ पूर्ण होंगे और वह जन्म–मरण के चक्कर से मुक्ति पा जायेगा।

(११) जो क्षणजन्मा व्यक्ति, श्री श्यामसुंदर जी के आरती के आलोक में दर्शन करेगा, उसके द्वारा की हुई पूजा, मंत्र तथा क्रिया वर्जित होने पर भी फलवती होगी। उस के द्वारा कृत कोटि कोटि ब्रह्महत्या तथा अगम्यागमन जैसे पाप भी, तत्क्षण विनष्ट हो जायेंगे। अन्त में वह व्यक्ति श्रीकृष्ण के परमपद को प्राप्त होगा।

(१२) जो सौभाग्यशाली व्यक्ति, श्री श्यामसुन्दर जी के मन्दिर का निर्माण अथवा संस्कार करेगा, उसके अतीत तथा भविष्य के दस हजार कुल, श्रीकृष्ण धाम को प्राप्त होंगे। उस के द्वारा किये हुए सभी पापों का नाश हो जाएगा और शीघ्र ही वह व्यक्ति, श्रीकृष्ण के सेवानन्द को प्राप्त करेगा।

हे कृष्णप्रिय श्यामानन्द ! सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिए, मैं इन श्रीविग्रह को तुम को प्रदान कर रही हूँ। जितने समय तक तुम मृत्युलोक में जीवों के उद्धार के लिए रहोगे, उस समय तक, तुम इनकी सेवा में लगे रहना। तत्पश्चात तुम हमारे धाम में आकर, हमारे नित्य सेवानन्द को प्राप्त करोगे।"

–श्रीश्री श्यामानन्द रसनिधि (३)

श्री श्यामानन्द प्रभु को वृन्दावन में कुंज सेवा के समय, श्रीमती राधारानी जी के नूपुर की प्राप्ति, उज्ज्वल बिंदु युक्त तिलक की प्राप्ति तथा श्रीश्री श्यामसुंदर जी के अलौकिक दिव्य, चिन्मय, ललितलावण्यमय

श्रीविग्रह की प्राप्ति, भजन के अत्यन्त गूढ़ विषय होने के कारण, श्री ललिता सखी ने इस रहस्यकथा का श्रील जीव गोस्वामी के अतिरिक्त अन्य किसी के निकट प्रकाश न करने के लिए, श्री श्यामानंद प्रभु को निर्देश दिया।

ललिता कहेन तुमि शुन श्यामानन्द।
धन्य तुमि पाइले श्यामा पद द्वन्द्व।।
श्री जीव बिना एइकथा कारे ना कहिबे।।
अन्यत्र कहिले तुमि पराणे मरिबे।
आमार शपथ राइर चरण न पाबे।।
निज रूप तोमार प्रकाश नाहि हबे।।

—श्रीश्री श्यामानंद प्रकाश (१/१३५—१३८)

(अर्थात श्री ललिता जी ने कहा "हे श्यामानन्द! तुमको श्यामाजी का नूपुर प्राप्त हुआ था, इसलिए तुम धन्य हो। इस रहस्यकथा का, श्रील जीव गोस्वामी के अतिरिक्त अन्य किसी के सम्मुख प्रकाश न करना। यदि करोगे तो तुम मृत्यु को प्राप्त होओगे। तुम्हें मेरी शपथ है। तुम्हें श्रीमती राधारानी के चरणारविंद की प्राप्ति भी नहीं होगी" और तुम्हारा स्वरूप भी प्रकाशित नहीं होगा।")

श्रीमती ललिता सखी ने आगे कहा, "अगर तुम कभी विपत्तिग्रस्त हो जाओ तो मेरे द्वारा दिये हुए षड़ैश्वर्यपूर्ण, श्रीराधामंत्र का जप करने से, मेरे साक्षात दर्शन प्राप्त करोगे।"

श्रीमती राधारानी जी, श्री ललिता तथा श्री विशाखा आदि सखियों के साथ, कनकमंजरी रूपी श्री श्यामानन्द पर बहुत कृपा प्रदर्शित करने के उपरान्त, वहां निकुंज से अंतर्हित हो गयीं।

श्रीमती राधारानी जी की इच्छानुसार, श्री कृष्णदास जी, मंजरी रूप का परित्याग करके अपने पूर्व रूप को प्राप्त होकर, कुंज से बाहर आए। श्रीमती राधारानी जी के मंजुघोष नामक नूपुर के स्पर्श से उनका घास छीलने वाला खुरपा भी सोने का बन चुका था।

"नूपुर संगेते सेई खुरपा आछिला।
परशे नूपुर संगे सुबर्ण हइला।।

—श्री श्री श्यामानन्द प्रकाश (१/१०४)

(अर्थात वह लोहे का खुरपा, नूपुर के साथ रहने के कारण नूपुर

के स्पर्श से, सोने का बन गया था।)

ललाट पर उज्ज्वल कृपाबिन्दुयुक्त, श्रीमती राधारानी के चरणों की आकृति वाला श्याममोहन नामक नूपुर तिलक, वक्षःस्थल में श्यामानन्द नाम, कक्ष में स्वर्ण खुरपा तथा सिर पर श्री श्यामसुन्दर जी के दिव्य श्रीविग्रह को लेकर, श्रीकृष्णदास जी, प्रेमविह्वल चित्त से, लोचनों से अश्रु विसर्जित करते हुए, श्रील जीव गोस्वामी जी की कुटीर में आ पहुँचे।

श्रील जीव गोस्वामी पाद, श्री कृष्णदास का यह अद्‌भुत रूपान्तर तथा भावान्तर देखकर चौंक पड़े। पहले श्रीकृष्णदास जी की गौरवर्ण देह थी, जो अब कँचनवर्ण में परिवर्तित हो गई थी। माथे का हरिमंदिर आकृति वाला तिलक, अब बिन्दुयुक्त श्री राधाचरणाकृति वाले नूपुर तिलक में परिवर्तित होकर, ललाट पर सुशोभित हो रहा था। श्री कृष्णदास जी के हाथ में पहले लोहे का खुरपा हुआ करता था जिसके स्थान पर अब स्वर्ण का खुरपा उनके हाथ में झलमला रहा था। सर्वोपरि, अपने मस्तक पर, अपूर्व त्रिभंग– भंगिमायुक्त ललित लावण्यमयी श्रीकृष्णमूर्ति धारण करके, श्री कृष्णदास मानो किसी अनिर्वचनीय भाव राज्य में निमग्न दीख रहे थे। श्रील जीव गोस्वामी ने अत्यन्त विस्मित हो कर श्रीकृष्णदासजी से प्रश्न किया, "कृष्णदास ! इतने दीर्घ समय तक तुम कहाँ थे? तुम्हारी देह में यह अपूर्व कांचन कांति कहाँ से आई? निश्चय ही तुमने आज श्री श्यामसुन्दर जी की अथवा श्री वृषभानु राजनन्दिनी, श्रीमती राधारानी जी की कृपा प्राप्त की है। सत्य–सत्य बतलाओ।" अनुभवी श्रील जीव गोस्वामी ने, यह अनुमान लगा लिया कि श्री कृष्णदास जी के जीवन में निश्चित रूप से कोई रहस्यमयी लीला घटी थी। इसलिए उत्कण्ठित होकर उन्होंने ये प्रश्न भी किये:–

राधाकृष्ण कृपा हैल निश्चय तोमारे।
बंचना ना करिया, सत्य कहत आमारे।।
कृष्ण किबा राधा कृपा कहत बिबरि।
राधा पदचिन्ह प्राय ललाटे नेहारि।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/५२, १५३)

(अर्थात तुम वंचना न करके मुझ से सत्य बोलो। तुमने श्रीकृष्ण अथवा श्रीमती राधा जी की कृपा प्राप्त की है। तुम्हारे ललाट पर यह चिन्ह

श्रीमती राधारानी जी के चरण चिन्ह जैसा ही लग रहा है।)''

श्रीकृष्णदास, श्रील जीव गोस्वामी को एकान्त में ले गए और भावविह्वल चित्त से व वाष्परुद्ध कण्ठ से सारी रहस्यपूर्ण घटना का, आद्योपान्त वर्णन किया। साथ में उन्होंने श्री ललिता जी की चेतावनी के विषय में भी, (जिसके अनुसार इस घटना का रहस्योद्घाटन केवल श्रील जीव गोस्वामी के सम्मुख ही करने का आदेश दिया गया था) श्रील जीव गोस्वामी को सूचित कर दिया।

श्री कृष्ण दासजी के प्रति श्रीमती राधारानी जी की इस अलौकिक असीम कृपा की कथा को श्रवण करके, धीरजचूड़ामणि, श्रील जीव गोस्वामी अकस्मात परमानन्द से उन्मत्त होकर, शिशु के समान नृत्य करने लगे। उनके लोचनद्वय से प्रेमाश्रुओं की धारा प्रवाहित हो उठी। वे श्री कृष्णदास जी को प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध करके प्रेमोद्रेक से कहने लगे, "हे कृष्णदास। त्रिलोकी में केवल तुम्ही धन्य हो। मनुष्यों में केवल तुम्हारा जन्म ही सार्थक है, क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी ने भी आज तक इस संसार में, श्रीमती राधारानी की ऐसी साक्षात् कृपा प्राप्त नहीं की है। श्री वृषभानु राज नन्दिनी, श्रीमती राधारानी की साक्षात् कृपाप्रेष्ठ तुम को स्पर्श करके, आज मैं भी धन्यातिधन्य एवम् पवित्र हो गया हूँ।"

आमार कत भाग्य तोमारे परशिला।
एत दिने आमार देह पबित्र हइला।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/१६४)

(अर्थात मेरा कितना सौभाग्य है कि मैं आज तुम्हारा स्पर्श कर रहा हूँ। इतने दिन में आज मेरा शरीर पवित्र हो गया है।)

श्रील जीव गोस्वामी ने आगे कहा, "तुम्हारे इस अनिर्वचनीय प्रेममूल्य से आज मैं पूर्णरूपेण तुम्हारे हाथ बिक गया हूं। मैं अपने आप को कृतकृत्य अनुभव कर रहा हूं। तुम्हारे प्रति रास रासेश्वरी की इतनी असीम कृपा? यह सोच कर मेरे अंग अंग में सिहरन हो रही है। श्री ललिता जी द्वारा प्रदत्त तुम्हारा श्यामानंद नाम ही, वैष्णव समाज में प्रकाशित होगा। तुम्हारा श्याममोहन तिलक, तुम्हारे इस दिव्य नाम के अनुसार, श्यामानन्दी तिलक के नाम से संसार में ख्याति प्राप्त करेगा।"

"तिलकेर नाम राखिलेन श्यामानन्दी।"

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/१७२)

(अर्थात तिलक का नाम श्यामानन्दी रखा।)

"तुमने श्रीमती राधारानी जी की श्रेष्ठ कृपा स्वरूप, जो ये अप्राकृत, चिन्मय, दिव्य, ललितलावण्यमय श्रीकृष्ण विग्रह प्राप्त किये हैं, श्रीमती राधारानी के प्राणों के आधार स्वरूप ये श्रीविग्रह, श्री श्यामसुंदर जी के नाम से प्रसिद्ध होकर मर्त्यलोकवासी जीवों को दर्शन प्रदान करते हुए उनका उद्धार करते रहेंगे।"

श्री श्यामानन्द प्रभु ने समग्र सृष्टि में श्रीमती राधारानी द्वारा प्रदत्त इन एकमात्र श्रीविग्रह की (जो ईसवी सन् १५७८ की बसन्तपंचमी वाले दिन, उनको प्राप्त हुए थे) श्रीधाम वृन्दावन के सेवाकुंज मौहल्ला में, राजोपचार से स्थापना की और सेवा आरम्भ की।

श्रील जीव गोस्वामी पाद ने सोचा कि श्री कृष्णदास जी के प्रति श्रीमती राधारानी की इस अहैतुकी कृपा कथा और श्री ललिता सखी के स्नेह प्रसंग को, जगतवासी मायाबद्ध जीव, संशय की दृष्टि से देखेंगे एवम् इस विषय में संदेह प्रकट करेंगे। इसलिए जब तक श्रीमती राधारानी स्वयं इस विषय को लोगों के समक्ष प्रकाशित न करें तब तक श्यामानन्द नाम, श्यामानन्दी तिलक तथा दिव्य श्रीविग्रह की प्राप्ति की घटना को केवल श्री गुरुकृपा ही कहा जाय। इसलिये उन्होंने श्री कृष्णदास को तदानुरूप ही आदेश प्रदान किया।

एकथा प्रकट करि कारे ना कहिबे।
जे पूछिबे गुरुकृपा बलिया, बलिबे।।
श्री किशोरी कृपा आर ललितार स्नेह।
कारे ना कहियो बाछा गुप्त करिह।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१/१६६, १७०)

(अर्थात इस रहस्य कथा को प्रकट करके अन्य किसी से न कहना। जो भी पूछें, उनको गुरुकृपा ही बताना। श्री किशोरी जी की कृपा एवम् श्री ललिता जी के स्नेह की कथा का किसी से प्रकाश न करना।)

❖

षष्ठ अध्याय

श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर द्वारा श्री श्यामानन्द प्रभु जी की परीक्षा

जैसे उपवन में सुगंधित कुसुम के प्रस्फुटित होने पर, उसका मधुसौरभ, चहुंदिशाओं में फैल जाता है, उसी भांति, जब श्रीश्यामानन्द प्रभु को, श्रीमती राधारानी से दिव्य उज्ज्वल बिन्दु युक्त तिलक, श्यामानन्द नाम तथा अपूर्व लावण्यमय श्रीश्री श्यामसुन्दर जी के श्रीविग्रह प्राप्त हुए, तब ब्रजमण्डल में सर्वत्र उनकी ख्याति फैल गई। किन्तु इस ख्याति के साथ–साथ संशय के बीज भी अंकुरित होने लगे। ब्रजवासी वैष्णवगण, संशययुक्त होकर, श्रीश्यामानन्द को लेकर नाना प्रकार के तर्क वितर्क करने लगे। कोई कोई कहने लगे कि "श्रील जीव गोस्वामी, ब्रजमण्डल के वर्तमान वैष्णवों के मुकुटमणि, उपदेशकर्त्ता, अद्वितीय पण्डित, शास्त्रज्ञ एवं भक्तिशास्त्र के प्रणेता भी हैं। उन्होंने किस प्रकार श्री कृष्णदास जी से उन के प्रथम गुरुदेव का परित्याग करवाकर, उन को अपना शिष्य बनाकर, नया तिलक तथा नया नाम प्रदान कर दिया।" कोई–कोई कहने लगे कि, "शास्त्रों में निश्चित रूप से ऐसी कोई व्यवस्था अवश्य होगी, जिसके अन्तर्गत, श्रील जीव गोस्वामी जी ने ऐसा किया होगा।" अन्य कई लोग विचार व्यक्त करते "कि शास्त्रों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं। श्रील जीव गोस्वामी पाद ने केवल अहंकारवश ही ऐसा कार्य किया है।" कई ऐसे भी थे जो कहते थे कि "ऐसा नहीं हो सकता। श्रील जीव गोस्वामी–– सरीखे निरभिमानी व्यक्ति कभी भी, अहंकारवश ऐसा शास्त्र विरुद्ध कार्य नहीं कर सकते। इस में निश्चित रूप से कोई गूढ़ रहस्य है एवं समय आने पर ही उस रहस्य का उद्घाटन होगा।" सौ मुंह, सौ बातें। वैष्णवों में इस प्रकार की चर्चा चलती रही, किन्तु परम तेजस्वी श्रील जीव गोस्वामी से कोई प्रश्न करने का किसी का भी साहस नहीं हुआ।

धीरे–धीरे वैष्णवों के माध्यम से, श्री श्यामानन्द जी द्वारा आदि गुरु का त्याग करने की चर्चा, गौड़ देश में भी पहुंच गई। गौड़ मण्डल से कुछ वैष्णवजन वृन्दावन धाम पधारे थे। उनमें से दो वैष्णवों ने श्रीपाट अम्बिका में जाकर, श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर से, श्रीकृष्णदास द्वारा गुरुत्याग की कथा की विशेषरूप से चर्चा की। श्रीकृष्णदास जी के नाम परिवर्तन तथा उनके नवीन तिलक की कथा का भी वर्णन किया।

"दुःखिनी कृष्णदास तोमार छाड़िल चरण।
श्रीजीब गोसाईं पदे लइल शरण।।
नाम तार राखिलेन श्यामानन्द दास।
श्यामानन्दी तिलक एक करिला प्रकाश।।"

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (२/१५/,१६)

(अर्थात् श्री दुःखी कृष्णदास ने तुम्हारे चरणों का परित्याग करके, श्रील जीव गोस्वामी जी की शरण लेली है। श्रील जीव गोस्वामी ने, श्री कृष्णदास का नया नाम श्यामानन्द दास रखा है तथा श्यामानन्दी नामक एक नये तिलक का भी प्रकाश किया है।)

अपने प्रियतम शिष्य श्री कृष्णदास से सम्बन्धित ऐसा दुःसंवाद सुन कर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु अत्यन्त मर्माहत हुए। क्षोभ एवम् दुःख से अत्यन्त अधीर होकर, उन्होंने तत्क्षण अपने कई शिष्यों को बुलाकर आदेश दिया, "तुम लोग शीघ्रतापूर्वक श्रीधाम वृन्दावन जाओ तथा कृष्णदास को बांध कर मेरे पास ले आओ। यदि श्रील जीव गोस्वामी, कृष्णदास को नहीं छोड़ते तो उसको श्रील जीव गोस्वामी पाद की जिम्मेदारी पर ही रख कर आना एवं यह पत्र गोस्वामी पाद को देकर, इस का उत्तर उन से लेकर आना।"

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, अत्यन्त मार्मिक वेदना को प्राप्त होकर आगे कहने लगे, "अहो! कृष्णदास की स्पर्धा कहां तक बढ़ गई कि उसने आदि गुरु को त्याग कर नया गुरु वरण कर लिया, जो कि पूर्णतया अशास्त्रीय है। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के प्रकट काल में ऐसी घटना कभी नहीं घटी। गुरुद्रोही का किसी काल में भी निस्तार नहीं हुआ। श्रील अद्वैताचार्य ने अपने पुत्रों का त्याग कर दिया था किन्तु श्रीकृष्ण चैतन्य

महाप्रभु ने मर्यादा की रक्षा करते हुए, पिता द्वारा त्यागे हुए उन अद्वैत पुत्रों को स्वीकार नहीं किया। शास्त्रों में भी वर्णन है कि जो गुरु के चरणारविन्द में अपराधी हैं, उनका स्वयं भगवान श्रीकृष्ण स्पर्श भी नहीं करते।

'साधु द्रोही, गुरु द्रोही भवेत यश्च नराधमः।
भवार्णवम् न तरति कुम्भीपाकम् से गच्छति।।'
'अवैष्णवः गुरुत्यक्त, वैष्णवाश्रयो योभवेत।
विष्णुभक्तः सवैख्यातः त्यजितश्च कलि युगे।।'
"पुणश्च विधिना सम्यक ग्राहयेत वैष्णव गुरुः।।"

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (२/२८ क, ख, ग)

"शास्त्रों में केवल गुरु के अवैष्णव होने पर ही उसका त्याग करने का विधान है। अगर मैं अवैष्णव हूं और सारे वैष्णव मिल कर विचार कर, मुझे अवैष्णव स्थिर करते हैं, तो मैं भी जाकर श्रील जीव गोस्वामी से दीक्षा ग्रहण कर लूंगा। अगर मैं अवैष्णव हूं तो कृष्णदास ने मुझे त्याग कर निश्चय ही अत्यन्त उत्तम कार्य किया है। तुम लोग शीघ्र वृन्दावन जाकर सारे रहस्यों की जानकारी हासिल करके आओ।" ऐसा कहकर श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने अपने दस शिष्यों को शीघ्रतापूर्वक वृन्दावन भेज दिया।

श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर के उन शिष्यों ने श्रीधाम वृन्दावन में उपस्थित होकर, श्रील जीव गोस्वामी पाद से साक्षात्कार किया। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु प्रदत्त पत्र को श्रील जीव गोस्वामी के सम्मुख रख कर, उन वैष्णव शिष्यों ने, उनको (श्रील जीव गोस्वामी को) साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। श्रील जीव गोस्वामी ने भी उन को प्रेमालिंगन प्रदान किया।

श्रील जीव गोस्वामी द्वारा पूछने पर, उन वैष्णवों ने कहा, "श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने यह पत्र आप की सेवा में प्रेषित किया है और हम लोगों को इसका उत्तर शीघ्र लाने का आदेश दिया है।" श्रील जीव गोस्वामी ने कहा, "पहले आप सब लोग स्नान करके प्रसाद ग्रहण कीजिए। तब तक मैं पत्र का उत्तर लिखता हूँ।" तब वैष्णवों ने अत्यन्त विनम्रता के साथ उत्तर दिया "प्रभु! हम लोग स्नान तथा रसोई आदि का कार्य समाप्त करके ही आये हैं। कृपया आप पत्र का उत्तर शीघ्र प्रदान कीजिए।"

श्रील जीव गोस्वामी, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु द्वारा प्रेषित पत्र को पढ़ कर, मन ही मन, अत्यन्त कौतुक अनुभव करने लगे। किन्तु क्योंकि श्रीमती ललिता सखी ने इस रहस्यमयी घटना का उनके स्वयं के अतिरिक्त किसी अन्य के सम्मुख प्रकाश न करने का, श्री कृष्णदास को आदेश दिया था, इस बात को स्मरण करके, श्रील जीव गोस्वामी ने भी इस रहस्य को गुप्त रखा। उन्होंने गौड़मण्डल से आये उन वैष्णवों से प्रकट में यों कहा, "हे वैष्णवगण! मैंने कभी भी श्री हृदय चैतन्य प्रभु जी के शिष्य, श्री कृष्णदास को अपने सेवक के रूप में ग्रहण नहीं किया। मैं तो श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के प्रधान सेवक के तुल्य भी नहीं हूँ, फिर मेरी ताड़ना करके प्रभुजी ने इस प्रकार क्यों लिखा है? श्रील गौरीदास पण्डित ठाकुर मुझे पुत्र ज्ञान से, अत्यन्त स्नेह करते थे तथा मैं भी श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर को, श्रील गौरीदास पण्डित ठाकुर का स्वरूप ही मानता हूँ। इसलिए, 'श्रील हृदयचैतन्य अधिकारी ठाकुर मुझ पर क्रुद्ध हैं,' यह जान कर मैं अत्यन्त मर्माहत हो गया हूँ। श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर की ही कृपा से, श्रीकृष्णदास ब्रज में आकर, श्रीमद्भागवत का श्रवण करने के लिए, मेरे पास आये थे। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु का शिष्य जान कर ही, उनके प्रति सम्मान प्रकट करते हुए, मैंने कृष्णदास को अपने पास रखा तथा श्रीकृष्ण कथा का श्रवण करवा कर, उसके हृदय को निर्मल किया। उस से अधिक तो मैंने कुछ भी नहीं किया। 'मैंने कृष्णदास को नूतन तिलक तथा नया नाम दिया है', ऐसा कौन कहता है? आप स्वयं ही कृष्णदास को बुलाकर, इस विषय में सत्यासत्य का निर्णय कर लीजिये।"

श्रील जीव गोस्वामी के उपरोक्त वचनों को सुन कर, गौड़मण्डल से आये हुए दस वैष्णवों ने कहा, "प्रभुपाद! श्रीधाम वृन्दावन से दो वैरागियों ने जाकर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु को बताया था कि श्री कृष्णदास ने उनका त्याग करके, आपको गुरु रूप में वरण कर लिया है तथा आपने श्री कृष्णदास को एक नया तिलक प्रदान करके, उनका नाम परिवर्तित करके, श्यामानन्द रखा है। उन वैरागियों से यह समाचार पाकर ही, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने सत्यासत्य का अन्वेषण करने के लिए, हम लोगो को आपके पास, इस पत्र के साथ भेजा है।"

"ए कथा सुनिया गोसाईं बिस्मित हइला।
सत्य मिथ्या जानिबारे तोमारे लिखिला।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (२/६०)

(अर्थात् ऐसा सुनकर ही श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने विस्मित होकर, सत्यासत्य जानने के लिए, आपको यह पत्र भेजा है।)"

श्रील जीव गोस्वामी ने आश्चर्यचकित होकर, गौड़मण्डल से आये हुए उन दस वैष्णवों से कहा "हे वैष्णवगण! ब्रजवासी वैष्णव लोगों से पूछनेपर ही आप लोग सत्यासत्य को जान सकेंगे। उनसे पूछने के पश्चात यदि आप को ऐसा लगता है कि मैंने कृष्णदास से गुरु का त्याग करवाया है, तभी मुझे निश्चित रूप से अपराधी ठहराया जा सकता है।"

श्रील जीव गोस्वामी के इन खेदपूर्ण वचनों को सुनकर, गौड़ देश से आये वैष्णव, किम्कर्त्तव्यविमूढ़ हो गए एवम् करबद्ध होकर निवेदन करने लगे, "प्रभुपाद। हम लोग इस विषय में किसी से भी प्रश्न नहीं करना चाहते। आप जो कुछ भी कहेंगे, वही हमारे लिए वेदवाक्य तुल्य मान्य होगा।" इस पर श्रील जीव गोस्वामी ने अत्यन्त धीर–गम्भीर होकर कहा, "हे वैष्णवगण ! मेरे कृष्णदास से इस विषय में प्रश्न करने पर, उसने मुझे बताया था कि श्रील हृदयचैतन्य प्रभु के चरणचिन्ह ही उस के ललाट पर तिलक के रूप में प्रकाशित हुए। मेरे प्रश्न करने पर उसने जो कुछ मुझे बताया था, आप भी उसे अक्षरशः सुन लीजिये।"

"कृष्णदास, ब्रज मण्डल में आकर, नित्य श्रीराधाकृष्ण जी की कुंज सेवा, श्रीमद्‌भागवत श्रवण तथा नित्य एक लाख नाम जप करता था। नित्य श्री गोविन्ददेवजी के दर्शन, साधु दर्शन, साधु सेवा, प्रसाद ग्रहण, श्रीराधाकृष्ण की नित्यलीला श्रवण करते हुए ब्रजमण्डल में वास के समय, एक दिन कृष्णदास ने रात्रि में स्वप्न देखा कि श्री राधा कृष्ण के कुंज संस्कार के समय, वह सोहनी से झाड़ू लगा रहा था। ऐसे समय पर श्रील हृदय चैतन्य प्रभु वहां आए। कृष्णदास ने उन को उपवेशन के लिए, तृण का एक आसन प्रदान किया। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु उपवेशन करने के उपरांत, स्वप्न में ही कृष्णदास का कुशलक्षेम पूछने लगे। कृष्णदास उन को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगे, "प्रभु ! आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करके, आप के

चरणारविद का ध्यान करते हुए, ब्रज मण्डल में वास करके, नित्यकुंज सेवा कर रहा हूँ।" श्रील हृदय चैतन्य प्रभु अत्यंत प्रसन्न होकर, कहने लगे "कृष्णदास! तुम धन्य हो। तुम्हारे भाग्य की कोई सीमा नहीं है। इस कुंज में नित्य श्री श्री राधाश्यामसुन्दर जी का विहार होता है। तुम को जो कुंज सेवा प्राप्त हुई, वह ब्रह्मा आदि देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। अत्यन्त निष्ठापूर्वक एवं भक्ति सहित, इस सेवा को करते रहो। तुम्हारे सेवाभाव से प्रसन्न होकर, श्रीश्यामाश्याम निश्चित रूप से किसी दिन तुम्हें दर्शन प्रदान करेंगे। आज से तुम्हारा नाम श्यामानन्द होगा।" इस प्रकार कह कर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने कृपा करके, कृष्णदास के मस्तक पर अपने श्रीचरण को रखा एवं परिक्रमा के लिये कुंज के अभ्यन्तर में चले गए। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु का चरण चिन्ह ही, कृष्णदास के ललाट पर, तिलक के रूप में प्रकाशित हुआ है। इस विषय में श्री कृष्णदास ने मुझे ऐसा ही बतलाया था। मैं भी श्रील हृदय चैतन्य प्रभु की आज्ञाको ब्रह्मवाक्य मानकर, कृष्णदास को श्यामानन्द नाम से सम्बोधित करता हूँ किन्तु श्रीवृन्दावन के साधारण व्यक्ति इस तत्त्व को न जानकर, ऐसा कहने लग गए हैं कि मैंने कृष्णदास को अपने शिष्य के रूप में ग्रहण करके, उसे श्यामानन्दी तिलक तथा श्यामानन्द नाम प्रदान किया है। आपलोग, कृष्णदास से प्रश्न कर के, इस विषय में सब कुछ जान सकेंगे।"

श्रील जीव गोस्वामी जी के मुख से रहस्यमयी घटना का ऐसा विवरण श्रवण करके, श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्रीललिता जी के निषेध वाक्यों को स्मरण करते हुए, इस गुरु कृपा के विषय में अब क्या कहना था, मन ही मन यह स्थिर कर लिया। गौड़ मण्डल से आए हुए वैष्णवों के प्रश्नों के उत्तर में श्रीश्यामानन्द ने, श्रील जीव गोस्वामी द्वारा कथित घटना की ही पुनरावृत्ति की।

"श्रील हृदयानन्द प्रभु, ठाकुर, आमारि।
तांर पाद पद्म तिलक मस्तकेते धरि।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (२/१०१)

(अर्थात् श्रील हृदयानन्द प्रभु ही मेरे गुरु हैं तथा उन के चरण चिन्ह को ही मैंने अपने मस्तक पर तिलक के रूप में धारण किया है।)

श्रील जीव गोस्वामी तथा श्री श्यामानन्द, इन दोनों के मुख से घटना का एक ही प्रकार का विवरण श्रवण करके, वैष्णवों ने प्रफुल्लित होकर, हरिध्वनि करते हुए, श्री श्यामानन्द को आलिंगन प्रदान किया। श्रील जीव गोस्वामी ने भी इस विषय में, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के नाम एक पत्र लिख कर उन वैष्णवों को दिया। उन वैष्णवों ने पत्र प्राप्त कर, श्रील जीव गोस्वामी की परिक्रमा की तथा उन को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके, गौड़ देश को प्रस्थान किया।

अम्बिका में पहुंचकर, वैष्णवों ने वह पत्र श्रील हृदय चैतन्य प्रभु को दे दिया। पत्र को आदि से अंत तक पढ़ने पर, संदेह निवृत्ति की बात तो दूर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु का संशय और भी बढ़ गया। वे सोचने लगे कि "जैसा कि पत्र में लिखा है, मैंने ही स्वप्न में दर्शन दे कर, कृष्णदास का नाम परिवर्तित करके श्यामानन्द कर दिया, किन्तु मुझे इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। इसी प्रकार, कृष्णदास का हरिमंदिर आकृति वाला तिलक भी परिवर्तित होकर, मेरी चरणाकृति वाला तिलक हो गया किन्तु मुझे इस के विषय में भी कुछ ज्ञात नहीं। कृष्णदास ने स्वप्न देखकर, स्वप्न की घटना को सत्य मान लिया किन्तु मेरे साक्षात् आदेश को मिथ्या मानने लग पड़ा। ऐसे लग रहा है कि श्रील जीव गोस्वामी ने ही मेरे शिष्य कृष्णदास द्वारा मेरा त्याग करवाकर, मेरी वंचना करके ही यह पत्र लिखा है। इसलिए मैं गौड़ मण्डल के वैष्णवों को साथ लेकर, वृन्दावन गमन करूंगा तथा साधुओं के समाज में, इस घटना के सत्य–असत्य का अन्वेषण करूंगा।"

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने अत्यन्त क्षुब्ध होकर, उद्विग्न चित्त से गौड़ मण्डल के सभी महन्तों के पास जाकर, श्री कृष्णदास सम्बंधी घटना का वर्णन किया। उनके अत्यन्त प्रिय शिष्य कृष्णदास को, श्रील जीव गोस्वामी ने, प्रवंचना से अपने शिष्य के रूप में ग्रहण किया था, इस पर सम्यक विचार के लिए, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने गौड़ मण्डल के सभी महन्तों से कातर रूप से प्रार्थना की। वे अत्यन्त मर्माहत हो कर, यह भी कहने लगे कि "अगर गौड़ मण्डल के महन्तो ने श्री कृष्णदास के काण्ड पर विचार करने के लिए ब्रज मण्डल को गमन नहीं किया, तो वे उन लोगों के सम्मुख ही अपने प्राण त्याग देंगे।"

ना गेल सबार आगे पराण त्यजिब।
एइ कथा सत्य मोर निश्चय जानिब।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/२३)

(अर्थात् आप लोगों के, कृष्णदास के काण्ड पर विचार करने के लिए ब्रज में न जाने पर, मैं आप सब के सम्मुख प्राण त्याग दूंगा। मेरे इस वचन को आप सत्य और निश्चित जान लेवें।)

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु का श्रीधाम वृन्दावन में विचार सभा का यह आग्रह, केवलमात्र साधारण मायिक जीव के समान क्रोध अथवा ईर्ष्याजनित साधारण अभिव्यक्ति नहीं था। श्री कृष्णदास जैसे निष्ठावान शिष्य, यदि गुरुत्यागी बन जायें, तो वैष्णव धर्म की मर्यादा ही क्रमशः लुप्त हो जाये। यही सोचकर ही, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु अत्यन्त उद्विग्न हो गये थे और धर्म की मर्यादा की रक्षा करने के लिए, अतिवृद्धावस्था होने के बावजूद, पैदल चलकर, वृन्दावन धाम गमन के लिए, जो इतनी दूर था, बिन्दुमात्र भी कुण्ठित नहीं हुए।

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, चौंसठ महन्तों, द्वादश गोपाल तथा गौड़ मण्डल के विशिष्ट वैष्णवों को साथ लेकर, श्रीवृन्दावन के धीर–समीर में आ पहुंचे। सभी वैष्णव यमुना में स्नान करके, प्रसाद ग्रहण करने के पश्चात्, प्रेम में मत्त होकर, नाम संकीर्तन करने लगे। गौड़ मण्डल के भक्तों के ब्रज में पहुंचने का समाचार लेकर एक वैष्णव को श्रील जीव गोस्वामी के पास भेजा गया। श्रील जीव गोस्वामी ने समाचार पाकर, तुरन्त धीर समीर में पहुंच कर, गौड़मण्डलीय भक्तों को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। उन लोगों ने भी यथायोग्य प्रणाम तथा सम्भाषण आदि किया। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के आगमन का समाचार पाकर, श्री श्यामानन्द जीने भी तत्काल धीर–समीर में पहुंच कर, श्री गुरुदेव एवम् सभी महन्तों–वैष्णवों को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया, किन्तु श्री श्यामानन्द को देखते ही, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु क्रोधित होकर बोले, "कृष्णदास! तुम किस को प्रणाम कर रहे हो? मेरे साथ अपने सम्बन्ध, मेरे द्वारा प्रदत्त तिलक तथा नाम का तुमने परित्याग कर दिया है। इसलिए मेरे साथ तथा मेरे सम्बन्ध से इन वैष्णवों के साथ, तुम्हारा कोई भी सम्बन्ध नहीं रह सकता।" तब श्री श्यामानन्द जी

ने हाथ जोड़कर, दृष्टि को अवनत करके, अत्यन्त विनम्रतापूर्वक, धीरे–धीरे इस प्रकार कहाः–

"कृष्णदास कहे प्रभु तोमा कृपा हैते।
श्यामानन्द नाम तिलक धरियाछि माथे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/४६)

(अर्थात् श्री श्यामानन्द ने कहा कि तुम्हारी कृपा से मुझे श्यामानन्द नाम मिला है तथा इस श्यामानन्दी तिलक को ललाट पर धारण किया है।)"

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने कहा, "तुम स्वप्न की कथा को सत्य मान कर, उस के अनुरूप कार्य कर रहे हो, किन्तु मैं इस के विषय में कुछ भी नहीं जानता हूँ। इसलिए निश्चितरूप से वंचना करके, तुमने श्रील जीव गोस्वामी के द्वारा मुझे पत्र लिखवाया।"

तब श्रीश्यामानन्द प्रभु ने उत्तर दियाः–

"श्यामानन्द कहे प्रभु बंचना ना हय।
लिखनेर कथा सेई सुसत्य निश्चय।।"

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/४६)

(अर्थात् श्री श्यामानन्द ने कहा, प्रभु! यह वंचना नहीं है। श्रील जीव गोस्वामी ने आप को पत्र में जो भी लिखा है, वह सत्य है।)

इस उत्तर से सन्तुष्ट न होकर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु और भी क्रुद्ध होकर बोले, "उत्तम! तुम्हारे ललाट के तिलक तथा अंग पर श्यामानन्द नाम लिख कर, उन दोनों को धोयेंगे। यदि पानी फैंकने पर भी वे तिलक तथा नाम दोबारा प्रकाशित हो जाते हैं, तो ही मैं मानूंगा कि स्वप्न वाली कथा सत्य है, अन्यथा वैष्णव समाज से तुम को बहिष्कृत कर दिया जायेगा।"

श्री वृन्दावन की कल्पकुंज रासस्थली में, विशाल वैष्णव सभा का आयोजन किया गया, जिस में वृन्दावन के सभी वैष्णवों को भी आमंत्रित किया गया। ब्रजवासी वैष्णवों को जब मालूम हुआ कि श्रीपाट अम्बिका से श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर, श्री श्यामानन्द रहस्य पर विचार करने के लिए, चौंसठ महन्तों व द्वादश गोपालों आदि को लेकर, ब्रज में पधारे हैं, तो उन वैष्णवों ने अत्यन्त कुतूहलवश, उस सभा में पधार कर, अपना

योगदान दिया। चौंसठ महंतों, द्वादश गोपालों तथा वैष्णवों ने पंक्तिबद्ध होकर, सभा में नियत स्थान पर विराजमान होकर, 'जय श्री राधेश्याम' की ध्वनि करने के पश्चात् सभा की कार्यवाही प्रारम्भ की। समागत महन्तों एवं वैष्णवों का माल्यार्पण एवं चंदन से स्वागत होने के उपरान्त, श्री श्यामानन्दजी ने उस सभा में आकर, उन सभी को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

तदुपरान्त सभी उपस्थित महन्त, श्रीश्यामानन्द से प्रश्न करने लगे, "हे कृष्णदास! तुम सच सच बतलाओ, तुम किस के सेवक हो एवं इस तिलक तथा नाम को किसने प्रदान किया है।"

श्री कृष्णदास ने, हाथ जोड़ कर, अत्यन्त विनम्र भाव से उत्तर दिया, " हे कृपामय वैष्णवगण। मैं बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ:-

"श्री हृदयानन्द प्रभु ठाकुर आमारि।
तांर पाद पद्म तिलक मस्तकेते धरि।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (२/१०१)

(अर्थात् श्रील हृदय चैतन्य ठाकुर ही मेरे गुरु हैं तथा उन का चरण चिन्ह तिलक ही मैंने ललाट पर धारण किया हुआ है।)

तब सभी महन्तों ने स्नेह से सिक्त कण्ठ से, श्रीश्यामानन्दजी से मधुरवाणी में कहा, "कृष्णदास! स्वप्न की कथा कभी सत्य नहीं होती। भगवान के रुष्ट होने पर, श्रीगुरुदेव में त्राण पा सकते हैं, किन्तु गुरुदेव के रुष्ट होने पर त्रिलोकी में कोई भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है। यथा:-

हरि रुष्टे गुरु त्राता, गुरु रुष्टे न कश्चन।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन गुरुमेब प्रसादयेत्।।

श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/६४ क)

"इसलिए, अभी भी समय है। तुम सत्य बोलो। हम सब मिलकर अपराध से तुम्हारा उद्धार कराने की चेष्टा करेंगे। यदि इस विशाल वैष्णव सभा में तुम मिथ्या भाषण करोगे, तो निश्चित रूप से तुम नरक में जाओगे। जब तक सूर्य तथा चन्द्र उदित होते रहेंगे, तब तक तुम को नरक में ही वास करना पड़ेगा। श्री व्यासदेव जी के निम्नलिखित वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकते:-

सभायाम् भाषते मिथ्याम् लोभात् क्रोधभयातुषः।
सवंशो नरकम् याति यावत्चन्द्र दिवाकर।।

—श्रीमद्भागवतम्

यदि तुमने गुप्तरूप से किसी से दीक्षा ग्रहण की है तो निर्भय होकर, इस वैष्णव समाज के सम्मुख प्रकाशित कर दो। हम सभी मिलकर तुम्हारे उस अपराध का मोचन करवाने का प्रयास करेंगे। स्वप्न की बातें कभी सत्य नहीं होतीं। तुम्हारे तिलक तथा नाम की परीक्षा लेने पर, तुम कभी भी उस में उत्तीर्ण नहीं हो पाओगे एवं वैष्णव समाज के सम्मुख तुम प्रतारक (धोखेबाज) सिद्ध हो जाओगे।"

उत्तर में श्री श्यामानन्द ने मधुर वाणी में यों कहाः—

"गुरु कृष्ण सत्य बस्तु शास्त्रे लोक कहे।
स्बप्नेर कथा सत्य हये सुनिश्चये।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/७४)

(अर्थात् शास्त्र कहते हैं कि गुरु एवं श्री कृष्ण शाश्वत सत्य वस्तु हैं। इस स्वप्न की कथा भी निश्चित रूप से सत्य ही है।)

"फिर भी आपलोग जब बारम्बार कह रहे हैं तो मुझे दो दण्ड का समय दीजिए। उसके पश्चात् मैं आप लोगों के प्रश्न का उत्तर दूंगा।" सभी महन्तों से ऐसा कह कर, श्रीश्यामानन्द जी ध्यान मग्न हो गये। वे श्री ललिता सखी प्रदत्त षड़ैश्वर्यपूर्ण श्री राधा मन्त्र का जप करने लगे, जिस से उन का रागमय चित्त रागात्मिका में परिणत हो गया। श्रीश्यामानन्द जी, सिद्ध कनकमंजरी के रूप में, श्रीमती राधारानी के कुंज के बाहरी द्वार पर बैठ कर, व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगे। श्रीमती राधारानी की सखियों के पूछने पर उन्होंने बताया कि, "हे देवियो! मेरा नाम कनकमंजरी है। मैं इस ब्रज मण्डल में वास करती हूँ। श्री ललिता सखी के चरणारविन्द की दासी होकर अहर्निश उन के साथ रहने के कारण, घर लौटते ही मेरे पति क्रुद्ध होकर मुझ पर प्रहार करने के लिए उद्यत हो गए। मैं येन केन प्रकारेण, अपने प्राणों की रक्षा करके, भाग कर यहां आ गई हूँ। आप लोग कृपा करके, श्री ललिता जी के चरणारविन्द में, मेरे आगमन की सूचना पहुंचाइये तथा उन से मुझे दर्शन देकर, मेरे प्राणों की रक्षा करने के लिए

निवेदन कर दीजिये।" सखियों ने जाकर श्री ललिता जी को सब कुछ बता दिया। उस समय श्रीललिता जी, श्रीमती राधारानी जी की ताम्बूल सेवा में रत थीं। इसलिए उन्होंने एक सखी को भेजकर, कनकमंजरी को कुंज के भीतर ही बुला लिया। उस समय श्रीमती राधारानी जी सुदृश्य पलंग पर विराजमान होकर, ताम्बूल का सेवन कर रही थीं। श्री ललिताजी उनको ताम्बूल दे रही थीं तथा रूपमंजरी, श्रीमती जी के चरणों की सेवा कर रही थीं। चम्पकलतिका सखी, धीरे–धीरे चामर डुला रही थी। उस समय, श्रीमती राधारानी जी की सौन्दर्य माधुरी का दर्शन करके, कनकमंजरी उनके चरणारविन्द में प्रणत होकर, व्याकुल रूप से क्रन्दन करने लगी। श्रीमती राधारानी जी की आज्ञा से, श्री ललिता सखी ने कनकमंजरी को भूमि पर से उठाकर अपनी गोद में ले लिया। श्री रूपमंजरी ने भी कृपापूर्वक कनकमंजरी को अपनी गोद में लिया तथा श्रीमती राधारानी जी के चरणारविन्द में उन को प्रणत किया। श्रीमती राधारानी जी ने स्नेहपूर्वक कनकमंजरी से प्रश्न किया:–

"तबे राइ जिज्ञासेन कान्द कि कारण।
रोदन करह केन हइया अचेतन।।

–श्रीश्रीश्यामानन्द प्रकाश (३/६६)

(अर्थात् श्रीमती राधारानी ने प्रश्न किया कि तुम इतनी अधीर होकर क्यों रो रही हो।)

तब कनकमंजरी ने रुदन करते हुए, श्रीमती राधारानी जी के चरणारविन्द में निवेदन किया, "हे कृपा की अधीश्वरी! भूब्रज वृन्दावन की रासस्थली के कुंजों का संस्कार करते समय, आपकी अहैतुकी कृपा से, मुझे आप की श्रीचरणाकृति का नूपुर तिलक, श्यामानन्द नाम तथा श्रीश्यामसुन्दर जी के अप्राकृत, चिन्मय, दिव्य श्रीविग्रह प्राप्त हुए थे। श्री ललिता जी ने मुझे उस समय आदेश दिया था कि:–

"जीब बिना एइ कथा कारे ना कहिबे।
अन्यत्र कहिले तुमि जीबन हाराबे।।"

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/१२३)

(अर्थात् जीव गोस्वामी के अतिरिक्त इस कथा को अन्य किसी से

मत कहना। किसी अन्य से कहने पर, तुम मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे।)"

"श्री ललिता जी के आदेशानुसार, मैंने इस विषय में श्रील जीव गोस्वामी के अतिरिक्त, अन्य क़िसी को भी कुछ नहीं बताया, किन्तु मेरे दीक्षा गुरु, श्रीलहृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर, आप द्वारा प्रदत्त इस तिलक को देख कर, मुझ पर अविश्वास करने लगे और प्रश्न करने लगे कि मुझे नूतन तिलक तथा नाम किसने दिये हैं। श्रील जीव गोस्वामी की शिक्षा के अनुसार, यह बतलाने पर कि तिलक तथा नाम मुझे श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने स्वप्न में प्रदान किये हैं, श्री गुरुदेव ने कहा कि:-

"स्बपन देखिले तुमि आमि नाहि जानि।
स्बप्नेर कथा सत्य करिया ना मानि।।
गोसांइ कहेन तोमार तिलक धुइब।
धुइले तिलक जदि पुनर्बार हब।।
श्यामानन्द नाम अंगे लिखिया मुछिब।
सेइ स्थाने नाम यदि पुनर्बार हब।।
तबे मोर कृपा सत्य निश्चय जानिब।
नहिले समाज हइते बाहिर करिब।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/१४१, १४४—१४६)

(अर्थात् तुमने स्वप्न देखा, जिसे मैं नहीं जानता। इसलिए मैं तुम्हारे स्वप्न को सत्य नहीं मानता। तुम्हारे तिलक को मैं धोऊँगा। यदि उसपर भी तिलक दोबारा प्रकाशित हो जाता है तथा श्यामानन्द नाम भी तुम्हारे अंग में लिख कर, धो दूँगा। यदि श्यामानन्द नाम भी दोबारा प्रकाशित हो जाता है, मैं तभी मानूँगा कि स्वप्न में तुम पर मेरी कृपा सत्य है, अन्यथा तुम को वैष्णव समाज से बहिष्कृत कर दिया जायेगा।)

"हे देवी! ,इसके लिए गौड़ मण्डल के चौंसठ महन्तों, द्वादश गोपालों, विशिष्ट वैष्णवों एवं ब्रजमण्डलस्थ बहुत से वैष्णवों को लेकर, श्रीधाम वृन्दावन की कल्पकुंज रास स्थली के प्रांगण में, एक विचार सभा का आयोजन किया गया है। उस सभा में उपस्थित सभी के सम्मुख मैंने कहा कि:-

'ए नाम तिलक साधु समाजे देखाब।
ए सत्य नहिले आमि पराण त्यजिब।।'

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/१५४)

(अर्थात् इस नाम तथा तिलक को पुनः प्रकाशित होते, मैं साधु समाज में दिखलाऊँगा एवं ऐसा ना होने पर, मैं अपने प्राण त्याग दूँगा।)

"हे देवी! मैं उन लोगों से मात्र दो दण्ड का समय लेकर, आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। मैं जिस प्रकार भी आप के श्रीचरणों तथा श्री गुरुदेव के श्रीचरणों की कृपा से वंचित न हो जाऊँ तथा महन्तों के समाज में इस घोर संकट से परित्राण प्राप्त कर सकूं, ऐसा कोई उपाय करने की कृपा कीजिए।"

श्री ललिता जी तथा रूपमंजरी भी, कनकमंजरी की रक्षा करने के लिए, श्रीमती राधारानी जी के चरणारविन्द में विनम्रतापूर्वक विनति करने लगीं।

तब श्रीमती राधारानी जी ने, कनकमंजरी को इस घोर संकट से उबारने के लिए, अपने चचेरे भाई तथा श्रीकृष्ण के प्रिय नर्म्म सखा, श्री सुबल का आह्वान किया। जब वे उनके सम्मुख उपस्थित हुए तो श्रीमती राधारानी जी ने उन से कहा, "हे सुबल! तुम्हारे अनुदास, इस कृष्णदास को मैंने, अपनी दासी के रूप में स्वीकार करके, नित्य कुंज सेवा का अधिकार प्रदान किया है। महन्तों के समाज में यह जिस प्रकार परीक्षा में उत्तीर्ण हो सके, मेरे हित में कोई ऐसा उपाय करो।"

श्रीमती राधारानी जी का आदेश पाकर, श्री सुबल ने अत्यन्त प्रफुल्लित होकर, कनकमंजरी के ललाट पर अपने हाथ से उज्ज्वल बिन्दुयुक्त श्री राधाचरणाकृति के नूपुर तिलक की रचना कर दी तथा उनके वक्षःस्थल पर श्यामानन्द नाम भी लिख दिया। फिर उन्होंने कनकमंजरी (श्री श्यामानन्द) से कहाः—

कहिबे आमार गुरुर स्वरूप धरिया।
पण्डित ठाकुर मोरे कृपा कैल आसिया।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/१४५)

(अर्थात् महन्तों के समाज में कहना कि मेरे गुरु का स्वरूप धारण

करके, श्री गौरीदास पण्डित ठाकुर ने ही आकर मुझ पर कृपा की थी।)

श्री सुबल ने आगे कहा कि:—

"महन्त समाजे मोरे स्मरण करिबे।
तबे ये तिलक नाम तेजोमय हबे।।

—श्रीश्रीश्यामानन्द प्रकाश (३/१४७)

(अर्थात् महन्तों के समाज में तुम मेरा स्मरण करना तब ये तिलक तथा नाम और भी तेजयुक्त होकर प्रकाशित होंगे।)

श्री सुबल की इस मंगलमय अभयवाणी को सुन कर कनकमंजरी ने उनके चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। श्री सुबल ने कनकमंजरी के मस्तक पर अपने चरण स्थापित करके, उन को बहुत प्रकार से कृपा आशीर्वाद प्रदान करके, वहां से प्रस्थान किया।

तत्पश्चात् कनकमंजरी, श्री ललिता जी, श्री विशाखा जी तथा रूपमंजरी के चरणों में प्रणत होकर, दोबारा श्रीमती राधारानी जी के सम्मुख उपस्थित हुई। उन्होंने करबद्ध होकर श्रीमती राधारानी जी के मुखारविन्द के दर्शन करते हुए, प्रेमविह्वल चित्त से, गदगद होकर, उनकी स्तुति की। प्रेम—मयी श्रीमती राधिका जी ने, तब कनकमंजरी से कहा:—

"किछू दिन उत्कलेते जीब उद्धारिया।
पुनरपि आमार सेबाय रहिबे आसिया।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/१६७)

(अर्थात् कुछ दिन उत्कल में जीवों का उद्धार करके, फिर आकर मेरी सेवा में रहना।)

श्रीमती राधारानी जी, सभी सखियों व मंजरियों ने, कनकमंजरी पर बहुत प्रकार से कृपा की। तदनन्तर, श्रीमती राधारानी जी के निर्देशानुसार, एक सखी, कनकमंजरी को कुंज से बाहर जाने का पथ दिखाकर, कुंज में ही लौट गई।

इधर श्रीधाम वृन्दावन में, वैष्णव समाज की विचार सभा में, श्री श्यामानन्द जी के निश्चेष्ट शरीर को देख कर, यह समझते हुए कि श्री श्यामानन्द जी ने शरीर त्याग दिया है, सभी महन्त तथा वैष्णव आदि, अत्यन्त विचलित हो गए। वे लोग हा—हुताश करके (दुःख तथा हैरानी

प्रकट करके) कहने लगे, "अहो! हम सभी ने ब्रज में आकर क्या अनर्थ कर डाला? हम सभी महन्तों की उपस्थिति में, एक ब्रजवासी वैष्णव के प्राण विनष्ट हो गये और हम लोग चुपचाप मूक दर्शक की भांति देखते रहे।" श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर, श्रीश्यामानन्द जी की विरह में कातर हो कर, विह्वलचित्त से रुदन करने लगे, किन्तु श्रील जीव गोस्वामीपाद, श्रीश्यामानन्द की सभी चेष्टाओं से अवगत थे, इसलिए वे बिन्दुमात्र भी विचलित अथवा कातर नहीं हुए, तथा सभी से कहने लगेः–

"कहिलेन कर सबे नाम संकीर्तन।
एखनि आसिबे श्यामानन्देर जीबन।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/२०६)

(अर्थात् सभी मिल कर नाम संकीर्तन कीजिये। श्यामानन्दजी की निश्चेष्ट देह में अभी प्राणों का संचार हो जायेगा।)

श्रील जीव गोस्वामी के निर्देशानुसार, श्री श्यामानन्द की निश्चेष्ट देह को वस्त्र से आवृत कर दिया गया। स्वयं को वैष्णव हत्या का अपराधी मान कर सभी महन्त तथा वैष्णव व्याकुल होकर, श्री कृष्ण नाम संकीर्तन करने लगे। ऐसे समय में श्री श्यामानन्द की देह में प्राणों का संचार हो गया। वे 'जय श्री गुरुदेव' कह कर भूमि से उठ पड़े। उनको सचेष्ट होकर उठते हुए देख कर, सभी उपस्थित वैष्णव आनन्दावेश में आकाश मण्डल को विदीर्ण करते हुए, उच्चस्वर में हरि ध्वनि करने लगे। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु भी श्री श्यामानन्द जी को जीवित देख, प्रेम में विह्वल होकर, उन का चुम्बन करने लगे।

तदनन्तर, सभी महन्तों ने श्री श्यामानन्द से कहा, "हे कृष्णदास! तुमने केवल दो दण्ड का समय मांगा था, जो पूरा हो चुका है। अब तुम अपने तिलक तथा नाम के परिवर्तन के विषय में प्रकाश डालो।"

श्री श्यामानन्द ने उत्तर दिया :–

"गोसाईं स्बरूप हइया दर्शन दिला।
श्री गौरीदास पण्डित, मोरे कृपा कैला।।
जदि आमि तांहार चरणे भृत्य हब।
एनाम तिलक तांर प्रत्यक्षे देखाब।।"

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/२१३,२१४)

(अर्थात् मेरे गुरुदेव का स्वरूप धारण करके, श्री गौरीदास पण्डित जी ने ही मुझ पर कृपा की। यदि मैं श्री गुरुदेव के चरणारविन्द का ही सेवक हूँ, तो इस नाम तथा तिलक को पुनः प्रकाशित करके दिखलाऊँगा।)

तब सभी महन्तों ने परीक्षा करने के उद्देश्य से, श्रीश्यामानन्द जी के ललाट पर उज्ज्वल बिन्दुयुक्त श्री राधाचरणाकृति नूपुर तिलक अंकित कर दिया तथा वक्षःस्थल पर श्यामानन्द नाम लिख दिया। श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर जी ने तब सब महन्तों का आदेश प्राप्त करके, जल की झारी ले जाकर, श्री श्यामानन्द जी के ललाट के तिलक को एवं वक्षःस्थल पर लिखित श्यामानन्द नाम को भली भांति धोया। धौतकार्य पूर्ण करके, वे महन्तों के बीच में जाकर बैठ गए। उधर श्री श्यामानन्द जी, अत्यन्त कातर होकर, श्रीगौरीदास पण्डित ठाकुर का स्मरण करके उनसे प्रार्थना करने लगे,"हे पण्डित ठाकुर! साधुओं की इस विचारसभा में पधार कर, आप अपने इस अनुशिष्य की रक्षा कीजिए।"

'एत बलि डाकिलेन श्यामानन्द राय।
तिलक हइल माथे बिंदु शोभा पाय।।
श्यामानन्द नाम तांर हैल हृदि माझे।
देखिते लागिला सब महान्त समाजे।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३/२२५, २२६)

(अर्थात् इस प्रकार कहते हुए श्री श्यामानन्द प्रभु, श्रीगौरीदास पण्डित ठाकुर जी को पुकारने लगे। तब उनके ललाट पर बिन्दुयुक्त तिलक तथा वक्षःस्थल पर "श्यामानन्द" नाम, पुनः प्रकाशित हो गये। सब महन्त लोग देखते रह गये।)

सभी को विस्मित करते हुए, श्री सुबल सखा की कृपा तथा श्रीमती राधारानी जी के आदेश से, जब श्रीश्यामानन्द के ललाट का तिलक तथा वक्षःस्थल का नाम अधिक उज्ज्वल होकर दोबारा प्रकाशित हो गए तो उनका अवलोकन करके, श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर, अत्यन्त लज्जा के क़ारण अधोमुखी हो गए। उपस्थित सभी महन्त तथा वैष्णव उच्च स्वर से हरि ध्वनि करते हुए, श्री श्यामानन्द का आलिंगन करने लगे। कई–कई उन को गोदी में लेकर, उन का चुम्बन करने लगे। कोई–कोई

कहने लगे कि "स्वप्न की कथाएं भी सत्य होती हैं। श्री श्यामानन्द जी की कृपा से आज भगवान की यह अपूर्व लीला भी प्रत्यक्ष देखी है।" ऐसा कहते हुए सभी महन्त श्री श्यामानन्द को आशीर्वाद प्रदान करने लगे। श्री श्यामानन्द जी, सभी महन्तों तथा श्रील हृदय चैतन्य प्रभु को दण्डवत प्रणाम करके, श्रील जीव गोस्वामी के पास गए। श्रील जीव गोस्वामी, श्री श्यामानन्द जी को गोदी में लेकर, स्नेहपूर्वक उनका चुम्बन करने लगे एवं भावविह्वल होकर कहने लगे :–

"तुमि भक्त नह मोर हओ प्राण सम।
तोमार प्रेमेते बान्धा हइल आमार जीबन।।
धन्य धन्य कनकमंजरी श्यामानन्द।
तोमार सेबा ते श्यामार हइला आनन्द।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (३–२४३,२४४)

(अर्थात् तुम भक्त नहीं हो, मेरे प्राण समान हो। मेरा जीवन तुम्हारे प्रेम से बंध गया है। हे कनकमंजरी! (श्यामानन्द) तुम्हारी सेवा से श्यामाजी को आनन्द प्राप्त हुआ है। तुम धन्य हो।)

ईसवी सन् १५७८ की कार्तिक नियम सेवा से पहले, श्रीधाम वृन्दावन की कल्पकुंज रासस्थली में आयोजित इस विचारसभा में, श्रीश्यामानन्द प्रभु के प्रति श्रीमती राधारानी जी की साक्षात कृपा, जब निश्चित रूप से प्रमाणित हो गई तो समग्र वैष्णव समाज, श्री श्यामानन्द प्रभु की जय जयकार करने लगा।

❖

सप्तम अध्याय

श्रील ह्रदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर के द्वारा श्रीश्यामानन्दजी की ताड़ना तथा दण्ड महोत्सव का सूत्रपात

जिस समय श्रील ह्रदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर, श्रीधाम वृन्दावन में अवस्थान कर रहे थे, श्री श्यामानन्द प्रभुजी अत्यन्त यत्न के साथ, उन की सेवा में जुट गए। जब श्रील ह्रदय चैतन्य ठाकुर चौंसठ महन्तों तथा द्वादश गोपालों आदि वैष्णवों को साथ लेकर ब्रजमण्डल की परिक्रमा के लिए निकले, तब श्री श्यामानन्दजी ने भी प्रफुल्लित चित्त से, श्री गुरुदेव का अनुसरण किया। सभी वैष्णवगण आनन्दपूर्वक द्वादश वन, द्वादश उपवन आदि तथा श्री राधाकृष्ण के लीलाजड़ित कुंजों का निविष्ट चित्त से प्रेमविह्वल हो कर दर्शन करने लगे।

एकदा परिक्रमाकारी वैष्णव "संकेत" में आ उपस्थित हुए। उस समय वहाँ श्रीश्री राधा श्यामसुन्दरजी की रासलीला का मंचन हो रहा था। सूचना मिलने पर सभी महन्त तथा वैष्णव, दर्शन के निमित्त वहाँ पहुँच गये। रासलीला आरम्भ होने पर, रास के पदों का गान होने लगा। अनेकों वाद्ययन्त्र एक साथ बजने लगे। श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी सखियों को लेकर, अपूर्व भंगी के साथ नृत्य करने लगे। उस अपूर्व रासलीला का दर्शन करके, श्री श्यामानन्दजी, भावविह्वल हो कर, प्रेमावेश में उसी कुंज की रज में "हे राधे, हे श्याम" कहते हुए लोटने लगे। किंचित धैर्य धारण करके, उन्होंने तत्क्षण उसी स्थान पर, रासलीला से सम्बन्धित दो पदों की रचना कर डाली तथा श्री श्री राधा श्यामसुन्दर जी के रास नृत्य के साथ–साथ, उनका गान करने लग पड़े। जब श्री श्यामसुन्दर जी ने, श्रीमती राधारानी को, रास मण्डली में नृत्य करने के लिए कहा, तो श्री श्यामानन्द जी, इस

प्रकार गाने लगेः—

"ओ मोर चाँदवदनी धनी नाचत देखि।
तात्वा थैया थैया, तिनि खिटि, तिनि खिटि, तिनि खिटि झां।
दिग, दिग, दिग, दिग, दिग, दिग, थै द्रिमि द्रिमि।
द्रिम्कि, द्रिम्कि द्रिमि् ताक् ताक्, गड़ि, गड़ि, गड़ि।
गड़ि, गड़ि, गड़ि, तात्ता द्रिमिता ताथै तिनि किटि झां।
नाचत देखि।

ना हबे भूषणेर ध्वनि ना नड़िबे चीर।
द्रुतगति चरणे ना बाजिबे मंजीर।।
विषम संकट ताले बाजाइब बांशि।
धनु अंकेर माझे नाच बूझिब प्रेयसि।।
हारिले काड़िये निब बेशर कांचली।
जिनिले तोमारे दिब मोहन मुरली।।
जेमन बले श्याम नागर, तेमनि नाचे राइ।
मुरली लुकाय श्याम चारि दिके चाइ।।
सबाइ बले राइ एर जय नागर हारिले।
दुःखिनी कहिछे गोपी मण्डली हासाले।

—(श्री श्यामानन्द प्रभु विरचित पदावली)

(अर्थात चन्द्रमुखी धनी तुम नृत्य करके दिखाओ।)
तात्वा थैया थैया, तिनि खिटि, तिनि खिटि, झां।
दिग, दिग, दिग, दिग, दिग, दिग, थै द्रिमि द्रिमि।
द्रिमिकि, द्रिमिकि द्रिमि ताके ताके, गड़ि, गड़ि, गड़ि।
गड़ि, गड़ि, गड़ि, तात्ता द्रिमिता ताथै तिनि खिटि झां।

"तुम ऐसा नृत्य करके दिखलाओ, जिस में तुम्हारे आभूषणों से कोई ध्वनि न निकले तथा तुम्हारे वस्त्र भी न हिलें। तुम्हारे चरणों की पायलें भी न बजें। मैं बहुत संकटपूर्ण ताल में अपनी बांसुरी बजाऊँगा। हे प्रेयसी! तुम धनुष मुद्रा में नृत्य करके दिखलाओ। अगर तुम हार जाती हो तो मैं तुम्हारी वेशर एवं कांचुली को उतार लूंगा। यदि तुम्हारी विजय होती है, तो मैं अपनी इस मोहन मुरली को तुम्हें दे दूंगा।" फिर श्रीश्यामसुन्दर जी जैसी

मुरली बजाने लगे, श्री राधिका जी वैसा ही नृत्य करने लगीं। श्री श्यामसुन्दर जी तब चारों ओर देखते हुए, डर से अपनी मुरली को छुपाने लगे। तब सब सखियां कहने लगीं कि "श्री श्यामसुन्दर जी की पराजय हुई एवम् हमारी श्रीमती राधारानी की विजय।" उस समय दुःखिनी श्री श्यामानन्द प्रभु जी कहने लगे, "हे श्याम सुन्दर जी, आप जो मुरली को छिपा रहे हैं तो यह देखकर सारी सखियां हंस रही हैं।")

जब श्रीमती राधारानी जी, सभी सखियों के साथ श्री श्यामसुन्दर जी को रास मण्डली में नृत्य करने के लिए कहने लगीं तो श्री श्यामानन्द प्रभु जी गाने लगेः–

"श्याम! तोमाके नाचते हबे।
दिगेदां झिनिकेटा, थुरर लाग जिग झां।
उरर ताड़ा थोइ झुनुर झुनुर झुनु झुनु।।
झुनु झुनु धोइ धोइ, धोइ, गिड़ गिड़ गिड़।
गिड़ गिड़, गिड़, गिड़, तित्ता, दिमि ता ताना थोरी।।
ना नड़िबे, गण्ड मुण्ड, नूपुरेर कड़ाइ (काटा झां। ध्रु)
ना नड़िवे बनमाला बुझिब बड़ाइ।।
ना नड़िबे क्षुद्र घण्टि श्रवणेर कुण्डल।
ना नड़िबे नासार मोति नयनेर पल।।
ललिता बाजाय वीणा, विशाखा मृदंग।
सुचित्रा बाजाय सप्तस्वरा राइ देखे रंग।।
तुंगविद्या कपिनास तुम्बुरा रंगदेवी।
इन्दुरेखा पिनाक बाजाय मन्दिरा सुदेवी।।
उद्भट तालेते जदि हार बनमाली।
चूड़ा बांशी केड़े निब दिब करताली।।
यदि जिन राइके दिब आमरा हब दासी।
नइले कारागारे थोब दुःखिनी शुनि हासि।।
(दुःखिनी=दुःखी कृष्णदास–श्रीश्यामानन्द प्रभु)
– (श्री श्यामानन्द प्रभु विरचित पदावली)

(अर्थात हे श्याम सुन्दर! तुम को नृत्य करना पड़ेगा)

दिगेदा झिनेकेटा, थोइ लाग जिग झां।
उरर ताड़ा थोइ झुनुर झुनुर झुनु झुनु।
झुनु झुनु धोइ धोइ, धोइ, गिड़ गिड़ गिड़।
गिड़ गिड़, गिड़ गिड़ तित्ता दिमिता ताना थोरि।

तुमको ऐसे नृत्य करना होगा कि तुम्हारा मस्तक तथा बाकी शरीर भी न हिले। तुम्हारी वनमाला भी न हिले व तुम्हारा नूपुर भी न बजे। तुम्हारी कमर में जो क्षुद्र घण्टी है, वह तथा तुम्हारे कर्ण–कुण्डल भी न हिलें। तुम्हारी नासिका का मोती नहीं हिलना चाहिये तथा तुम्हारे नयनों की पलकें भी नहीं गिरनी चाहियें। श्री ललिता सखी वीणा, श्री विशाखा जी मृदंग, श्री सुचित्रा जी सप्तस्वरा, श्री तुंगविद्या कपिनाश, श्री रंगदेवी तुम्बूरा, श्री इन्दुरेखा पिनाक एवम् श्रीसुदेवी मंजीरा बजाने लगीं। श्रीमती राधारानी जी यह रंग देख कर हंस रही थीं। सभी सखियां कहने लगीं, "हे वनमाली! हमारे इस उद्भट ताल से यदि तुम पराजित हो जाते हो तो तुम्हारी चूड़ा तथा मुरली आदि को हम तुम से बलपूर्वक छीन लेंगी एवम् करताली बजाने लगेंगी। यदि तुम्हारी जीत हो जाएगी तो श्रीमती राधारानी जी को आप को समर्पित करके, हम स्वयं भी आप की दासियां बन जायेंगी।" सखियों ने आगे जब यह कहा कि श्री श्यामसुन्दर जी के पराजित होने पर वे उनको कारागार में बन्द कर देंगी तो यह सुन कर दुःखिनी अर्थात श्री श्यामानन्द जी हंसने लगे।)

श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी की इस रास लीला के दर्शन करके, प्रेमाश्रुओं से श्री श्यामानन्द जी के वक्षःस्थल के प्लावित होने के साथ–साथ, उनके परिधेय वस्त्र भी सिक्त हो गये। प्रेमावेश से इन पदों का गान करते हुए श्री श्यामानन्द जी व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगे। गोपीभाव से भावित होकर वे अकस्मात अपने उत्तरीय वस्त्र के द्वारा, गोपियों की भांति अपने सिर पर घूंघट निकालकर, ज्ञानशून्य होकर, गोपियों की ही तरह नृत्य करने लगे।

उधर श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, श्री श्यामानन्द जी के इस गोपीभाव का दर्शन करके अत्यन्त दुःखी हो गये। सख्यभाव के उपासक श्री कृष्णदास ने, श्रीकृष्ण के सख्यभाव का परित्याग करके, श्रीमती राधारानी

जी के सखीभाव को अंगीकार कर लिया था, यह देख कर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, अभिमान से क्षुब्ध हो कर तुरन्त रासस्थली का परित्याग करके, अपनी विश्राम स्थली को चले गये। किन्तु श्री श्यामानन्द जी रासलीला के आनन्द में मग्न होकर, रासस्थली में ही रह गये। अगले दिन प्रांतःकाल, वे जब श्री गुरुदेव जी के पास गए तो श्रील हृदय चैतन्य प्रभु अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगे, "श्यामानन्द! तुमने मेरे प्राण श्रीकृष्ण के सख्यभाव को छोड़कर, श्रीमती राधारानी जी के सखीभाव का आश्रय ग्रहण कर लिया है। इसलिए मेरे साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है।"

इस पर श्री श्यामानन्द जी ने कर जोड़ कर विनम्रतापूर्वक उनसे यों कहाः–

"एत शुनि श्यामानन्द कहेन मधुर।
राधिकार भाबे भजे पण्डित ठाकुर।।
कृष्ण संगे रहे राधाभाब अनुक्षण।
राधा कृष्ण दोंहाकार करेन मिलन।।
राधाकृष्ण संगेते थाकेन अनुक्षण।
राधाकृष्ण रासलीला करेन दर्शन।।
राधा वेश हन कुंजे सुबल ठाकुर।
तांर भाब आस्बादन करिला मधुर।।"

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/२२–२४,२६)

(अर्थात श्रील हृदय चैतन्य प्रभु की ऐसी बातें सुनकर, श्री श्यामानन्द जी ने मधुर कण्ठ से कहा, "श्री गौरीदास पण्डित ठाकुर भी सखीभाव से ही भजन करते हैं। हर समय श्रीकृष्ण के साथ रहते हुए भी, श्री राधाभाव के कारण श्री राधा व श्री कृष्ण दोनों का मिलन कराते रहते हैं। श्री गौरीदास पण्डित, श्री राधाकृष्ण के साथ रह कर, रास लीला का दर्शन करते रहते हैं एवम् लीला के कारण श्रीमती राधारानी का भेष धारण करके,उनके मधुर भाव मधुरता का आस्वादन भी करते हैं।")

"अतएव हे प्रभु! जब स्वयं श्री गौरीदास पण्डित ठाकुर ही मधुरभाव का आस्वादन करते हैं तो मैंने किस प्रकार आपके भाव का विरोधी होकर, आपकी अवमानना की है।"

श्री श्यामानन्द जी के उपरोक्त कथन को सुनकर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु जी और भी क्रुद्ध हो गये एवम् कहने लगे, "मैंने अपने गुरुदेव, श्री गौरीदास पण्डित ठाकुर जी के श्रीमुख से कभी भी ऐसा विवरण नहीं सुना। इसलिए तुम भी अब कभी सख्यभाव को छोड़कर, सखीभाव का आचरण मत करना।"

"सखा बिनु राधाभाब कभु ना करिबे।
मोर सख्यभाब जेइ सेइ आचरिबे।।"

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/२४)

(अर्थात सख्यभाव के सिवाय कभी भी राधाभाव का आचरण मत करना। मेरा साध्य जो सख्यभाव है, तुम उसी का ही आचरण करना।)

किन्तु श्री श्यामानन्द जी ने करबद्ध होकर निवेदन किया :–

"सख्यभाब करिते नारिब आचरण।"

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/२६)

(अर्थात मैं सख्यभाव का आचरण नहीं कर सकूंगा।)

श्री श्यामानन्द जी के मुख से ऐसे नकारात्मक वाक्य का श्रवण करके, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु का क्रोध सीमा को पार कर गया। वे आपा खो बैठे और क्रोधातिरेक से उन्होंने अपने बैंत से, श्री श्यामानन्द प्रभु पर दो–तीन बार ज़ोर–ज़ोर से प्रहार किये, जिससे उनका मांस फट गया और उनके घाव से रुधिर की धारा प्रवाहित हो उठी। यह देख कर, महन्त शीघ्रतापूर्वक श्री श्यामानन्द जी को वहां से दूर ले गये। महन्तों ने क्रोधपूर्वक श्रील हृदय चैतन्य प्रभु जी से कहा,"हृदयानन्द! तुम बिना कारण ही क्यों श्यामानन्द को पीट रहे हो? मधुरभाव में दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि भावों का भी समावेश है। इसलिए तुमने एक अज्ञानी की भांति, किस कारण से श्यामानन्द की ताड़ना की?" उधर उन लोगों ने, श्री श्यामानन्द को बहुत प्रकार से समझा कर, सान्त्वना प्रदान की।

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु जी की मार सहकर भी, श्रीश्यामानन्द जी दुःखी या क्षुब्ध नहीं हुए। उन्होंने प्रफुल्लित चित्त से, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु जी के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया एवम् भावोद्रेक से गद्–गद होकर उनसे कहा,"मैंने आज श्री गुरुदेव की साक्षात कृपा प्राप्त कर ली है।

मेरे सारे अपराध नष्ट हो गये हैं। हे प्रभु! मैंने आज आपकी आज्ञा का पालन नहीं किया। आप मेरे इस अपराध को क्षमा कर दीजिए। आप ऐसे सोच लेवें कि पहले आपके पांच पुत्रों का जन्म हुआ था एवम् आज एक कन्या अर्थात मेरा जन्म हुआ है।"

"पंच पुत्र हैल जेन एक हइल सुता।
इहा जानि प्रभु किछु ना करिह चिन्ता।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/४०)

(अर्थात हे प्रभु! जैसे आप के पांच पुत्रों के बाद एक कन्या ने जन्म ले लिया है, यह सोचकर आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें।)

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु द्वारा अपनी पिटाई होने के बावजूद भी, जब श्री श्यामानन्द प्रभु ने ऐसी विनम्र वाणी में उनसे (गुरुदेव जी से) ऐसी विनति की, तो श्रील हृदय चैतन्य प्रभु का चित्त भी द्रवीभूत हो गया। उनके हृदय में अपार स्नेह उमड़ आया तथा वे श्री श्यामानन्द जी को अपनी गोदी में लेकर, पश्चाताप के अश्रु विसर्जित करते हुए बोले, "वत्स! मेरे इस निर्दय–निर्मम व्यवहार को अपने अन्तर में स्थान मत देना।" श्री श्यामानन्द जी ने श्री गुरुदेव के चरणारविंद में प्रणाम करते हुए कहा, "हे प्रभु! मैं इस से दुःखी नहीं हूँ, अपितु (बल्कि) बहुत ही आनन्दित हूँ। सुगन्धित चन्दन के समान आपके प्रहार से मेरी देह, मेरे मन तथा मेरे प्राणों को शीतलता की उपलब्धि हुई है। असीम कृपा बरसाते हुए, इतने दिन के पश्चात, आपने मुझे निजजन के रूप में अंगीकार जो किया है।" श्री श्यामानन्द के ऐसे दीनतापूर्ण एवम् विनम्र व्यवहार तथा गुरुनिष्ठा को देखकर, सभी महन्त धन्य धन्य कह उठे।

उसी दिन रात्रि में, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने स्वप्न में देखा कि उनके आराध्य श्री गौरसुन्दर जी आकर उनके सम्मुख दण्डायमान हो गये। उनका दर्शन करते ही, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने ऐसा करते हुए देखा कि श्रीमन्महाप्रभु के श्रीअंग पर जो उत्तरीय था, वह रक्तरंजित था। यह देखते ही श्रील हृदय चैतन्य प्रभु जी आर्तनाद कर उठे, क्योंकि श्री गौरसुन्दर के श्रीअंग पर स्थान–स्थान पर मांस भी फटा हुआ था तथा वहां से रक्त बहे जा रहा था। रक्त में

लथपथ, उनका काश कुसुम सा शुभ्र उत्तरीय, उनके (श्री गौरांग के) कोमल श्रीअंग से चिपक गया था।

श्री गौरसुन्दर जी के श्रीअंग की ऐसी दुरावस्था देख कर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने परम कष्ट अनुभव करते हुए, श्रीमन्महाप्रभु से प्रश्न किया "हे प्रभु! आप के कोमल श्रीअंग की ऐसी दुर्दशा किस पापी ने की है?"

श्रीमन्महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे हृदय चैतन्य! यह सब तुम्हारी ही कृपा है।"

यह उत्तर सुन कर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने अत्यन्त विस्मित हो कर कहा,"प्रभु! आप यह क्या कह रहे हैं? क्या मैं आप का दास होकर भी, आपके श्रीअंग पर, आघात कर सकता हूँ?"

तब श्री गौरसुन्दर जी ने उत्तर दिया, "हृदय चैतन्य! क्या तुम नहीं जानते, श्यामानन्द मेरी आत्मा है? तुमने जो श्यामानन्द के शरीर पर आघात किया था, उस से मेरा अंग ही जर्जरित हुआ है। तुमने जो प्रहार उसके अंग पर किये, वे सब मेरे अंग पर ही तो लगे, जिस से मेरे अंग फटकर रक्तरंजित हो गए हैं और निकले हुए रक्त ने मेरे उत्तरीय वसन को सिक्त कर दिया है।"

तब कृपा हैते परि ए रक्त बसन।
श्यामानन्द मोर आत्मा करिले घातन।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/५३)

(अर्थात तुम्हारी ही कृपा से मैंने ये रक्त से लथपथ वस्त्र पहन रखे हैं। श्यामानन्द मेरी आत्मा है, उस पर तुमने आघात किया है। उसी कारण मेरी ऐसी दशा है।)

"फिर श्यामानन्द रूपी कनकमंजरी, श्रीमती राधारानी जी की अत्यन्त प्रिय सहचरी है। तुम उसके प्रति श्रीमती राधारानी जी की कृपा के विषय में संशय क्यों करते हो?"

श्रीमन्महाप्रभु के इन वचनों को सुनकर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु हतभम्ब हो गये। पश्चाताप के अश्रुओं से अपने वक्षःस्थल को प्लावित करते हुए, वे व्याकुल होकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को पकड़ कर, ज़ोर ज़ोर से क्रन्दन करने लगे और उन से यों कहने लगे, "हे गौरसुन्दर! मैं यह नहीं

जानता था कि श्यामानन्द आप की आत्मा है। इस तथ्य से अनभिज्ञ होने के कारण ही मैं, ऐसा निष्ठुर हो कर, उस पर प्रहार कर बैठा। हे प्रभु! मैं जानता हूँ, कि मेरे अपराध की कोई क्षमा नहीं, फिर भी मैं एकमात्र आप के ही श्रीचरणों का आश्रय ले रहा हूँ। आपने अधम–पतित जनों का उद्धार करने के लिए ही अवतार धारण किया है। कृपा करके आप मुझ पापी का भी उद्धार कर दीजिए। यदि आप मुझे क्षमा नहीं करेंगे तो मैं आप ही के सम्मुख अपने प्राणों का त्याग कर दूँगा।"

"मोर अपराध हइल तब चरणे।
प्रभु ना क्षमिले, आमि त्यजिब पराणे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/१५४)

(अर्थात आपके श्री चरणारविन्द में, मुझसे अपराध हुआ है। यदि आप इसे क्षमा नहीं करेंगे, तो मैं अपने प्राण त्याग दूंगा।)

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के ऐसे करुण विलाप से, भक्तवत्सल श्री गौरसुन्दर का हृदय द्रवीभूत हो गया। वे कृपा करके, श्रील हृदयचैतन्य प्रभु से कहने लगेः–

जे हैल अपराध, शुन बलि आमि।
साधु अपराधे, साधु सेबा कर तुमि।।
बैष्णबेर अपराध तुमिओ मानिबे।
द्वादश महोत्सब कर तबे क्षमा हबे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/६२,६३)

(अर्थात तुमने जो अपराध किया है, उसे क्षमा करवाने के लिए जो मैं कह रहा हूँ, तुम उसे श्रवण करो। साधु के प्रति अपराध के लिए, तुम साधु सेवा करो। वैष्णवों के निकट अपराध स्वीकार करके, तुम द्वादश दिन महोत्सव करो, तभी तुम्हें क्षमा मिलेगी।)

श्री गौरसुन्दर के इस प्रकार आदेश देकर अन्तर्हित होने पर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु की निद्रा भंग हो गई। अपने द्वारा किये हुए अमार्जनीय अपराध का स्मरण करके, पश्चाताप के कारण, उन का हृदय विदीर्ण होने लगा। सुबह होते ही वे सीधे महन्तों के पास गए और उन्हें रात्रि में देखे स्वप्न के विषय में, आद्योपान्त अवगत कराया। स्वयं श्रीमन्महाप्रभु ने जो

वैष्णव अपराध क्षालन के लिए, द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव करने का आदेश दिया था, उसके विषय में भी महन्तों को सूचित किया और श्रील हृदय चैतन्य प्रभु जी ने इस के लिए, अपनी सहमति भी प्रकट की।

स्वप्न की सारी घटना को सुन कर, सभी महन्तों ने कहा,"हृदय चैतन्य! स्वप्न होने पर भी श्रीमन्महाप्रभु जी का आदेश सत्य ही प्रतीत हो रहा है।"

"श्यामानन्दे स्वप्ने कृपा तुमि ना मानिला।
सेइ सत्य हय जदि एइ सत्य हैला।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/८४—८५)

(अर्थात श्यामानन्द के स्वप्न को तुमने सत्य नहीं माना था, किन्तु क्योंकि वह सत्य प्रमाणित हुआ, इस लिए यह स्वप्न भी सत्य है।)

"हृदय चैतन्य! पहले श्यामानन्द के स्वप्न को तुम ने स्वीकार नहीं किया था, किन्तु वह स्वप्न सत्य था, यह प्रमाणित हो चुका है। श्रीमन्महाप्रभु का द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव करने का आदेश, स्वप्न होने के बाबजूद, सत्य ही प्रतीत हो रहा है। इसलिये वैष्णव अपराध क्षालन के लिये, द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव करने के आदेश का पालन करना तुम्हारा आवश्यक कर्त्तव्य है।"

मगर श्री श्यामानन्द प्रभु ने जब यह सुना कि उन पर प्रहार करने के कारण, श्री गुरुदेव, श्रील हृदयचैतन्य प्रभु के प्रति, स्वयं श्रीमन्महाप्रभु ने दण्ड के रूप में, द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव करने का आदेश प्रदान किया है तथा चौंसठ महन्तों, द्वादश गोपालों आदि मुख्य वैष्णवों ने भी, उस दण्ड को अपरिवर्तित रखा है, तो श्री श्यामानन्द प्रभु अत्यन्त मर्माहत हुए। उन्होंने सभी महन्तों के चरण पकड़ कर निवेदन किया, " हे कृपामय वैष्णव ठाकुरगण! मेरे कारण मेरे श्रीगुरुदेव, दण्ड स्वरूप द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव का आयोजन करेंगे, यह मेरे लिए अति शोचनीय विषय है। श्री गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन करके, मैंने ही अपराध किया था, जिसके लिए, दण्ड का विधान मेरे प्रति ही होना चाहिए।" उन्होंने अत्यन्त दुःखी हो कर कर जोडकर कहाः—

"प्रभु संगे कैनु बाद मोर अपराध।
सकल महान्त मोरे करह प्रसाद।।
द्वादश महोत्सब मोरे एइ. भिक्षा देह।
सबे कृपा करिया आपन करि लह।।
—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४८४—८५)

(अर्थात् श्रीगुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन करके, मैंने ही अपराध किया था। आप सभी वैष्णवगण, मुझे अपना निजजन मानकर, कृपा करके, इस द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव की मुझे भिक्षा दीजिए।)

सभी महन्तों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर, श्री श्यामानन्द जी की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। साथ ही उन्होंने कहा, "धन्य श्यामानन्द! तुम धन्य हो। तुमने अपने साथ—साथ, अपने गुरुदेव का भी उद्धार कर दिया है।" सभी महन्त, हृष्ट चित्त से, श्री श्यामानन्द जी का आलिंगन एवम् चुम्बन करने लगे।

महन्तों ने, द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव का आयोजन करने के लिए, श्री श्यामानन्द जी को वृन्दावन भेज दिया। भेजते समय उन्होंने श्री श्यामानन्द जी से कहा,"तुम वृन्दावन पहुंचकर, महोत्सव के लिए सभी द्रव्यों का प्रबन्ध करो। हम लोग परिक्रमा के पश्चात् महोत्सव में योगदान करेंगे।"

श्री श्यामानन्द जी ने वृन्दावन में पहुंच कर, श्रील जीव गोस्वामी पाद को, श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रील हृदय चैतन्य प्रभु को, द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव का आयोजन करने सम्बन्धी आदेश के विषय में सूचित कर दिया। साथ ही महोत्सव आयोजन के सम्बन्ध में महन्तों के द्वारा, श्री श्यामानन्द को वृन्दावन भेजने की सारी घटना से भी, श्रील गोस्वामी पाद को अवगत करवा दिया। श्रील जीव गोस्वामी पाद, सारी घटना की जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त आनन्दित होकर, श्री श्यामानन्द को गोदी में बिठाकर, स्नेहातिरेकवश, उनके चुम्बन लेने लगे। वे स्वयं भी, इस दण्डमहोत्सव के आयोजन सम्बन्धी कार्यों में सहायता करने लगे। श्रील जीव गोस्वामी के आदेश से ब्रजवासी भी यथाशक्ति अपना योगदान प्रदान करने लगे।

इस समय तक, श्री श्यामानन्द प्रभु के प्रति श्रीमती राधारानी जी

की दिव्य कृपा कथा, सारे ब्रजमण्डल में प्रचारित हो चुकी थी। ब्रजवासियों ने जब सुना कि श्री श्यामानन्द जी दण्ड महोत्सव का आयोजन कर रहे हैं, तो वे सभी प्रकार की सहायता देने लगे। मथुरा से भी धनी व्यक्ति अपने योगदान स्वरूप, बहुत से पदार्थ वृन्दावन भेजने लगे।

श्रील हृदय चैतन्य प्रभुने चौंसठ महन्तों, द्वादश गोपालों एवं गौड़मण्डल के वैष्णवों को साथ लेकर, श्रीधाम वृन्दावन में पहुंचकर, महोत्सव में योगदान दिया। श्री श्यामानन्द जी ने हाथ जोड़ कर, श्रील जीव स्वामी से निवेदन किया, "आप जैसा आदेश करेंगे, मैं वैसा ही करूँगा, किन्तु आप को ही कृपापूर्वक अग्रगणी होकर, महोत्सव के सारे कार्यों का सम्पादन करना पड़ेगा।" श्रील जीव गोस्वामी ने भी, सन्तुष्ट चित्त से, सम्मति प्रदान की।

श्रील जीव गोस्वामी जी के निर्देशानुसार, ब्रज मण्डल के सभी साधुओं व वैष्णवों को, दण्ड महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए, आमंत्रित किया गया। सभी महन्तों तथा ब्रज वासियों को भी निमंत्रण प्रदान किया गया। ईसवी सन् १५७६ की ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को, अत्यन्त समारोहपूर्वक द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव का शुभारम्भ हुआ।

"ज्येष्ठ शुक्ल पंचमीते महोत्सब आरम्भिला।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/१०८)

(अर्थात ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को महोत्सव प्रारम्भ हुआ)

विभिन्न प्रकार के मिष्ठानों तथा पकवानों को पर्वत परिमाण में प्रस्तुत रखा गया। महोत्सव का प्रत्येक द्रव्य, अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट बना। ब्रजवासियों के लिए एकदिन पकवान महोत्सव हुआ। द्रव्य इतने अधिक परिमाण में बनाए गए, कि ब्रजवासी लोग, मिष्ठानों तथा पकवानों को पोटलियों में बांध कर, अपने–अपने घर भी ले गए। इसके पश्चात्, बारह दिन अन्न महोत्सव भी हुआ। पकवान महोत्सव का आयोजन, दूसरे सम्प्रदायों के अरवाड़ावासी वैष्णवों के लिये ही किया गया था। गौड़ीय सम्प्रदाय के अन्तर्गत, उड़ीया व गौड़ीय वैष्णवों ने, द्वादश दिन अन्न प्रसाद ही ग्रहण किया। पूर्णिमा के दिन रात्रिकाल में, ज्योत्स्ना से जब समग्र वृन्दावन समुज्ज्वल हो उठा, तो श्री राधा कृष्ण जी की रास लीला का भी

मंचन हुआ।

पूर्णिमाते राधाकृष्ण रास दरशन।
यात्रा देखी सब लोक आनन्दित मन।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/११४)

(अर्थात पूर्णिमा के दिन रात्रि में, श्री राधाकृष्ण की रासलीला का दर्शन करके सभी लोग प्रसन्न हो गए।)

द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव में चतुःसम्प्रदायी वैष्णव, गौड़मण्डल से आए हुए चौंसठ महन्त, द्वादश गोपाल आदि वैष्णव तथा ब्रजवासी गण, परमानन्द लाभ करके, श्री श्यामानन्द जी की जय जयकार करने लगे। महोत्सव के दधिमंगल के उपरान्त, श्री श्यामानन्द जी ने, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के निकट जा कर उनके श्रीचरणों में पाँच स्वर्ण मुद्रायें भेंट कर, साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। इस प्रकार दण्डमहोत्सव, महा–समारोह के साथ सम्पन्न हो गया। महोत्सव के उपरान्त, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने, चौंसठ महन्त, द्वादश गोपाल आदि वैष्णवों को साथ लेकर, श्रीधाम वृन्दावन से, श्रीपाट अम्बिका के लिए प्रस्थान किया।

श्री श्यामानन्द प्रभु, उन के विरहजनित अश्रुओं से वक्षःस्थल को प्लावित करते हुए, उनका अनुगमन करने लगे। गुरुदेव श्रील हृदय चैतन्य प्रभु तथा सभी महन्तों ने, उनको बहुत प्रकार से समझा बुझा कर, सांत्वना प्रदान की और उन्हें वृन्दावन में श्रील जीव गोस्वामी के पास भेज दिया।

अष्टम् अध्याय

श्रीश्री राधाश्यामसुन्दरजी का विवाह

(ईसवी सन् 1580)

तथा बंग देश को गोस्वामी ग्रन्थों का प्रेरण

(ईसवी सन 1581)

श्रीलश्यामानन्द प्रभु, श्रीधाम वृन्दावन में अवस्थान करके, श्री श्यामसुन्दर जी की प्रेम सेवा में सम्पूर्णरूपेण निमग्न हो गये। उन दिनों, एक अभूतपूर्व घटना घटी। एकदिन श्री श्यामसुन्दर जी ने, श्री श्यामानन्द प्रभु से कहा, "श्यामानन्द! मेरी राधारानी जी, भरतपुर के महाराजा के प्रासाद में अवस्थान कर रही हैं। तुम उन्हें वहां से लाकर, मेरे साथ सम्मिलित कराओ।"

–श्रीश्री श्यामानन्द रसनिधि (४)

उधर भरतपुर के महाराजा के रत्नभण्डार में, श्रीमती राधारानी जी ने स्वयमेव प्रकट होकर, एक दिन स्वप्न में महाराजा को आदेश दिया, "महाराज! मेरे श्यामसुन्दर, श्रीधाम वृन्दावन में, श्री श्यामानन्द की कुंज में प्रकट हो गए हैं। तुम उनके साथ मेरा विवाह सम्पन्न करो।"

–श्रीश्री श्यामानन्द रसनिधि (४)

स्वप्न दर्शन करके महाराजा की निद्रा भंग हो गई। उन्होंने उसी समय महारानी को जगाकर, स्वप्न के विषय में उन्हें बतलाया। अगले दिन प्रातःकाल, जब महाराजा व महारानी रत्न भण्डार में गए तो वहां उन्होंने बहुत से महामूल्यवान रत्नों सहित, श्रीमती राधारानी की एक अपूर्व सौंदर्य–माधुर्य से परिपूर्ण, लावण्यमयी किशोरी मूर्ति के दर्शन किये। महाराजा तथा महारानी के विस्मय तथा आनन्द का ठिकाना न रहा। महारानी तत्क्षण, उन किशोरी मूर्ति को उठा कर, वक्षःस्थल पर रखकर,

वात्सल्य भाव से क्रन्दन करने लगीं। महाराजा के आदेश से, उसी समय, किशोरी राधारानी जी को षोड़श श्रृंगार से भूषित किया गया तथा राजपुरोहित ने आकर स्वयं राजोपचार से उनकी सेवा आरम्भ कर दी। श्रीमती जी के प्राकट्य से भरतपुर के राजप्रासाद में महोत्सव की धूम मच गई।

एक दिन महाराजा तथा महारानी, प्रमुख आमात्य व राजपुरोहित को साथ लेकर, श्रीधाम वृन्दावन में, श्रील श्यामानन्द जी की कुंज में पहुंच गये। वहां भजन कुटीर में श्री श्यामसुन्दर जी के अपूर्व लावण्यमय त्रिभंग भंगिम श्रीविग्रह के दर्शन करके, महाराज अभिभूत व प्रेमभाव से विभोर हो गये। महाराजा ने श्रील श्यामानन्द जी को अपने रत्नभण्डार में, श्रीमती राधारानी जी के स्वयं प्राकट्य की कथा से अवगत कराया। श्रीमती राधारानी द्वारा स्वप्न में प्रदत्त उस आदेश की भी पूर्णजानकारी दी, जिस में उनको, श्रीमती राधारानी जी ने अपने श्रीविग्रह का विवाह, श्री श्यामसुन्दरजी से सम्पन्न करने के लिए कहा था। महाराजा के मुख से सारी घटना का विवरण प्राप्त करके, श्रील श्यामानन्द जी बहुत ही आनन्दित हुए। श्रील जीव गोस्वामी को जब इस घटना की जानकारी मिली, तो उन के आनन्द की भी कोई सीमा न रही। ईसवी सन् १५८० की बसन्त पंचमी वाले दिन, श्रीधाम वृन्दावन की श्री श्यामानन्द जी की कुंज में, एक महान समारोह में, श्री श्यामसुन्दर जी के साथ श्रीमती राधारानी जी का विवाह धूम–धाम के साथ सम्पन्न हुआ। इस समारोह में, भरतपुर के महाराजा, महारानी, आमात्यगण तथा राज्य के प्रमुख नागरिकों ने सपत्नीक वृन्दावन धाम में आकर, विवाह का कार्य सम्पन्न किया। विवाह के पश्चात् महाराजा ने, वर्तमान के विशाल मंदिर का निर्माण करवाया तथा श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी की सेवा के लिए, छटीकरा नामक ग्राम व बहुत सी भू–सम्पत्ति प्रदान की।

"आज्ञा शुनी राजार बड़ आनन्द हइला।
छटीकरा ग्राम सेबा कारणेते दिला।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१३/५०)

(अर्थात श्री श्यामानन्द जी की आज्ञा पाकर, राजा ने अति आनन्दित चित्त से, छटीकरा ग्राम सेवा के लिए दिया।)

परवर्ती काल में जयपुर के महाराजा ने भी, श्रीधाम वृन्दावन की,श्री श्यामानन्द जी की कुंज में आकर, श्रीश्री राधाश्यामसुन्दर जी के दर्शन किये और उत्फुल्लित होकर श्यामली नामक ग्राम, उनकी सेवा के लिए प्रदान किया।

"सेबार कारणे से श्यामली ग्राम दिला।"

–श्रीश्रीश्यामानन्द प्रकाश (१३/५६)

(अर्थात सेवा के लिए जयपुर के महाराजा ने,श्यामली ग्राम प्रदान किया।)

श्री श्यामानन्द जी के जीवन में एक के बाद एक घटित, ऐसी घटनाओं को देख कर, उस समय, श्रील जीव गोस्वामी ने सर्वसम्मति से उन को "प्रभु" की उपाधि प्रदान की। इस से पहले, श्रील जीव गोस्वामी ने, श्री श्रीनिवास को आचार्य तथा श्रीनरोत्तम को ठाकुर महाशय की उपाधि प्रदान की थी।

–श्रीश्री श्यामानन्द रसनिधि (८)

इसवी सन् १५८१ की कार्तिक नियम सेवा में, रास महोत्सव के उपलक्ष्य में श्रील जीव गोस्वामी की कुटीर के प्रांगण में, वृन्दावन वास करने वाले, सभी वैष्णवों का आगमन हुआ। इन सभी वैष्णवों के सम्मुख, श्रील जीव गोस्वामी ने, एक विशेष प्रस्ताव रखा। श्री चैतन्य महाप्रभु ने, धर्म प्रचार के लिए, श्रील रूप गोस्वामी व श्रील सनातन गोस्वामी आदि में शक्ति संचार करके उनसे बहुत संख्या में भक्ति ग्रन्थों की रचना करवाई थी। श्रील जीव गोस्वामी चाहते थे कि उन सारे भक्ति ग्रन्थों का अधिक से अधिक प्रचार हो। श्रील जीव गोस्वामी का प्रस्ताव इस विषय में था। सभी उपस्थित वैष्णवों ने, इस प्रस्ताव का सर्वान्तःकरण से समर्थन किया। इस पर श्रील जीव गोस्वामी व श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी आदि ने एकमत से सिद्धान्त रूप में निर्णय लिया कि इन सभी वैष्णव ग्रन्थों के प्रचार का गुरुदायित्व, श्री श्रीनिवास आचार्य पर होगा तथा श्री नरोत्तम ठाकुर और श्री श्यामानन्द प्रभु, इस कार्य में सर्वतोरूपेण सहायता करेंगे।

श्री श्रीनिवास आचार्य, श्री नरोत्तम ठाकुर तथा श्रीश्यामानन्द प्रभु, इस प्रस्ताव को सुन कर, शोक से अत्यन्त विह्वल हो गए, क्योंकि इन तीनों

का आजीवन ब्रज में वास करके, श्रीराधा कृष्ण की मधुरातिमधुर उज्ज्वल प्रेम लीलाओं का आस्वादन करने का विचार था। इसलिए उन तीनों ने कातर होकर, श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी के श्रीचरणों में, निवेदन किया, "हे प्रभु! हम पतित अधमों को अपने चरणारविंद की सेवा से वंचित न कीजिए। आपके चरणों की छाया में रहकर, श्री राधाकृष्ण की मधुर लीलाओं का सदा आस्वादन करते रहने की ही, हमारी एक मात्र अभिलाषा है।" इस पर सभी गोस्वामी तथा वैष्णवगण, इन तीनों को नाना प्रकार से समझाने लगे तथा सांत्वना प्रदान करके, गौड़देश में जाने के लिए, उनको उदबुद्ध करने लगे। उन्होंने कहा, "वत्सगण! क्योंकि हम सभी, श्रीमन्महाप्रभु के दास हैं, इसलिए, श्रीमन्महाप्रभु हमें जिस कार्य में नियुक्त करेंगे, हमें वह कार्य, अवश्यमेव सम्पादित करना पड़ेगा। अन्यथा विचार तथा आचरण करना, हमारे लिए उचित नहीं। आचार तथा प्रचार, दोनों ही धर्म के मुख्य कार्य हैं। यदि यों कहा जाय कि प्रचार, आचार से अधिक सशक्त है, तो अतिशयोक्ति न होगी। धर्म के आचार का पालन बहुत से व्यक्ति कर सकते हैं, किन्तु प्रचार कार्य सभी के द्वारा सम्भव नहीं, क्योंकि प्रचार के लिए विशेष शक्ति की आवश्यकता होती है। श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से, तुम तीनों ने ही वह विशेष शक्ति अर्जित कर ली है। इसलियेः–

बड़ धर्मरक्षा प्रभु धर्म प्रचारण।
सबार आज्ञाय कर गौड़े गमन।।

–प्रेम विलास (१२)

(अर्थात श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रवर्त्तित तथा प्रचारित धर्म का प्रचार करना बड़ा धर्मरक्षा का कार्य है। इसलिए हम सब की आज्ञा से, तुम गौड़देश को जाओ।)"

सभी गोस्वामियों तथा वैष्णवों का निश्चित कृपादेश प्राप्त होने पर, श्री श्रीनिवास, श्री नरोत्तम और श्री श्यामानन्द, उस का उल्लंघन न कर सके। अतः सभी ब्रजवासी महन्तों व वैष्णवों की कृपा प्राप्त करके, वे गौड़देश जाने की तैयारी करने लगे। यद्यपि वे तीनों, वृन्दावनस्थ वैष्णवों एवम् ब्रजवासियों के जीवन स्वरूप थे, फिर भी भक्ति ग्रन्थों के प्रचार के

महान कार्य को श्रीमन्महाप्रभु द्वारा अभिप्रेत जान कर, सभी ने दुःखी मन से, तीनों को गौड़देश जाने की अनुमति प्रदान कर दी। श्री श्यामानन्द प्रभु अपने शिष्य, श्री श्यामदास को, श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी क़ी सेवा में नियुक्त करके, उत्कल प्रदेश जाने के लिए तैयार होने लगे।

श्रील जीव गोस्वामी के आदेश से, एक मथुरावासी धनी महाजन ने, भक्ति ग्रन्थों को गौड़देश भेजने की समुचित व्यवस्था करने का दायित्व ग्रहण कर लिया। दस दिन के भीतर ही मथुरा से दो गौशकट, ग्रन्थ रखने के लिए आवश्यक, काष्ठ से निर्मित संदूकों और दस सशस्त्र प्रहरियों के साथ, वृन्दावन में श्रील जीव गोस्वामी पाद के पास आकर उपस्थित हो गये।

श्रील जीव गोस्वामी जी स्वयं, उन काष्ठ निर्मित संदूकों में, गोस्वामियों द्वारा रचित भक्तिरसामृतसिंधु, उज्ज्वल नीलमणि, हरिभक्ति विलास, सत्क्रिया सार दीपिका, भागवतामृत, सनातनगीता, षट्संदर्भ, स्तवाबली, हरिनामामृत व्याकरण, चैतन्य भागवत आदि ग्रन्थों की हस्तलिखित पाण्डुलिपियों को, क्रमशः सज्जित करके रखने लगे। सभी ग्रन्थों को श्रेणीबद्ध रूप से सज्जित करने के उपरान्त, भली भान्ति मोम युक्त कागज से भी आवृत कर दिया।

''श्रीरूपेर ग्रन्थ जत निज ग्रंथ आर।
थरे थरे साजाइल भितरे ताहार।।

—प्रेम विलास (१३)

(अर्थात श्रील रूप गोस्वामी तथा अपने द्वारा रचित सभी ग्रन्थों को श्रेणीबद्ध रूप से सज्जित करके संदूकों में रखा।)

ईसवी सन १५८१ के दिसम्बर मास की अग्रहायण शुक्ल पंचमी तिथि को, श्री गोविन्ददेव जी के मंदिर के प्रांगण में ब्रजवासी वैष्णव गण, ब्रजवासी तथा समस्त गोस्वामी इकट्ठे हुए। वे सभी अश्रुपूर्ण नेत्रों से, अपने प्राणों से भी प्रिय, श्री श्रीनिवास, श्री नरोत्तम तथा श्री श्यामानन्द को विदाई देने लगे। श्रील जीव गोस्वामी, श्री गोविन्ददेव जी के चरणारविंद में, इन तीनों युवकों को, भक्ति ग्रन्थों तथा नाम–प्रेम प्रचार के लिए शक्ति प्रदान करने के लिए, प्रार्थना करने लगे। अकस्मात श्री गोविन्द जी के कण्ठ से

एक पुष्पमाला टूटकर गिर पड़ी। पुजारी ने इस आज्ञामाला को लाकर, श्रील जीव गोस्वामी को दे दिया, जिन्होंने उसे, श्री श्रीनिवास, श्रीनरोत्तम तथा श्री श्यामानन्द प्रभु के गले में पहना दिया। श्री गोविन्द जी के गले से माला के टूटकर गिरने को, उपस्थित वैष्णवों ने कार्यसिद्धि का संकेत जानकर, श्री गोविन्द जी की जयध्वनि से, धरती–आकाश को कम्पायमान कर दिया। श्रील जीव गोस्वामी ने इस अवसर पर कहा, ''वत्स श्रीनिवास! अभी जिन ग्रन्थों को आपके साथ नहीं भेजा जा रहा, उनको बाद में संशोधित करके, भविष्य में नये रचे जाने वाले ग्रन्थों के साथ, तुम्हारे पास भेज दूंगा।''

गोस्वामियों और महन्तों द्वारा ''जय श्री राधेश्याम'' कहकर शकटों को छोड़ने का आदेश मिलने पर, शकट अपनी लम्बी यात्रा पर चल पड़े। शकटों के प्रहरी, विभक्त होकर उनके आगे और पीछे चलने लगे। अन्य गोस्वामी गण, महन्त तथा वैष्णवगण, शकटों का काफी दूर तक अनुगमन करके, भाराक्रान्त हृदय से वापिस लौट आये, किन्तु श्रील जीव गोस्वामी, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी तथा श्रील राघव पण्डित आदि ने मथुरा तक उनका अनुगमन किया। मथुरा में पहुंचकर, श्रील जीव गोस्वामी जी ने, श्री श्यामानन्द प्रभु को, श्री नरोत्तम ठाकुर के हाथ सौंपकर, अश्रुपूर्ण नयनों से कहा, "नरोत्तम! यह श्यामानन्द मुझे बहुत प्रिय है। तुम इसको, इसके अपने देश में भेजने की निरापद सुव्यवस्था कर देना।" फिर श्रील जीव गोस्वामी ने, श्री श्यामानन्द से कहा, "वत्स श्यामानन्द ! इस नरोत्तम के प्रति तुम मेरे जैसी भक्ति करना। भय तथा संकोचवश जो गोपन विषय तथा तत्त्व मुझसे पूछकर नहीं जान सके, वे सब विषय निःसंकोच होकर, नरोत्तम से जान लेना।" इसके पश्चात, श्रीश्यामानन्द व श्रीनरोत्तम दोनों को श्री श्रीनिवासाचार्य के हाथों में समर्पित करते हुए, श्रील जीव गोस्वामी ने कहा,'' वत्स श्रीनिवास! श्यामानन्द व नरोत्तम के सारे दायित्व, मैं तुमको अर्पण कर रहा हूं। तुम अत्यन्त स्नेहपूर्वक, इनका लालन पालन करना।'' फिर वे श्री श्यामानन्द के सिर पर हाथ फेरते हुए कहने लगे, ''वत्स श्यामानन्द ! स्वदेश लौटकर तुम श्री कृष्णसेवा तथा वैष्णव सेवा में रत हो जाओ। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित विशुद्ध वैष्णव धर्म का प्रचार करके, उत्कल के घर–घर में नाम–प्रेम का प्रचार करो। श्रीगौर नित्यानन्द की

कृपा से तुम्हारा लक्ष्य अवश्य पूर्ण होगा।" श्री श्यामानन्द जी, श्रील जीव गोस्वामी जी के ऐसे वचनों को सुनकर, अत्यन्त लज्जित हुए। तदनन्तर वे भावविह्वल होकर, श्रील जीव गोस्वामी से होने वाले विच्छेद के कारण कातर होकर, उनके चरणारविन्द को पकड़कर, व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगे।

श्रील जीव गोस्वामी ने फिर श्री श्रीनिवास, श्री नरोत्तम व श्री श्यामानन्द से कहा, "वत्सगण! तुम लोगों के आचार, व्यवहार एवम् श्री कृष्णभक्ति आदि गुणों के कारण, मैं तुम लोगों के हाथ सम्पूर्णरूपेण बिक गया हूं। मैं तुम तीनों को एक निमेष के लिए भी नहीं भूल सकता।" यह कहते कहते श्रील जीव गोस्वामी, इन तीन प्रियतम शिष्यों की आसन्न विरह विधुरता को स्मरण कर के, भावविह्वल होकर, शिशु की भान्ति सिसक–सिसक कर रोने लगे। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रील राघव पण्डित आदि वैष्णव भी अश्रुपात करने लगे। श्रीश्रीनिवास, श्री नरोत्तम और श्रीश्यामानन्द ने, इन विषादग्रस्त गोस्वामियों को साष्टांग दण्डवत प्रणाम करके, भाराक्रान्त हृदय से धीरे–धीरे बंगदेश के लिए प्रस्थान किया। दोनों शकट, इन तीनों को लेकर जब दृष्टि सीमा से दूर चले गए तो श्रील जीव गोस्वामी आदि ने विषादपूर्ण चित्त से वृंदावन में प्रत्यावर्त्तन किया।

उन दिनों भारत में, स्थान–स्थान पर, हिन्दुओं और मुसलमानों में भीषण युद्ध चल रहे थे। राजनीतिक उठा पटक के कारण, सामाजिक माहौल भी अशान्त था।

श्रील जीव गोस्वामी जी के धनी महाजन मथुरा निवासी शिष्य ने, रास्ते के व्यय के लिए आवश्यक धन संग्रह करके, एक राजकीय आज्ञा पत्र के साथ श्री श्रीनिवासाचार्य के पास दिया था। उस आज्ञा पत्र का प्रदर्शन करते हुए, वे लोग निश्चिन्त होकर सशस्त्र प्रहरियों के संरक्षण में दोनों शकटों के साथ आगे बढ़ने लगे। उस राजकीय छाड़ (आज्ञा) पत्र को देखकर, राजपुरुषों ने रास्ते में किसी प्रकार का विघ्न नहीं डाला। इटावा नगर से उन लोगों ने राजपथ का परित्याग कर दिया। अब वे श्रीमन्महाप्रभु द्वारा अपनाए गए झारिखण्ड वाले संक्षिप्त वनपथ पर आगे बढ़ने लगे। उस वनपथ की अपूर्व शोभा का दर्शन करते हुए, श्रीकृष्ण कथा रस में सराबोर, वे लोग पंचकोट पहुंच गए। यहां से उन लोगों ने झारिखण्ड का पथ भी

त्याग दिया। अब वे गौड़ अभिमुख होकर चलने लगे।

श्रीनिबास, नरोत्तम, श्यामानन्द तिने।
श्री गौड़ मण्डल प्राप्त हैला,कथो दिने।।

—श्रीश्री नरोत्तम विलास (३)

(अर्थात श्री श्रीनिवास, श्री नरोत्तम एवम् श्री श्यामानन्द, कुछ दिन में गौड़ मण्डल को प्राप्त हुए।)

पंचकोट से चलते चलते, वे सब लोग वनविष्णुपुर राज्य की सीमा पर पहुंच गए। उस समय मल्लवंशीय वीर हम्वीर, वनविष्णुपुर के राजा थे। ये प्रतापी राजा ही, मानसिंह के पुत्र महाराजा जगतसिंह को, पठानों से मुक्त करा कर लाये थे। राजा वीर हम्वीर, वनविष्णुपुर के अड़तालीसवें राजा थे। उनके अधीन बहुत से दुर्दान्त दस्युओं के दल भी निश्चिन्त हो कर अवस्थान करते थे। इन दस्युओं द्वारा वे परद्रव्य लुटवाकर, अपने कोषागार में कोष की वृद्धि करते थे। धन के लोभ में बहुत दुष्ट व्यक्ति भी, राजा वीर हम्वीर के आश्रय में रहते थे। उनमें से कुछ दैवज्ञ, गणना करके राजा को इस बात की सूचना भी देते थे कि कौन व्यक्ति मूल्यवान पदार्थ या धन–सम्पत्ति लेकर, कौन से पथ से गमन कर रहे थे। राजा वीर हम्वीर, उन लोगों की सूचना के अनुसार, अपने अनुगत दुर्दांत डाकुओं द्वारा, उस द्रव्य संभार को लुटवा लेते थे।

दस्युराज वीर हम्वीर के अनुगत दैवज्ञों ने गणना करके राजा से कहा, "महाराज! उत्तर–पश्चिम की ओर से कुछ महाजन बहुमूल्य रत्नों से परिपूर्ण दो शकट लेकर, इस पथ से ही जा रहे हैं। अगर आप उन दोनों शकटों को लुटवा लेवें तो आप एक ही समय में अनायास महाधनी बन सकते हैं। राजा वीर हम्वीर ने दैवज्ञों की सूचना से उत्फुल्लित होकर, उनको बख्शीश देकर विदा कर दिया। फिर अपने अनुगत दस्युओं को, दोनों शकटों को लूट लेने के विषय में प्रेरित करके भेज दिया।

इधर श्री श्रीनिवास, श्री नरोत्तम तथा श्री श्यामानन्द, ग्रन्थों से लदे दोनों शकटों को लेकर, रघुनाथपुर पार करके जब मालीयाड़ी गांव में पहुंचे, उस समय शाम ढल चुकी थी। इसलिये उन लोगों ने, उसी ग्राम में, एक **भौमिक के यहां, रात्रियापन करने के लिए अवस्थान किया।**

मालीयाड़ी बालि ग्रामे भौमिक एक हय।
स्वच्छन्दे रहिला तांहा हइया निर्भय।।

—प्रेम विलास (१३)

(अर्थात मालीयाड़ी बालिग्राम में एक भौमिक के घर में, श्री श्रीनिवास, श्रीनरोत्तम तथा श्रीश्यामानन्द जी, निर्भय होकर ठहर गये)

राजा वीर हम्वीर ने अपने अनुचरों द्वारा यह ज्ञात कर लिया कि दोनों शकटों के साथ दस प्रहरियों समेत, केवल पन्द्रह्न व्यक्ति ही गमन कर रहे थे। उसने अत्यन्त आनंदित होकर, अपने उन अनुचरों से कहा, "तुम दो सौ डकैत वहां जाओ। क्योंकि वे केवल पन्द्रह ही व्यक्ति हैं, इसलिए किसी की भी हत्या न करते हुए, धन—रत्नों से परिपूर्ण, उन दोनों शकटों को लूटकर ले आओ। दूसरे दिन सवेरे, श्री श्रीनिवास आचार्य आदि ने आगे की यात्रा शुरू की। उनके श्रीगोपालपुर गांव के निकट पहुंचते ही, संध्या उतर आई। वहां उन्हें ठहरने के लिये कोई आश्रय न मिला। तब सभी ने एक बड़े वृक्ष के नीचे, रात्रि के गहन होने तक का समय, श्रीकृष्ण कथा रस में व्यतीत किया। फिर वे लोग वहीं सो गये। ऐसे समय में, राजा वीर हम्वीर के अनुगत सशस्त्र दस्युओं ने, "मारो—मारो, काटो—काटो" ऐसा भय उत्पादक, कोलाहल करते हुए, श्री श्रीनिवास आदि पर आक्रमण कर दिया। दस्युओं की संख्या क्योंकि उन लोगों से बहुत अधिक थी, इसलिये बिना किसी प्रतिरोध के ही, दस्यु उन दोनों शकटों को सुगमता से खींचकर ले गये। उन सशस्त्र, भीषण आकृति वाले दस्युओं को देखकर, श्री श्रीनिवास आदि स्तम्भित रह गए। उन लोगों के मुख से शब्द निःसरण तक बंद हो गया। दस्युओं ने शकटों को ले जाकर, राजा वीर हम्वीर के कोष में जमा करवा दिया।

प्रातःकाल राजा ने देखा कि लूटे हुए दोनों शकट पश्चिम देश के ही थे। उन्होंने अनुमान लगाया कि दैवज्ञों की गणना, कि दोनों शकट बहुमूल्यवान सम्पत्ति से परिपूर्ण थे, यथार्थ एवम् निश्चित ही थी। राजा ने प्रसन्न होकर संदूकों को खोलने का आदेश दिया। राजा के अनुचरों ने इस आदेश के अनुसार बल प्रयोग करके, उन संदूकों को मुहूर्त काल में ही खोल दिया। संदूकों के खुलते ही राजा के विस्मय का ठिकाना न रहा।

सारे संदूक राशि–राशि, हस्तलिखित ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों से परिपूर्ण थे। उपस्थित दस्यु और राज अनुचर भी स्तम्भित रह गए, किन्तु उन ग्रन्थों से परिपूर्ण संदूकों के दर्शन करते ही, अकस्मात राजा वीर हम्वीर के हृदय में एक अनाकांक्षित परिवर्तन हो गया।

सम्पुटेर मध्ये देखि ग्रन्थ रत्नगण।
राजा महाखेदे कहे करिया क्रन्दन।।
हाय हाय कि हैल दुर्दैब आमार।
कोन महाशये दुःख दिनु मुइ छार।।

–श्री नरोत्तम विलास (३)

(अर्थात संदूकों में ग्रन्थों के दर्शन करके, राजा अत्यन्त दुखी होकर क्रन्दन करने लगे तथा कहने लगे कि हाय हाय मेरा कैसा दुर्भाग्य हुंआ कि मुझ नीच ने कौन से महाशय को दुःख दे दिया।)

भक्ति ग्रन्थों की कृपा से आकस्मिक हृदय परिवर्तन होने पर राजा वीर हम्वीर ने उत्कण्ठित होकर दस्युओं से पूछा, "तुम लोग सत्य बोलो। शकटों को लूटते समय तुमने कहीं किसी की हत्या तो नहीं कर दी।"

दस्युओं ने, त्रस्त होकर उत्तर दिया, "नहीं महाराज! वे लोग केवल पन्द्रह थे और हमारी संख्या थी दो सौ। इसके अतिरिक्त, हम केवल उस समय शकटों को लूटकर लाये, जिस समय वे लोग वृक्ष के नीचे निद्रा में लीन हो चुके थे।" दस्युओं के वचनों से किंचित आश्वस्त होकर राजा उन संदूक युक्त शकटों की यत्नपूर्वक, राजकोष में रक्षा करने लगे। उन्होंने अपहृत ग्रन्थों के वास्तविक अधिकारी का पता लगाने के लिए भी अपने कुछ अनुचरों को नियुक्त कर दिया। राजा मन ही मन सोचने लगा–

जदि मोर भाग्ये हय तांहार दर्शन।
तबे ए ग्रन्थरत्न दिया लइमु शरण।।

–श्री नरोत्तम विलास (३)

(अर्थात यदि मेरे सौभाग्य से उनके दर्शन हो जायें, तो मैं इन ग्रन्थरत्नों को प्रत्यार्पण करके, उनकी शरण ले लूंगा।)

श्री श्रीनिवास, श्रीनरोत्तम तथा श्री श्यामानन्द ने, ग्रन्थों के लुट जाने के कारण, बहुत ही कष्ट के साथ वह निद्राविहीन रात्रि न जाने किस

प्रकार व्यतीत की। उन लोगों की आंखों के आगे घोर अंधकार सा छा गया। वे सोचने लगे कि "यह परम कष्टदायक दुःसंवाद, जब ब्रजमण्डल के गोस्वामियों को मिलेगा, तो उन्हें कितनी मार्मिक मानसिक पीड़ा होगी। हम लोगों ने क्या अपराध किया था कि जिससे ग्रन्थ हम लोगों को जीवित छोड़कर चले गए?" सारी रात उन्होंने इस प्रकार करुण स्वर में विलाप करते हुए व्यतीत की। निदारुण मानसिक कष्ट से उनकी करुण अभिव्यक्ति को सुनकर, पाषाण हृदय भी विदीर्ण हो जाते। प्रातःकाल में उनके करुण क्रन्दन को सुनकर, स्थानीय ग्रामवासी उन लोगों के पास आए। सारी घटना का विवरण प्राप्त हो जाने पर, उन लोगों (ग्रामवासियों) ने अनुमान लगा लिया कि यह कार्य अवश्य राजा वीर हम्वीर ने ही किया होगा, किन्तु उस महादुष्ट राजा के भय से, राज्य के निवासी, इन विदेशियों के सम्मुख, यह सब प्रकट करने का साहस न कर सके। श्रीश्रीनिवास, श्री नरोत्तम तथा श्री श्यामानन्द ने एक पत्र लिख कर, शकटों के वाहकों को दिया और प्रहरियों तथा वाहकों को श्रील जीव गोस्वामी को, घटना का समाचार देने के लिए, ब्रजमण्डल को लौट जाने का आदेश प्रदान किया।

तदुपरान्त श्री श्रीनिवास, श्री नरोत्तम तथा श्रीश्यामानन्द ने लुटे हुए ग्रन्थों को खोजने के लिए यथासाध्य प्रयास किया, किन्तु अनथक प्रयास के बाबजूद, उनको कोई सुराग न मिल सका। हताश हो कर जब वे आत्महत्या का संकल्प लेकर, विषाद के सागर में डूबनें उतर रहे थे, उस समय श्रीश्रीनिवास ने यह आकाशवाणी सुनी "हे श्रीनिवास! चिन्ता मत करो। शीघ्र ही सारे अपहृत ग्रन्थ पुनः प्राप्त हो जायेंगे।"

"हेन काले दैबबाणी हइल आकाशे।
चिन्ता नाइ ग्रन्थ प्राप्ति हइबे अनायासे।।"

—श्री नरोत्तम विलास (१३)

(अर्थात ऐसे समय आकाश में यह दैववाणी हुई कि चिन्ता मत करो, अनायास ही ग्रन्थों की प्राप्ति हो जायेगी।)

उपरोक्त आकाशवाणी सुनते ही मानों श्री श्रीनिवास के मृतशरीर में प्राणों का संचार हो गया। उन्होंने तुरन्त आकाशवाणी के विषय में श्री नरोत्तम तथा श्री श्यामानन्द को सूचित कर दिया। अब वे तीनों आकाशवाणी

के संदर्भ में विचार करने लगे कि ग्रन्थों की चोरी निश्चित रूप से श्री गौरसुन्दर की इच्छानुसार ही हुई थी तथा निर्दिष्ट समय पर ही इस गूढ़ रहस्य का पटाक्षेप होगा।

जब ग्रन्थों की चोरी की सूचना श्रीधाम वृन्दावन में पहुँची तो श्रील जीव गोस्वामी, श्रील लोकनाथ गोस्वामी, श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी आदि शोक से विह्वल होकर शिशुओं की भान्ति रुदन करने लगे। सारे ब्रजमण्डल में इस दुःसमाचार के फैलते ही वैष्णव जगत में हाहाकार मच गया।

राधाकुण्ड में, श्रील रघुनाथदास गोस्वामी तथा श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी, ग्रन्थों के अपहरण की सूचना पाकर बहुत ही व्याकुल हो गये तथा रो रोकर भूमि पर लोटने लगे। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी तो शोक से हतप्रभ होकर, क्रन्दन करते हुए श्री राधाकुण्ड के जल में ही कूद पड़े। सभी वैष्णवों ने मिलकर किसी प्रकार उनको जल से बाहर निकाला। वे उन्हें उठाकर श्री रघुनाथदास गोस्वामी के पास लाए, जिन्होंने कंकाल मात्र जराजीर्ण शरीर से उनको अपनी गोदी में ले लिया तथा नाना प्रकार से उनको सान्त्वना प्रदान की।

उधर आकाशवाणी से आश्वस्त सर्व श्री श्रीनिवास, नरोत्तम व श्यामानन्द जी, बारंबार ग्रन्थों की खोज कर रहे थे, पर उनको अनथक प्रयासों के बावजूद कोई भी सफलता नहीं मिल रही थी। इस पर श्री श्रीनिवासाचार्य, श्री नरोत्तम व श्री श्यामानन्द जी से कहने लगे, "मैं यहां पर रहकर ग्रन्थों का सुराग लगाने की कोशिश कर रहा हूँ। तुम दोनों यहाँ से खेतरी चले जाओ।" किन्तु वे दोनों श्री श्रीनिवास को अकेला छोड़कर जाने के लिए उद्यत नहीं हुए। इस पर श्री श्रीनिवासाचार्य ने उन दोनों को समझाते हुए फिर कहा, "देखो! श्रील जीव गोस्वामी ने ग्रन्थों के प्रचार का दायित्व मुझे सौंपा था और नाम प्रचार का दायित्व तुम दोनों को। इसलिए तुम दोनों अपने अपने देश में जाकर नाम प्रेम प्रचार का कार्य आरम्भ कर दो। मैं ग्रन्थों की खोज तथा पुनः प्राप्ति के लिए यहीं रहूंगा। ग्रन्थों के उद्धार की प्रगति के विषय में, मैं तुम दोनों को पत्रों के माध्यम से सूचित करता रहूंगा। आवश्यकता होने पर अपने कार्य के लिए मैं विष्णुपर के राजा की सहायता भी प्राप्त कर लूंगा।"

अगली सुबह, श्री नरोत्तम तथा श्री श्यामानन्द ने श्रीश्रीनिवासाचार्य के आदेश के अनुसार, दुःखी चित्त से खेतरी के लिए प्रस्थान किया। ऐसा लगने लगा मानों एक ही वृन्त पर प्रस्फुटित तीन कुसुमों में से एक को, किसी ने बरबस पृथक कर दिया हो। वैसे तो श्री नरोत्तम तथा श्रीश्यामानन्द जी से विच्छेद के समय, श्री श्रीनिवासाचार्यजी भी व्याकुल हो गये किन्तु अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत होने के कारण, उन्होंने भावप्रवणता को प्रश्रय न देते हुए, श्रीमन्महाप्रभु की अभिलाषा पूर्ण करने को ही अधिक महत्त्व प्रदान किया।

श्री नरोत्तम ठाकुर, श्री श्यामानन्द के साथ ज्योंही खेतरी में पहुंचे, राजा श्री कृष्णानन्द, राजमाता ठाकुरानी तथा राज्य के सभी वासी, आनन्द सागर में डूब गए। सारे राज्य में आनन्द की लहरें प्रवाहित हो उठीं।

श्रील जीव गोस्वामी के आदेशानुसार, श्री श्यामानन्द जी, खेतरी में रहकर, श्री नरोत्तम ठाकुर से, भक्ति तत्त्वों के गूढ़तम सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए, अपने ज्ञान की परिधि की वृद्धि करने लगे।

❖

नवम् अध्याय

अपहृत ग्रन्थों का उद्धार एवं राजा वीर हम्वीर के प्रति श्री श्रीनिवासाचार्य की कृपा

श्री श्रीनिवासाचार्य, ग्रन्थों को ढूंढते हुए विष्णुपुर में पहुंच गये। वहां श्री कृष्णवल्लभ नामक ब्राह्मण के साथ परिचय होने पर, वे ब्राह्मण, आचार्य जी को देऊटी ग्राम में स्थित अपने घर ले गये। श्री कृष्णवल्लभ प्रतिदिन विष्णुपुर की राजसभा में जाते थे। श्री श्रीनिवासाचार्य भी उन के साथ राजसभा में जाने लगे। राजसभा में नित्य श्रीमद्भागवत का पाठ होता था। सभा पण्डित, अत्यन्त भाव गम्भीर रूप से श्रीमद्भागवत की व्याख्या करते थे। एक दिन वे स्मार्त पण्डित, श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के अन्तर्गत रासलीला की ऐसी विकृत व्याख्या करने लगे, जिसे श्रवण करके श्री श्रीनिवासाचार्य अत्यन्त दुःख का अनुभव करने लगे। श्रीमद्भागवत के प्रकृत तात्पर्य का, उस पण्डित द्वारा की जा रही व्याख्या से, विपर्यय हो रहा था। ऐसे समय में, राजा वीर हम्वीर ने लक्ष्य किया कि एक दिव्य, सुन्दर, प्रशान्तमूर्ति, विनम्र प्रकृति का नवयुवक, राजसभा में नया ही आया था। इस नवागत युवक के हाव–भाव से ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे वह उस स्मार्त पण्डित की व्याख्या से संन्तुष्ट नहीं था। श्री श्रीनिवासाचार्य के असन्तुष्ट तेजस्वी स्वरूप से प्रभावित होकर राजा वीर हम्वीर ने कहा,"हे महात्मन ! यदि राजसभा–पण्डित द्वारा की जा रही व्याख्या आपके मन के अनुरूप नहीं है, तो कृपया आप स्वयं श्रीमद्भागवत की युक्तिसंगत व्याख्या करके, हमें कृतार्थ करें।" राजा के अनुरोध पर, आचार्य जी ने उसी रासलीला वाले प्रसंग की ऐसी मधुर व हृदयग्राही व्याख्या आरम्भ की, जिस से राजा के साथ–साथ, सभी सभासद एवं स्वयं राजपण्डित तक, चमत्कृत होकर, श्री श्रीनिवासाचार्य के गुणों पर मुग्ध हो उठे। राजाने अत्यन्त आदरपूर्वक आचार्य जी के रहने के लिए, नगर में ही उपयुक्त स्थान प्रदान किया तथा

नित्य राजसभा में आने के लिए विशेषरूप से अनुरोध किया। श्री श्रीनिवासाचार्य के अगाध व अपूर्व पाण्डित्य, प्रतिभा, उद्दीप्त मुखावयव, अमायिक विनम्रतापूर्ण व्यवहार से आकर्षित होकर, सभा पण्डितने उन से दीक्षा ग्रहण की। श्री श्रीनिवासाचार्य ने उसका नामकरण किया व्यासाचार्य।

गुणमुग्ध राजा को जब ज्ञात हुआ कि स्मार्त सभा– पण्डित तक ने, श्री श्रीनिवासाचार्य के चरणों का आश्रय लिया था, तो ईसवी सन् १५८४ के आषाढ़ मास की कृष्ण पक्ष की तीज वाले दिन, उन्होंने भी श्री श्रीनिवासाचार्य से हरिनाम दीक्षा ग्रहण की। श्री श्रीनिवासार्य ने राजा का नया नामकरण किया श्री हरिचंदन दास। राजा नित्य केवल एक भृत्य को लेकर, साधारण भेष में, श्री आचार्य जी के निवास स्थान पर जाकर उनसे तत्त्वोपदेश ग्रहण करने लगे।

एक दिन राजाने अकस्मात श्री श्रीनिवासाचार्य से पूछा, "हे गुरुदेव! आप अचानक विष्णुपुर में कैसे आ पहुंचे? आप कृपापूर्वक मुझे बतलाइये, क्योंकि मुझे इस विषय में बहुत जिज्ञासा है।" राजा के प्रश्न के उत्तर में, श्रीआचार्य पाद ने, श्रीधाम वृन्दावन से, गोस्वामियों द्वारा रचित ग्रन्थों के साथ अपने प्रस्थान से लेकर, राज्य की सीमा पर, उन ग्रन्थों के अपहरण तक की सारी घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण राजा को प्रदान किया। राजा वीर हम्वीर ने नामालूम कैसे पहले ही अनुमान लगा लिया था कि लूटे गए ग्रन्थ, श्री श्रीनिवासाचार्य जी के ही थे। अब श्री आचार्य के श्रीमुख से सारी घटना का विवरण प्राप्त होने पर, उनके (राजा के) पश्चाताप की सीमा न रही। वे श्री आचार्य पाद के चरण पकड़कर, बारम्बार अपने द्वारा किये हुए अपराध के लिए क्षमा प्रार्थना करने लगे। उन्होंने आचार्यपाद को साथ ले जाकर, राजकोष में सुरक्षित रखे हुए ग्रन्थों का उन्हें दर्शन करवाया। सब ग्रन्थों का दर्शन करके, श्री आचार्यपाद की आँखों से, अविराम धारा के रूप में, अश्रु प्रवाहित हो उठे। जिस प्रकार दरिद्र को कोटि निधि मिलने पर परमानन्द प्राप्त होता है, वैसी ही स्थिति थी श्रीश्रीनिवासाचार्य की। वे उन ग्रन्थों को बार–बार प्रणाम करने लगे।

अब श्री श्रीनिवासाचार्य ने ग्रन्थों के अपहरण के पश्चात् हुई आकाशवाणी के असली तात्पर्य को हृदयंगम किया। उन्हें निश्चय हो गया

कि दस्यु सरदार राजा वीर हम्वीर पर कृपा के निमित्त ही, श्रीमन्महाप्रभु ने, ग्रन्थों की चोरी की घटना का सूत्रपात किया था। परवर्त्ती काल में, इस दस्यु दलपति राजा वीर हम्वीर ने परम गौरभक्त के रूप में ख्याति अर्जित की। राजाने अपने राज्य में एक नया नियम लागू किया, जिसके अनुसार उनके राज्य में निवास करने वाले हर व्यक्ति के लिए प्रतिदिन माला का कम से कम एक फेरा अर्थात् एक सौ आठ बार श्री हरिनाम मंत्र का जप आवश्यक बना दिया गया। ऐसा न करने वाला व्यक्ति दण्ड का भागी होता था। इस नियम से अनुमान लगाया जा सकता है कि राजा वीर हम्वीर, श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से श्रीहरिनाम के पर्याय में कितने उन्नत हो गये थे।

श्री श्रीनिवासाचार्य ने ग्रन्थों के पुनरोद्धार व पुनः प्राप्ति तथा राजा वीर हम्वीर में आए अभूतपूर्व परिवर्तन के विषय में श्रीधाम वृन्दावनस्थ गोस्वामियों को पत्र के द्वारा सूचित किया। राजा वीर हम्वीर ने दोनों अपहृत शकटों को बहुमूल्य उपहारों से पूर्ण करके श्री श्रीनिवासाचार्य जी के पत्र के साथ, वृन्दावनधाम में श्रील जीव गोस्वामी के पास भेज दिया।

ग्रन्थों के पुनरोद्धार का समाचार वृन्दावन में पहुंचते ही, सारे ब्रजमण्डल में आनन्द की लहर दौड़ गई। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों मृत शरीरों में पुनः प्राणों का संचार हो गया हो। ग्रन्थों के पुनरोद्धार का समाचार प्राप्त होने पर श्रील रघुनाथदास गोस्वामी ने, आनन्ददात्री शय्या पर प्रकटलीला का संवरण कर लिया। राजा वीर हम्बीर ने ग्रन्थोद्धार के विषय में श्री श्रीनिवासाचार्य का एक पत्र खेतरी में श्री नरोत्तम ठाकुर तथा श्री श्यामानन्द प्रभु के पास भी भिजवाया। ग्रन्थों के पुनरोद्धार के विषय में सूचना पाकर, इन दोनों के आनन्द की सीमा न रही। श्री नरोत्तम के चाचा, राजा श्री संतोषदत्त ने प्रसन्न होकर, बहुत सा धन व्यय करके, आनन्द समारोह आयोजित किया।

ग्रन्थोद्धार का समाचार प्राप्त होने के कुछ दिन के बाद, श्री नरोत्तम ठाकुर, श्रील जीव गोस्वामी के आदेश को स्मरण करके, श्री श्यामानन्द प्रभु को उत्कल भेजने का उद्योग करने लगे। अभिन्नप्राण श्री नरोत्तम व श्री श्यामानन्द जी, एक दूसरे के साथ होने वाले विच्छेद के कारण कातर हो गये।

श्री नरोत्तम ने अश्रुपूर्ण लोचनों सहित, श्री श्यामानन्द से कहा, "श्यामानन्द! अब तुम अपने देश को जाओ। मैं बहुत शीघ्र श्री जगन्नाथदेव जी के दर्शनों के लिए नीलाचल जाऊँगा। उस समय मेरा तुम्हारे साथ पुनः साक्षात्कार होगा।"

श्री नरोत्तम ने बहुत सारा धन और कुछ आदमियों को साथ देकर, श्री श्यामानन्द जी के उत्कल जाने की बहुत सुन्दर व्यवस्था कर दी। श्री श्यामानन्द जी अश्रुपूर्ण नेत्रों सहित वहां से विदा हुए। श्री नरोत्तम तथा राजा संतोषदत्त, दोनों पद्मा नदी तक उन के साथ गए। श्री श्यामानन्द जी नौका पर आरूढ़ हो कर "जय श्री श्री राधा श्यामसुन्दर" की ध्वनि करके, अपने सफर पर रवाना हो गये। जब तक नौका दृष्टि सीमा से बाहर नहीं हुई, तब तक दोनों सुहृद एक दूसरे को एकटक निहारते रहे। नौका के दृष्टि से ओझल हो जाने पर, श्रीनरोत्तम ठाकुर अपने प्रियतम सुहृद से विछोह से कातर होकर, दीर्घ निःश्वास त्याग करते हुए राजा श्री सन्तोषदत्त के साथ, प्रासाद में लौट आये।

श्री श्यामानन्द जी काटोआ पहुंचने पर, श्री गौरसुन्दर की केशमुण्डन तथा सन्यासग्रहण आदि लीलाओं को स्मरण करके बहुत ही दुःखी हुए। फिर श्री गौरसुन्दर के श्रीविग्रह के दर्शन करके, उन्होंने काटोआ से नवद्वीप के लिए प्रस्थान किया। श्री गौरसुन्दर की लीलाभूमि, श्री नवद्वीप धाम को बारम्बार प्रणाम करके, वे शांतिपुर चले गए। वहां श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रकट कराने वाले श्री अद्वैताचार्य प्रभु की, उनतीस वर्ष तक गंगाजल तुलसी से साधन पूर्वक, गोलोक बिहारी श्री श्यामसुन्दर को, नदिया बिहारी श्री गौरसुन्दर के रूप में प्रकट कराने वाली लीला का स्मरण करके, श्री श्यामानन्द जी, प्रेमविह्वल चित्त से उस पावन भूमि पर लोटने लग पड़े। शान्तिपुर से वे श्रीपाट अम्बिका में जा पहुंचे। वहां पर उन्होंने अपने परम पूज्य गुरुदेव, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के श्रीचरणों में प्रणाम किया। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, इतने दिनों के बाद अपने प्रिय शिष्य को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वयं श्री श्यामानन्द प्रभु को, श्री गौर–नित्यानन्द के श्रीविग्रहों के दर्शन करवाये एवम् श्री गौर–नित्यानन्द प्रभु की प्रसादी माला लाकर उनके गले में डाल दी। गुरुदेव ने श्री गौर–नित्यानन्द जी का

दिव्य प्रसाद ग्रहण करके, भुक्तावशेष प्रसाद, श्री श्यामानन्द प्रभु को प्रदान किया।

बहुत दिनों के पश्चात श्री गुरुदेव की सेवा का अवसर पाकर, श्री श्यामानन्द प्रभु, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु की सेवा में जुट गए। श्री श्यामानन्द जी ने गोस्वामियों के सिद्धान्त ग्रन्थों के साथ श्री श्रीनिवासाचार्य, श्री नरोत्तम ठाकुर तथा स्वयं अपने ब्रजमण्डल से गौड़ देश में आगमन का विवरण, बनविष्णुपुर में ग्रन्थों की चोरी, श्री श्रीनिवास द्वारा ग्रन्थों का पुनरोद्धार, श्री नरोत्तम ठाकुर की प्रीति आदि के विषय में, एक एक करके श्री गुरुदेव को अवगत कराया। सब जानकारी प्राप्त करके श्री गुरुदेव बहुत ही प्रसन्न हुए।

इस प्रकार श्रीपाट अम्बिका में गुरुसेवा करते हुए, श्री श्यामानन्द जी परमानन्द में लीन, जब कुछ दिन व्यतीत कर चुके तो एकदिन श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने उन से कहा, " श्यामानन्द ! तुम्हारे ऊपर उत्कल में भक्ति धर्म के प्रचार का जो गुरुदायित्व, श्रीमन्महाप्रभु की अपार कृपा से डाला गया है, उसका सम्पादन करने के लिए तुम अब तत्पर हो जाओ। इसके लिए और बिलम्ब करना उचित नहीं। इसलिए तुम शीघ्र उत्कल के लिए प्रस्थान करो।"

श्री गुरुदेव का आदेश पाकर, श्री श्यामानन्द जी उत्कल जाने की तैयारी करने लगे। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, श्री श्यामानन्द प्रभु को, श्री गौर नित्यानन्द के श्रीविग्रहों के समक्ष ले गए। वहां उन्होंने जीवोद्धार के निमित्त, श्री श्यामानन्द को पूर्ण शक्ति प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने श्रीविग्रहों की प्रसादी माला लाकर, श्री श्यामानन्द जी को पहना दी। श्री श्यामानन्द, श्री गौर–नित्यानन्द के श्रीविग्रह द्वय तथा श्री गुरुदेव के चरणारविंद में प्रणाम करके, अत्यन्त कातर होकर अश्रुपर्ण नेत्रों सहित वहां से विदा हुए।

श्रीपाट अम्बिका से श्री श्यामानन्द जी अपनी जन्म भूमि धारेन्दा में पहुंचे। उस समय तक, उनके पिता श्रीकृष्ण देव जी तथा माता दूरिका देवीजी, दोनों अप्रकट हो चुके थे। उनकी पत्नि, श्रीमती गौरांगदासी तथा कनिष्ठ भ्राता, श्रीबलराम, इतने वर्षों के उपरान्त, श्री श्यामानन्द जी के

पुनरागमन से, आनन्द के सागर में निमज्जित हो गए।

श्री श्यामानन्द ने अपने धारेन्दा में पहुंचने की सूचना, पत्रों के माध्यम से श्री श्रीनिवासाचार्य तथा श्री नरोत्तम ठाकुर के पास भेज दी। श्री श्यामानन्द प्रभु का पत्र प्राप्त होने पर, श्री श्रीनिवासाचार्य ने, श्री श्यामानन्द के प्रति श्रीमती राधारानी की अहैतुकी कृपा की कथा का सभी लोगों के सम्मुख वर्णन कर दिया। निधुवन की रासस्थली में श्री श्यामानन्द जी को नूपुर की प्राप्ति, श्रीमती राधा चरणाकृति तिलक, श्री श्यामानन्द नाम तथा श्री श्यामसुन्दर जी के त्रिभंग–भंगिम दिव्य श्रीविग्रह की प्राप्ति का विवरण सुन कर, राजा वीर हम्वीर ने श्री श्यामानन्द प्रभु के उस पत्र को लेकर, अपने मस्तक तथा वक्षःस्थल पर पुनः पुनः स्पर्श कराया। इस के साथ राजा के मन में श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणों के दर्शन करने की तीव्र उत्कण्ठा भी जागृत हो गयी।

दशम अध्याय

श्रीश्यामानन्द प्रभु द्वारा भक्ति धर्म प्रचार तथा तृतीय बार श्री धाम वृन्दावन में आगमन

अपने घर में कुछ दिन रहने के पश्चात् श्री श्यामानन्द प्रभु उत्कल में प्रेम धर्म प्रचार हेतु, धारेन्दा छोड़कर नृसिंहपुर चले गये। साक्षात श्रीमती राधारानी की कृपा से प्रेष्ठ, श्रीश्यामानन्द जी, जहां जहां जाते, वहीं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, धनी, दरिद्र, पतित, अधम, आपामर जन साधारण उनके द्वारा प्रवाहित भक्ति की मंदाकिनी में गहरे पैठ कर के, अपने मनुष्य जन्म को धन्य करने लगे। उनकी भक्ति–व्यंजक मधुर मूर्ति, मृदु–मधुर वाणी तथा भक्ति की सिद्धान्त सम्मत व्यारव्या को सुनकर, हज़ारों उत्कलवासी उन के पादपद्मों का आश्रय ग्रहण करने लगते। मिष्टद्रव्य का पता लगने पर, जैसे सहस्रों पिपीलिकायें, उस द्रव्य का आस्वादन करने के लिये, उपस्थित हो जाती हैं, उसी प्रकार श्री श्यामानन्द प्रभु के हृदय भण्डार में स्थित, अपरिसीम प्रेम भक्ति की थाह पाकर, सहस्रों व्यक्ति उन के पास आ आकर दीक्षा ग्रहण करने लगे। यहां तक कि अधम, पतित, पाखण्डी एवम् निन्दक तक, उनके द्वारा अविराम प्रवाहित प्रेम भक्ति की सरिता में निमज्जित हो गये। नृसिंहपुर उन के प्रेम भक्ति धर्म के प्रचार का मुख्य केन्द्र बन गया। उत्कल के घर घर में, नाम संकीर्तन की मधुर ध्वनि गूंजने लगी। श्री श्यामानन्द प्रभु की कृपा का सान्निध्य प्राप्त करके, उत्कलवासी क्रमशः श्रीश्री गुरु–गौरांग एवम् श्री गोविन्द जी के चरणारविन्द में आत्मसमर्पण करने लगे।

जिस साधक को कभी सुदुर्लभ ब्रजवास का सुअवसर प्राप्त हो चुका हो, जिसे कभी एकबार भी उस अप्राकृत चिन्मय प्रेमराज्य के घनीभूत

रस के आस्वादन का किंचितमात्र भी अवसर प्राप्त हो चुका हो, उसके लिए आनन्दमय श्री ब्रजधाम को छोड़कर, ब्रह्माण्ड के किसी भी अन्य स्थान में वास करना शान्तिप्रद नहीं हो सकता। श्री श्यामानन्द प्रभु ने भी १५ वर्ष तक श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी के इस प्रेमराज्य में अवस्थान किया था तथा श्रीमती राधारानी जी की असीम कृपा से, श्री ब्रजधाम के साथ उन का आत्मिक सम्बंध स्थापित हो गया था। इस आकर्षण से उन्होंने अपने कुलदेवता, श्री श्यामराय तथा अपने कई प्रिय शिष्यों के साथ, ईसवी सन १५६० में फिर वृन्दावन धाम की यात्रा की। श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिस प्रकार झारिखण्ड के मार्ग से वृन्दावन जाते समय, वन के पशुओं, पक्षियों, कीट–पतंगों तथा लता आदि तक के मध्य, बिना भेदभाव के प्रेम वितरण किया था, उसी प्रकार, श्री श्यामानन्द जी भी वनपथ से जाकर, सभी को नाम तथा प्रेम बांटने लगे। इस वनपथ में बहुसंख्या में नदियों, पर्वतों, तथा कन्दराओं आदि का अतिक्रमण करते हुए तथा व्याघ्रों, हाथियों, भालुओं आदि तक पर कृपा करते हुए, वे आगे बढ़ते गए। एकबार तो उनको देखकर दो विशालकाय व्याघ्र, उनके पथ को रोक कर बैठ गये। श्री श्यामानन्द प्रभु ने आगे जाकर उन व्याघ्रों का हृदय से आह्वान किया जिस पर उन व्याघ्रों ने आगे आकर श्री श्यामानन्द प्रभु को प्रणाम किया। तब श्रीश्यामानन्द जी ने, उन दोनों को कहा –

श्री गोस्वामी बले, हरि हरि बल तुमि।
शुनि ब्याघ्र दण्डबत् करे पुनि पुनि।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१३ / ३४)

(अर्थात् श्री श्यामानन्द जी ने जब दोनों व्याघ्रों को "हरि, हरि" बोलने के लिए कहा, तो वे दोनों श्री श्यामानन्दजी को बार बार दण्डवत प्रणाम करने लगें।)

दोनों व्याघ्रों पर कृपा करने के पश्चात, श्री श्यामानन्द प्रभु वनपथ से आगे बढ़ने लगे। उनके मुखारविंद से मधुर मधुर श्री हरिनाम का श्रवण करते हुए, वन के मयूर व कोयल आदि भी उनके पीछे पीछे चलने लगे। वराह तथा हिरण आदि भी उनके मुख से निःसृत श्री हरिनाम को श्रवण करके स्तम्भित होकर, अपलक दृष्टि से उन्हे निहारते हुए अश्रु विसर्जन

करने लगे। इस प्रकार वनपथ के नैसर्गिक परिवेश में भावाविष्ट होकर, श्री श्यामानन्द प्रभु अपने साथियों के साथ चलते चलते श्रीधाम वृन्दावन में आ पहुंचे।

इतने दिनों के पश्चात, अपने प्राणों से भी प्रियतम, श्री श्यामानन्द को पाकर, श्रील जीव गोस्वामी अत्यन्त आनन्दित हुए। ब्रजमण्डलीय वैष्णवगण तथा ब्रजवासी भी, अपने प्रिय, श्रीमती राधारानी जी की कृपा से प्रेष्ठ, श्री श्यामानन्द जी को पुनः अपने मध्य पाकर अत्यन्त आह्लादित हुए।

लगभग आठ वर्ष के अनन्तर, श्रीमती राधारानी जी द्वारा प्रदत्त अपने प्राणधन, श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी के दर्शन करके, श्री श्यामानन्द प्रभु भावविह्वल होकर, आंसू बहाने लगे।

एकबार श्री श्यामानन्द प्रभु, वृन्दावन के निभृत निकुंज में, श्रीश्रीराधा श्यामसुन्दर जी के युगल चरणारविंद के ध्यान में निमग्न थे। ऐसे समय में, श्री श्यामसुन्दर ने साक्षात रूप से ध्यान में आकर श्री श्यामानन्द प्रभु से कहा–

उत्कले लोक सब हइल पापाचार।
उपदेश दिया तारे करह निस्तार।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (४/१३७)

मोर प्रियतम भक्त रसिक मुरारी।
तारे उपदेश कर उत्कल पुरी।।
मोर प्रेम भक्ति दोंहे कर परचार।
उत्कलेर सब जीबे करह उद्धार।।

–श्रीश्री रसिक मंगल (पू/१५/८–६)

(अर्थात् उत्कल के सब लोग पापाचारी हो गए हैं। उन सबको प्रेम भक्ति का उपदेश करके, उनका उद्धार करो। तुम उत्कल में जाकर मेरे प्रियतम भक्त श्री रसिक मुरारी को दीक्षा प्रदान करो, फिर तुम दोनों मिलकर मेरी भक्ति का प्रचार करके, उत्कल के सभी जीवों का उद्धार करो।)

इस वाणी को सुनकर, श्रीश्यामानन्द जी चौंक उठे। उन्होंने श्री श्यामसुन्दर जी को साष्टांग प्रणाम किया। किन्तु प्रणाम करने के उपरान्त

उन्होंने उठकर देखा कि वहां कोई नहीं था। अकस्मात् श्रीकृष्ण के अन्तर्हित हो जाने पर, श्रीकृष्ण से विच्छेद के कारण तथा उनके दर्शनों के लाभ से वंचित होकर, श्री श्यामानन्द प्रभु व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगे,किन्तु बृज धाम में उन्होंने श्रीकृष्ण के उपरोक्त आदेश के विषय में किसी को कुछ नहीं बताया। श्री श्यामानन्द अपने तौर पर सोचने लगे कि पहले अम्बिका में श्रील हृदय चैतन्य प्रभु ने भी उन्हें उत्कल में जाकर जीवोद्धार के कार्य के लिये आदेश दिया था। अब श्री श्यामसुन्दर जी ने भी, अपने प्रिय भक्त श्री रसिक मुरारी को साथ लेकर उत्कल में, श्री हरिनाम का प्रचार करने का आदेश दिया। किन्तु श्रीधाम वृन्दावन को त्याग कर उत्कल जाने की अभिलाषा न होने के कारण, श्री. श्यामानन्द प्रभु वृन्दावन से प्रस्थान में विलम्ब करने लगे। इसके साथ वे मन ही मन यह भी सोच रहे थे कि यदि. उत्कल के लिए प्रस्थान न करूं तो इससे श्रीकृष्ण की आज्ञा का उल्लंघन होगा। उधर श्रीकृष्ण के नित्यप्रिय, प्रियतम श्री रसिक मुरारी को देखने की इच्छा भी बलवती होती जा रही थी। फिर भी नामालूम कैसे वे ब्रजमण्डल को छोड़कर उत्कल गमन करने में विलम्ब किये जा रहे थे। तब एक दिन श्री श्यामसुन्दर जी ने, श्रील जीव गोस्वामी को स्वप्न में दर्शन देकर आदेश दिया:–

शुन शुन ओहे जीब कहि जे तोमारे।
श्यामानन्दे कह तुमि उत्कल जाबारे।।
रसिक मुरारी मोर बड़ प्रियजन।
तारे लइयां उत्कल करिबे दलन।।

–श्रीश्री रसिकमंगल(पू/१५/१६,२०)

(अर्थात् हे जीव! तुम श्यामानन्द को उत्कल में जाने के लिए कहो। मेरे प्रियतम रसिक मुरारी को साथ लेकर श्यामानन्द उत्कल में पाखण्डियों का दलन करे।)

श्री श्यामसुन्दर जी ने श्रील जीव गोस्वामी से यह भी कहा, "मैं श्यामानन्द को पहले तीन बार आदेश दे चुका हूं, किन्तु वह उत्कल को नहीं जा रहा है। वह उत्कल में अवस्थान करके, मेरे ब्रजवासियों की सेवा करे। मेरे ब्रजवासी उत्कल में जाकर, पाप से कलुषित चित्त वाले उत्कलवासियों

के द्वारा बहुत दुःख प्राप्त कर रहे हैं। श्यामानन्द, रसिक मुरारी को, साथ लेकर, दिव्य ज्ञान से उत्कलवासियों का पाप तथा तिमिर अंधकार दूर कर दे।"

श्रीकृष्ण से उपरोक्त आदेश प्राप्त होने पर श्रील जीव गोस्वामी ने सवेरे ही श्री श्यामानन्द को अपने पास बुलाकर यों कहा–

शुन शुन ओहे तूमि पुरुष रतन।
कृष्ण आज्ञा हइल तुमि उत्कल भुबन।।
रसिक मुरारी तथा कृष्ण प्रियजन।
तारे संगी करि कर जीबेर तारण।।

–श्रीश्री रसिक मंगल (पू/१५/२६,२७)

(अर्थात् हे श्यामानन्द ! तुम श्रीकृष्ण के प्रियजन, रसिक मुरारी को साथ लेकर उत्कल में सभी जीवों का उद्धार करो। तुम्हारे लिए श्रीकृष्ण का ऐसा ही आदेश है।)

श्रील जीव गोस्वामी जी के माध्यम से श्रीश्रीश्यामसुन्दर जी का आदेश पुनः प्राप्त होने पर, श्री श्यामानन्द प्रभु अनुभव करने लगे कि उनकी ब्रजवास की अभिलाषा श्रीकृष्ण को मान्य नहीं। इसलिए उत्कल के लिये प्रस्थान करने में और विलम्ब करना उचित नहीं। वे यह भी सोचने लगे–

निश्चय जाइब आमि उत्कल भुबन।
देखिब से रसिक मुरारी प्रियजन।।
ना गेले भंजन हय कृष्णेर बचन।
अबश्य देखिब गिया पुरुषरतन।।

–श्रीश्री रसिकमंगल (पू/१५/१६,२६)

(अर्थात् मैं निश्चितरूप से उत्कल में जाकर श्रीकृष्ण के प्रियजन, श्री रसिक मुरारी के दर्शन करूंगा। उत्कल में न जाने पर, श्रीकृष्ण की आज्ञा का उल्लंघन होगा। मैं अवश्य ही उत्कल में उन पुरुषरत्न के दर्शन करूंगा।)

श्री श्यामानन्द जी ने तब श्रील जीव गोस्वामी तथा श्री हरिप्रिया दास आदि से विदा लेकर उत्कल के लिए प्रस्थान किया। ब्रजमण्डल त्याग करने से पहले, श्री श्यामानन्द जी अपने प्राणधन श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी को अपने वक्षःस्थल पर धारण करके बहत समय तक रोते रहे।

ईसवी सन १५६४ में, श्री श्यामानन्द प्रभु किशोर, बालक, श्यामदास तथा ठाकुर प्रसाद दास नामक चार शिष्यों तथा अपने कुलदेवता श्री श्यामराय को साथ लेकर, ब्रजमण्डल से उत्कल के लिये प्रस्थान करके आगरा पहुंचे। रात्रि उतर आने के कारण, श्री श्यामानन्द जी तथा साथी भक्तों ने रात्रि यापन के लिये, आगरा नगर के बीच में ही अपने अपने आसन स्थापित किये। किन्तु नगर के मुगल कोतवाल ने उन लोगों के पास कोई परिचय पत्र न होने के कारण, उन लोगों को तस्कर समझकर कारागार में रुद्ध कर दिया। श्री गोविन्द जी के चरणारविन्द ही जिनके एकमात्र आश्रय हैं तथा जिन्होंने अपने आपको पूर्णरूपेण श्री गोविन्द जी के चरणों में ही समर्पित कर दिया है, वे लोग तुच्छ मायिक विपदाओं से किंचित मात्र भी क्षुब्ध नहीं होते। श्री श्यामानन्द जी कारागार के अन्दर ही निर्विकारभाव व निविष्ट चित्त से, श्री श्याम सुन्दर जी के चरणारविन्द का ध्यान करने लगे। श्री कृष्णैक शरण, एकनिष्ठ भक्तों का अपनी देह के प्रति अभिनिवेश नहीं रहता। वे सर्वदा भगवान के चरणारविन्द के चिन्तन में ही निमग्न रहते हैं। पर भक्तवत्सल भगवान, प्रिय भक्तों को थोड़ा सा उद्वेग प्राप्त होने पर ही, स्वयम् व्याकुल होकर उनको उद्वेगमुक्त करते हैं।

श्री श्यामानन्द प्रभु को उनके चार साथियों के साथ कारागार में बन्द करके, नगर कोतवाल निश्चिन्त होकर, रात्रि के समय, अपने पलंग पर सो रहा था। ऐसे समय पर, भक्तवत्सल भगवान ने श्री नृसिंह रूप धारण करके, उस नगर कोतवाल को पलंग से उठाकर भूमि पर पटक दिया। फिर वे उसके वक्षःस्थल पर बैठ गए तथा घोर गर्जन करते हुए बोले, "रे दुष्ट ! मेरे प्रिय भक्त नगर के अन्दर बैठ कर हरिनाम जंप कर रहे थे, किन्तु तूने बिना किसी कारण के, उन को बन्दी बना कर कारागार में डाल दिया। उन लोगों को तुरन्त मुक्त कर दे नहीं तो :–

"सबंश सहित आज करिब संहारे।।

–श्रीश्री रसिक मंगल (पु/१५/४५)

(अर्थात आज मैं तेरा सवंश संहार कर दूंगा।")

वह मुग़ल कोतवाल विषम यंत्रणा से छटपटाने लगा। उसके प्राण कंठागत हो गये। मुख से रक्त क्षरित होने लगा। श्वास तीव्रगति से चलने

लगी। उस के परिजनों ने, उस के मुख पर जल डाल डाल कर, उस को कुछ स्थिर किया। उसने उसी क्षण, अधीनस्थ पहरेदारों को आदेश दिया; "उन पांच बैरागियों को तुरन्त कारागार से मुक्त करके ले आओ। वे साधारण मनुष्य नहीं, साक्षात् श्रीकृष्ण के पार्षद हैं।"

कोतवाल का आदेश मिलने पर दस–बीस प्रहरी, एक साथ दौड़ कर कारागार में गए और श्री श्यामानन्द प्रभु व अन्य चार भक्तों को मुक्त करके मुग़ल कोतवाल के पास ले आए। उनके अपने सम्मुख पहुंचते ही, कोतवाल ने, श्रीश्यामानन्द प्रभु को साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया एवम् अपने द्वारा किये गए अपराध के लिए क्षमा याचना की–

"दण्डबत काय क्षिति पड़िल चरणे।
अपराध क्षमा कर तोमार शरणे।।
मुई ना जानिनु तुमि कृष्ण प्रियजन।
सेई अपराधे दण्ड पाइ अकारण।।"

–श्रीश्री रसिक मंगल (पू/१५/५५,५६)

(अर्थात उस मुग़ल कोतवाल ने भूमि पर साष्टांग दण्डवत प्रणाम करके कहा, "मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। मैं नहीं जानता था कि तुम श्रीकृष्ण के प्रियजन हो। मुझे इस अपराध के लिए दण्ड भी मिल गया है। अब तुम मुझे क्षमा कर दो।")

मुग़ल कोतवाल ने जब श्री श्यामानन्द प्रभु की इस प्रकार स्तुति की तथा उनसे क्षमा याचना की तो उदारमना श्री श्यामानन्द प्रभु का चित्त करुणा से द्रवीभूत हो गया। उन्होंने प्रसन्न हो कर, कोतवाल से यों कहाः–

"आमि मांगि एइ भिक्षा शुन महाशय।
बैष्णबेर सेबा तुमि करिबे निश्चय।।"

–श्रीश्री रसिक मंगल (पू/१५/५८)

(अर्थात हे महाशय! सुनो! मैं तुमसे यही भिक्षा मांगता हूँ कि तुम वैष्णवों का उत्पीड़न न करके, उन की सेवा करना।)

श्री श्यामानन्द प्रभु का आदेश प्राप्त करके वह कोतवाल उस दिन से परम साधु सेवी व परम श्री कृष्ण भक्त हो गया। उस के विनम्र निवेदन से, श्री श्यामानन्द प्रभु ने एक मास तक आगरा में रहकर उस पर महती

कृपा की। कोतवाल ने उन से भक्ति विषयक उपदेश ग्रहण करके, अपने जन्म को सार्थक किया। आगरा से श्री श्यामानन्द प्रभु ने प्रयाग तथा वाराणसी आदि तीर्थों के दर्शन करते हुए, गौड़ देश को प्रस्थान किया। मालदह होकर जीवों का उद्धार करते हुए, जब उन्होंने श्रीपाट अम्बिका में पहुंचकर, श्री गौर–नित्यानन्द के श्रीविग्रह द्वय के दर्शन किये तो वे भावावेश से अधीर हो गये। उन्होंने श्री गुरुदेव, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के चरणों में जब साष्टांग प्रणाम किया तो वे उन को गोद में लेकर चूमने लगे और स्नेहाशीष देने लगे। कुछ दिन गुरुदेव जी के चरणों में व्यतीत करके, वे भक्तवत्सल श्रीकृष्णराय जी के दर्शन करने बगड़ी गए। श्रीकृष्णराय जी के दर्शन करके वे भावविभोर हो कर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। उनके मधुर नृत्य के दर्शन करने हेतु, वहां लोगों का जमघट हो गया। श्री श्यामानन्द प्रभु को पुजारी ने श्रीकृष्णराय जी की प्रसादी माला और चन्दन आदि अर्पण किये तथा अत्यन्त यत्नपूर्वक उनको तथा उनके साथी भक्तों को प्रसाद सेवन करवाया। बगड़ी के राजा स्वयं आकर उन को अपने राज प्रासाद में ले गए। श्री श्यामानन्द प्रभु की सेवा के लिये राजा ने उन्हें अनेक द्रव्यों के साथ, श्यामानन्दपुर नामक एक गांव भी प्रदान किया।

बगड़ी से श्री श्यामानन्द प्रभु, भाटभूमि में भी गए। वहां के राजा स्वयं आकर उनको अत्यन्त आदर तथा भक्ति के साथ, निज राज प्रासाद में ले गए। राजा ने सवंश उनका चरणामृत प्राप्त करके, उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। पूर्वकाल में भाटभूमि के किसी राजा ने, एक तेजस्वी महाजन वैष्णव का अपमान कर दिया था। उस वैष्णव के अभिशाप से भाटभूमि में एक भयंकर व्याघ्र का भय आरम्भ हो गया था। अपने पूर्वज द्वारा अर्जित इस अभिशाप की कथा, राजा ने श्री श्यामानन्द प्रभु को सुनाई।

शुनिया गोस्वामी तबे तारे कृपा कैला।
आजु हइते ब्याघ्र भय ना हबे बलिला।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१३/८६)

(अर्थात सारी घटना को सुनकर श्री श्यामानन्द प्रभु ने राजा पर कृपा की तथा कहा कि आज से तुम्हारे राज्य में व्याघ्र का भय नहीं रहेगा।)

वहाँ से श्री श्यामानन्द जी, मल्लभूमि के अन्तर्गत रोहिणी नगर में आ

पहुंचे। उन्हें यहां आकर मालूम हुआ कि वृन्दावन में श्री श्यामसुन्दर जी के द्वारा इंगित श्री रसिक मुरारी अब रोहिणी नगर में नहीं थे। वे अपने कुटुम्ब के साथ, अब घण्टशीला में निवास कर रहे थे। इसलिए श्री रसिक मुरारी से मिलने के लिए, श्री श्यामानन्द प्रभु घण्टशीला में पहुंचे। श्री श्यामानन्द प्रभु के साथ श्री रसिक मुरारी के साक्षात्कार का वर्णन करने से पहले, इन श्री रसिक मुरारी का संक्षिप्त परिचय देना अत्यन्त आवश्यक है।

अधमतारण, पतितपावन, श्री गौरसुन्दर ने स्वयं अठारह वर्ष नीलाचल में रहकर, गौड़मण्डल तथा उत्कल प्रदेश को, नाम तथा प्रेम की बन्या (बाढ़) से प्लावित कर दिया था, परन्तु पश्चिम बंगाल के दक्षिण–पश्चिम अंश के उड़ीसा अंतर्गत विस्तीर्ण भूभाग, इस नाम तथा प्रेम की बाढ़ से अछूते ही रह गए थे। इस विस्तीर्ण भूभाग के अधिवासी जीवहिंसा, जीवहत्या, मद्यपान, डकैतियों, पशुबलि, नरबलि, तामसिक देव–देवियों की पूजा–अर्चना आदि दुष्कर्मों में लिप्त थे। जो भी अल्पसंख्यक साधु प्रकृति के वैष्णव, इस अंचल में निवास करते थे, वे इन दुराचारी व अत्याचारी लोगों से पीड़ित होकर, भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविंद में, कातर हो कर प्रार्थना करने लगे। अत्याचारों से पीड़ित साधु भक्तों के करुण आर्तनाद को सुन कर, भगवान श्रीकृष्ण का आसन डोलने लगा। भक्तों को त्राण दिलाने के लिए उन्होंने अपने अनन्यतम, श्री अनिरुद्ध को धरा पर प्रकट कराने का निश्चय कर लिया। स्वयं प्रकट होने से पहले, श्री अनिरुद्ध ने अपने भावी माता–पिता एवं गुरुजनों के साथ–साथ, लीला परिकरों को भी पृथ्वी पर प्रकट कर दिया। सुवर्णरेखा नदी के तटवर्ती रोहिणी नगर के अधिपति, श्री अच्युतानन्द देव एवं उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती भवानी देवी को निमित्त करके, ईसवी सन् १५६० के कार्तिक मास की अठारहवीं, दिन, रविवार, (शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि) रविवार, रात्रि के तृतीय प्रहर में, अति शुभ लक्षणों और लग्न में, श्री रसिक मुरारी जी प्रकट हुए। "श्री श्यामानन्द प्रकाश" ग्रन्थ में इनके तत्त्व के विषय में यों वर्णित हैः–

श्री रसिक मुरारी त्रिभुवन धन्य।
अनिरुद्ध अवतार साक्षात् प्रमाण।।

– (१०/२)

अनिरुद्धाबतार चतुर्ब्यूहाधिपति।
नारायण सम मूर्ति रसिके प्रसिद्धि।।
— (१५/१७)———

{अर्थात श्री रसिक मुरारी (जो कि साक्षात श्री अनिरुद्ध जी के अवतार हैं) के पृथ्वी पर प्रकट होने से, त्रिभुवन धन्य हो गया। भगवान श्रीकृष्ण के चतुर्व्यूह–वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध में अनन्यतम अधिपति, श्री अनिरुद्ध ही श्री रसिक मुरारी हैं, जोकि श्री नारायण के समान हैं। यह तत्त्व सर्वजन विदित है।}"

यथासमय श्री रसिक मुरारी के जातकरण, अन्न प्राशन एवं चूड़ाकरण आदि संस्कार सम्पन्न हुए। दैवज्ञों ने जन्म पत्री की गणना करके उन का नाम रखा रसिक। क्योंकि राजा श्री अच्युतानन्द देव की यह इच्छा थी कि उन के पुत्र का नाम मुरारी रखा जाये, इसलिए इन दोनों नामों को मिला कर, उन का नाम पड़ गया श्री रसिक मुरारी। शैशव काल में दयाल दासी नाम की एक वैष्णवी ने, श्री रसिक मुरारी जी को श्रीहरिनाम महामंत्र प्रदान किया। शैशव काल से ही उनकी देवता, ब्राह्मणों एवं वैष्णवों में भक्ति थी एवं धात्री, पीपल तथा तुलसी में गम्भीर निष्ठा एवं अगाध श्रद्धा थी। यथासमय पर उन की विद्या आरम्भ हुई। अपनी असाधारण धी शक्ति एवं प्रतिभा के कारण, उन्होंने अल्पकाल में ही व्याकरण, काव्य, न्याय एवं दर्शन आदि का अध्ययन समाप्त करके, श्रीमद्भागवत का अध्ययन आरम्भ कर दिया। श्रीमद्भागवत के अध्ययन के समय, श्रीकृष्ण भगवान की लीलाओं का विशेष रूप से आस्वादन करते हुए, उन का विषयों के प्रति वैराग्य हो गया तथा साधन भक्ति के अनुष्ठान में तीव्र गति से वृद्धि होने लगी। कभी–कभी वे भावविभोर होकर, श्री कृष्ण प्रेमावेश में बाह्यज्ञानशून्यता प्राप्त करके, कभी तो हिंसक वन्य जन्तुओं से भरपूर घोर जंगल में घूमने लग जाते तो कभी कई प्रहर तक श्री हरिनाम का जप करते रहते। कभी–कभी निविष्ट मन से नाम संकीर्तन करने लगते तो कभी, श्रीमद्भागवत का पाठ करने लगते। यौवन काल में भी, श्री रसिक मुरारी के मन की विषयों के प्रति अनासक्ति लक्षित करके, राजा श्री अच्युतानन्द देव ने, हिजली के अधिपति श्री वलभद्र की कन्या इच्छा देवी के साथ, अत्यन्त समारोहपूर्वक, उन का

शुभ विवाह सम्पन्न कर दिया।

लक्ष्मी अंशे अबतीर्न इच्छा पाटबंशी।
जन्मे जन्मे ते कारणे रसिक प्रेयसी।।

—श्रीश्री रसिक मंगल (पू/१२/१३७)

(अर्थात इच्छा देवी, लक्ष्मी देवी के अंश से प्रकट हुई हैं एवं जन्म जन्म से वे श्री अनिरुद्धावतार श्री रसिक मुरारी की प्रेयसी हैं।)

विवाह के उपरान्त भी, श्री रसिक मुरारी जी के विषयों के प्रति वैराग्य में शिथिलता नहीं आई। वे पहले की भांति नाम प्रेम में ही मत्त रहते। घण्टशिला नामक स्थान में राजा श्री अच्युतानन्द देव जी का एक भवन था। अठारह वर्ष की आयु में, श्री रसिक मुरारी सपरिवार वहां जाकर रहने लगे। इस स्थान पर, द्वापर युग में पाण्डवों ने आकर विश्राम किया था। सुवर्णरेखा नदी के तटवर्ती शाल के जंगलों के बीच में स्थित इस एकान्त स्थान में आकर, श्री रसिक मुरारी प्रफुल्लित रहते थे। एकबार, एक निर्जन स्थान में वे ध्यान मग्न थे। उन्होंने ध्यान में देखा कि नवीन नीरद कान्ति से युक्त एक परम सुन्दर पीताम्बरधारी युवक, हाथ में मुरली लिए हुए मृदु—मृदु हास्य करते हुए, उनके सम्मुख खड़े होकर, मधुर स्वर से उन से यों कह रहे थेः—

आमार प्रेयसी जन्म श्यामानन्द रूपे।
प्रेम भक्ति दिया उद्धारिबे सर्बलोके।।
तांरे सेबि पाइबेक आमार चरण।
तोमा ह्वदये आमि विहरिब अनुक्षन।।

—श्रीश्री रसिक मंगल (पू/१४/२४,२६)

(अर्थात मेरी प्रेयसी श्यामानन्द के रूप में पृथ्वी पर प्रकट हो चुकी है। वह प्रेमभक्ति का दान देकर सबका उद्धार करेगी। श्री श्यामानन्द की सेवा करके, तुम मेरे चरणारविन्द को प्राप्त होओगे। मैं सर्वदा तुम्हारे ह्वदय में विहार करूंगा।)

भगवान श्रीकृष्ण द्वारा यह जान कर कि श्री श्यामानन्द ही उनके गुरु एवं उपदेशक होंगे, श्री रसिक मुरारी जी उसी समय से, शयन करते समय, स्वप्न में ,तन्द्रा में, जागरण में, श्री श्यामानन्द प्रभु का ही ध्यान करने लगे,

किन्तु श्रीकृष्ण जी के इस आदेश के विषय में उन्होंने किसी को कुछ नहीं बताया।

एक दिन घण्टशिला के राजा बैकुण्ठनाथ, अपने आमात्य तथा सभासदों के साथ, राजसभा में बैठकर, श्रीमद्भागवत का श्रवण कर रहे थे। एक विद्वान पण्डित अति मधुर स्वर से श्रीमद्भागवत सुना रहे थे तथा श्रीरसिक मुरारी भी इस कथा का आस्वादन कर रहे थे। ठीक उसी समय, गौरकलेवर युक्त, आजानुलम्बित भुजाओं वाले एक परम तेजस्वी महापुरुष ने उस राजसभा में प्रवेश किया। उनके श्री अंग के प्रकाशमान तेज से प्रभावित होकर, राजा बैकुण्ठनाथ तथा सभी सभासदों ने उठकर उन महापुरुष की चरणवन्दना की। उन को विशिष्ट उच्च आसन पर आसीन करके, राजा बैकुण्ठनाथ, हाथ जोड़ कर उनके सम्मुख खड़े हो गए। श्री रसिक मुरारी, उन महापुरुष के दर्शन मात्र से ही पहचान गए कि वे ही उन के अभीष्ट देव श्री श्यामानन्द प्रभु थे। उधर श्री श्यामानन्द प्रभु ने भी श्रीरसिक मुरारी को देखते ही पहचान लिया कि वे सुन्दर पुरुष ही, श्रीकृष्ण के प्रिय भक्त तथा निजअंग स्वरूप श्री रसिक मुरारी थे।

रसिकेर रूप देखि मुग्ध अन्तर।
एइ पुरुष हइबेक रसिक शेखर।।

—श्रीश्री रसिक मंगल (पू/१६/१६)

(अर्थात श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिक मुरारी का रूप देख कर, भीतर ही भीतर मोहित हो गए तथा उन्होंने पहचान लिया कि वे सुपुरुष ही रसिक मुरारी थे।)

श्रीमद्भागवत पाठ के उपरान्त, राजा बैकुण्ठनाथ ने, श्री श्यामानन्द प्रभु के ठहरने के लिए एक मनोरम निवास स्थान का प्रबन्ध कर दिया। जब राजा तथा सभासद अपने–अपने कार्य हेतु, वहां से चले गए तो उपयुक्त एकान्त समय देख कर, श्री रसिक मुरारी ने भावविह्वल होकर, अश्रुपूर्ण लोचनों सहित, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणारविन्द में साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। श्री श्यामानन्द प्रभु ने तत्काल उन को भूमि से उठाकर प्रेमालिंगन प्रदान किया। फिर उन्होंने स्नेहसिक्त वाणी में, श्री रसिक मुरारी से कुशलक्षेम आदि के विषय में जिज्ञासा की। उन्होंने श्री रसिक मुरारी से

इस प्रकार कहा–

कृष्ण पारिषद तुमि अच्युतनन्दन।
देखिबारे आइलाम छाड़ि बृन्दाबन।।

–श्रीश्री रसिक मंगल (पू/१६/२४)

(अर्थात हे अच्युतनन्दन रसिक मुरारी ! तुम श्रीकृष्ण भगवान के पार्षद हो। तुम को देखने के लिए, मैं श्रीधाम वृन्दावन को छोड़ कर यहां आया हूँ।)

"रसिक! तुम भगवान श्रीकृष्ण के अत्यन्त प्रियजन हो। इसलिये उन्होंने मुझे अपने चरणों की सेवा से वंचित करके, श्रीधाम वृन्दावन से यहां तुम्हारे पास भेज दिया है।"

भावविभोर श्री रसिक मुरारी गद्–गद् कण्ठ से कहने लगे, "हे प्रभु! मैं जन्म–जन्म से आपका दास हूँ। इसीलिए इस दास पर कृपा करने के लिए ही, आप का घण्टशिला में आगमन हुआ है।"

अनन्तर श्री रसिक मुरारी ने, श्री श्यामानन्द प्रभु से भक्ति तत्त्व, रस तत्त्व तथा प्रेम तत्त्व के सम्बंध में बहुत से उपदेश ग्रहण किये। ईसवी सन् १६०८ में, उन्होंने श्री श्यामानन्द प्रभु से दीक्षा ग्रहण करली। श्री श्यामानन्द प्रभु ने श्री रसिक मुरारी जी की पत्नी, श्रीमती इच्छा देवी को भी श्रीकृष्ण मन्त्र की दीक्षा प्रदान की तथा उन का नामकरण किया, श्याम दासी। श्री श्यामानन्द प्रभु ने श्री रसिक मुरारी जी की कन्या, बालिका देवकी को भी श्री हरिनाम महामंत्र प्रदान किया। श्री हरिनाम महामंत्र ग्रहण करते ही वह बालिका, "हा गौर, हा निताई" कहते हुए नृत्य करने लगी।

एकदा, राजा बैकुण्ठनाथ की राजसभा में, श्रीमद्भागवत का पाठ हो रहा था। उस परम मधुर श्री कृष्ण कथा को श्रवण करते–करते, श्री रसिक मुरारी ने अकस्मात अन्यमनस्क सा होकर, कहीं अन्यत्र दृष्टिपात कर लिया। इस से क्रुद्ध होकर श्री श्यामानन्द प्रभु ने उन पर दो बार पदाघात किये, किन्तु श्री रसिक मुरारी जी तनिक भी क्रुद्ध या क्षुब्ध नहीं हुए। क्षोभ के बजाय, लज्जित होकर उन्होंने श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणारविंद में साष्टांग दण्डवत प्रणाम करते हुए, उनसे अपने द्वारा बन गये अपराध के लिए बार–बार क्षमा याचना की तथा प्रफुल्लित चित्त से इस प्रकार कहा:–

आजि मोर हइल शुभाशुभ कर्मक्षय।
दुइ लाथ मारिलेन श्यामानन्द राय।।

—श्रीश्री रसिक मंगल (प/१/३४)

(अर्थात आज गुरुदेव ने मुझ पर दोबार पदाघात किया। इससे मेरे शुभ और अशुभ सारे कर्मों का नाश हो गया।)"

श्री रसिक मुरारी जी की, अपने चरणों में ऐसी श्रद्धा भक्ति तथा निष्ठा आदि के दर्शन करके, श्री श्यामानन्द प्रभु जी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा स्नेहपूर्वक श्री रसिकमुरारी को अपनी गोद में बैठाकर, उनका चुम्बन करते हुए अश्रुविसर्जन करने लगे। धीरे–धीरे श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिकानन्द जी को रागानुगा भजन के निगूढ़ तत्त्वों का उपदेश देना भी आरम्भ कर दिया।

श्री रसिक मुरारी जी का अनुसरण करते हुए, घण्टशिला के सहस्रों व्यक्ति आ आकर, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणारविंद का आश्रय ग्रहण करने लगे। श्रीकृष्ण प्रेम की बाढ़ से सारा घण्टशिला प्लावित हो गया। घण्टशिला के घर–घर में, श्री गौर– नित्यानन्द तथा श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन होने लगे। श्री श्यामानन्द प्रभु के सान्निध्य से घण्टशिला निवासी, अन्य देवी–देवताओं का अर्चन त्याग कर, श्री राधाकृष्ण के चरणाश्रय को ही एकमात्र सार वस्तु जानकर व मानकर, श्रीश्री राधा श्यामसुन्दर जी के चरणारविंद में, सम्पूर्णरूप से आत्मसमर्पण करने लगे।

❖

एकादश अध्याय

योगी दामोदर का उद्धार

श्री नरोत्तम ठाकुर नीलाचल में श्री जगन्नाथ देव जी के दर्शन करने गये। दर्शनों के पश्चात लौटते समय, वे अपने प्राणों से भी प्रियतम, सुहृद श्री श्यामानन्द प्रभु से मिलने के लिए, नृसिंहपुर गए। श्री नरोत्तम ठाकुर के आगमन का समाचार मिलते ही श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिकानन्द तथा अन्य शिष्यों को साथ लेकर, श्री नरोत्तम ठाकुर का आगे जाकर रास्ते में ही भव्य स्वागत किया और वे उन को समारोहपूर्वक अपने स्थान पर ले आये। जब श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री नरोत्तम ठाकुर को साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया तो श्रीपाद ठाकुर ने भी उनको प्रतिप्रणाम किया। बहुत दिन के पश्चात एक दूसरे का साक्षात्कार करके वे दोनों दृढ़ आलिंगन में बंध गए। आनन्दातिरेक से अश्रु विसर्जित करते हुए, उन्होंने एक दूसरे के वक्ष भिगो दिये। श्री श्यामानन्द प्रभु ने श्री ठाकुरपाद के रहने के लिए नृसिंहपुर में, एकांत निर्जन स्थान में व्यवस्था की ताकि अधिक जनसम्पर्क का भय न रहे। किन्तु वे शायद यह भूल गए कि जब उपवन में सुगंधित पुष्प प्रस्फुटित होता है तो उसके सौरभ को फैलने से नहीं रोका जा सकता। मधुपिपासु मधुकर उस कुसुम के सौरभ से आकर्षित होकर, स्वतः ही उस के निकट पहुंचने लगते हैं। श्री नरोत्तम ठाकुर के आगमन का समाचार प्राप्त करके, हज़ारों की संख्या में उत्कलवासी उनके दर्शनों के लिए आने लगे। नृसिंहपुर में नित्य नाम संकीर्तन, श्रीमद्भागवत पाठ, साधुसेवा तथा महोत्सव आदि होने लगे। श्री श्यामानन्द जी के द्वारा कृपावारि वर्षण से, सहस्रों उत्कलवासी नाम व प्रेम की बाढ़ में प्लावित हो रहे थे, यह देखकर श्री नरोत्तम ठाकुर परमानंदित हुए।

एकदिन श्री नरोत्तम ठाकुर ने श्री श्यामानन्द प्रभु से कहा, "श्यामानन्द! श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से तुम्हारे सम्पर्क में आकर, उत्कलवासी अत्यन्त

दुर्लभ, श्रीकृष्ण प्रेमधन प्राप्त कर रहे हैं। यह सुखद समाचार, श्रीमन्महाप्रभु के नीलाचलवासी भक्तों को भी प्राप्त हो गया है। वे सभी भक्त तुम्हारे दर्शनों के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठे हैं। इसलिए तुम शीघ्र नीलाचल में जाकर, श्री जगन्नाथ देव जी के दर्शन करो और गौर भक्तों से भेंट करके, उन की उत्कंठा का भी शमन करो। मैं महामहोत्सव के आयोजन के लिए खेतरी जाऊंगा। तुम अपने परिकरों के साथ उस महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए खेतरी भी अवश्य आना। महोत्सव के निमन्त्रण पत्र तुम्हारे पास, महोत्सव से पहले प्रेषित कर दिये जायेंगे।" श्रीनरोत्तम ठाकुर के खेतरी के लिए प्रस्थान के विषय में जान कर, भावी विच्छेद के कारण, श्री श्यामानन्द प्रभु अत्यन्त व्याकुल हो गए किन्तु निकट भविष्य में आयोजित होने वाले महोत्सव के कारण, वे उनको अधिक समय तक नृसिंहपुर में रोक नहीं सके। जब श्री नरोत्तम ठाकुर ने खेतरी के लिए प्रस्थान किया तो श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु, बहुत ही व्याकुल हो उठे।

कुछ दिन बाद श्री श्यामानन्द प्रभु ने वृन्दावन जाने की अभिलाषा व्यक्त की। श्री रसिकानन्द प्रभु ने भी उन के साथ जाने की इच्छा का प्रकाश किया। इस पर श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिकानन्द से यों कहा, "रसिक ! श्री नरोत्तम ठाकुर के आदेशानुसार, मैं पहले नीलाचल जाकर, श्री जगन्नाथ देव जी के दर्शन करूंगा। फिर वहां पर श्री गौर–भक्तों के दर्शन करने के अनन्तर, श्रीधाम वृन्दावन को जाऊँगा। इसलिए तुम मेरे साथ, इस समय मत चलो। तुम बाद में आकर, मुझे श्रीधाम वृन्दावन में मिलना।"

अपने कुछ प्रिय शिष्यों को साथ लेकर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने नीलाचल के लिए प्रस्थान किया। श्री रसिकानन्द प्रभु उन सब के साथ, चाकुलिया तक आए।

यहां पर श्री रसिक मुरारी, श्री श्यामानन्द प्रभु को साथ लेकर, अपने सहपाठी, प्रकाण्ड विद्वान, योग साधक, ब्राह्मण कुलोद्भूत, श्री दामोदर पण्डित के घर गए। वहां अवस्थान करते समय, श्री रसिक मुरारी ने, श्री दामोदर के सम्मुख प्रेमभक्ति की महिमा कथा का बहुत ही प्रभावकारी ढंग से वर्णन किया किन्तु क्योंकि श्री दामोदर पण्डित योग निष्ठ थे, इसलिए उनका मन, यह मान कर कि केवल योग ही सर्वश्रेष्ठ है, इसी सिद्धान्त के

प्रति अटल रहा। श्री रसिक मुरारी और श्री दामोदर पण्डित के सैद्धान्तिक मत भेद को देख कर श्री श्यामानन्द प्रभु ने, वेद तथा वेदानुगत शास्त्रों के सिद्धान्त के अनुसार "प्रेम भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ अभिधेय है," इस तत्त्व का अत्यन्त सुन्दर रूप से वर्णन–विवेचन किया। योगी श्री दामोदर पण्डित ने श्री श्यामानन्द प्रभु के इस युक्तिपूर्ण सिद्धान्त को मान भी लिया।

एक दिन श्री रसिक मुरारी जी, श्री दामोदर को कहने लगे, "बन्धुवर! मैंने अपने सारे आत्मीय परिजनों के साथ, श्रीमती राधारानी की साक्षात कृपाप्रेष्ठ, इन महापुरुष के श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर दिया है। इसलिए मेरा तुम से अनुरोध है कि तुम भी, श्री श्यामानन्द प्रभु के श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर दो।"

योगी श्री दामोदरने, श्री रसिक मुरारी जी के इस अनुरोधको अस्वीकार करते हुए, अहंकार सहित कहा, "यदि मैं इन में कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के दर्शन करूंगा, तभी इन को अपने गुरु के रूप में स्वीकार करूंगा। अन्यथा केवल तुम्हारे कहने मात्र से, मैं इन को गुरु रूप में वरण नहीं कर सकता।"

तबे दामोदर कहे रसिकेर स्थाने।
अबश्य बिकाबो आमि ए प्रभु चरणे।।
जबे मुई किछु देखि इंहार प्रकाश।
सबंशेते हब मुइ ए प्रभुर दास।।

–श्रीश्री रसिक मंगल (द/१/६६–६७)

(अर्थात श्री दामोदर पण्डित, श्री रसिक मुरारी से कहने लगे, "यदि मैं श्री श्यामानन्द जी के अन्दर किसी विशेष तत्त्व का दर्शन करूँगा, तभी सवंश इन से दीक्षा ग्रहण करूँगा।")

श्री दामोदर का उपरोक्त उत्तर सुनकर श्री रसिक मुरारीजी सोचने लगे कि योगनिष्ठ श्री दामोदर का अभी भाग्य उदय नहीं हुआ था। अतः इन के सौभाग्योदय के लिये प्रतीक्षा करनी चाहिये।

चाकुलिया में खर्वा नामक एक नदी है, जिसके तीर पर एक क्षुद्र अरण्य भी है। श्री दामोदर उस निर्जन स्थान में जाकर, योगाभ्यास किया करते थे। एक दिन श्री श्यामानन्द प्रभु, प्रसाद ग्रहण करने के पश्चात् अपने

भक्तों के साथ, श्रीदामोदर के घर में, श्री कृष्ण कथा रस में निमग्न थे। श्री दामोदर पण्डित ने स्वयं श्री श्यामानन्द प्रभु को कपूर–चन्दन आदि प्रदान किया। श्री रसिक मुरारी ने श्रीकृष्ण का सुवासित प्रसादी ताम्बूल श्री श्यामानन्द प्रभु को प्रदान किया। फिर सभी भक्त श्रीकृष्ण लीला अमृत के रसास्वादन में मत्त हो गये। ऐसे समय पर, योग साधन का समय निकट होने के कारण, श्री दामोदर पण्डित, खर्वा नदी के तीरवर्त्ती उस निर्जन स्थान में, योगाभ्यास करने के लिये चले गए। वहां पहुंच कर उनके विस्मय की सीमा न रही, जब उन्होंने देखा कि :–

"आचम्बिते सेइ स्थाने कल्पतरु हेरि।
मनिमय सिंहासन रत्नमय पुरी।।
नबीन किशोर मूर्ति श्यामल सुन्दर।
त्रिभंग ललित वंशी शिखिपुच्छधर।।
पीतबास परिधान मनोहर बेशे।
श्यामानन्दे देखिलेन तांर बामपाशे।।
रत्न सिंहासने देखि दोहा बिद्यमान।
निज बेशे श्यामानन्द ताम्बूल जोगान।।

– श्रीश्री रसिक मंगल (द/१/७४–७७)

(अर्थात दामोदर पण्डित ने वहां देखा कि एक रत्नमयी पुरी में, एक कल्पतरु के नीचे, एक मणिमय सिंहासन विराजमान था तथा उस रत्नसिंहासन पर एक नवीन किशोर श्यामल सुन्दर शिखिपुच्छधर ललित त्रिभंग मूर्ति, अपने हाथ में मनोहर मुरली लिये, दण्डायमान थे। उन्होंने पीतवसन धारण कर रखे थे एवम् उनके वामपार्श्व में, श्री श्यामानन्द प्रभु मंजरी स्वरूप में, उनको ताम्बूल अर्पण कर रहे थे। एक ही सिंहासन पर श्रीकृष्ण के पास, उनकी प्रिया के रूप में, श्री श्यामानन्द प्रभु के दर्शन करके, योगी दामोदर चमत्कृत हो उठे।")

इस अद्भुत दृश्य को देख कर, योगी दामोदर ने अनुभव किया कि श्री श्यामानन्द अन्य कोई नहीं, बल्कि साक्षात श्रीकृष्ण की नित्य प्रेयसी हैं। फिर भी वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के बड़प्पन के कारण, सदगोप कुलोद्भूत श्रीश्यामानन्द प्रभु से दीक्षा ग्रहण करने में संकोच अनुभव करने

लगे।

एक दिन श्री दामोदर पण्डित, योगाभ्यास के उपरान्त अपने घर लौटे। उन्होंने देखा कि श्री श्यामानन्द प्रभु पद्मासन में बैठे हुए, श्री राधा श्यामसुन्दर की असमौर्ध्व रूपमाधुरी के ध्यान में निमग्न थे।श्री श्यामानन्द प्रभु के अंगों से प्रस्फुटित ज्योति से,उन का कक्ष आलोकित हो रहा था। फिर अकस्मात श्री दामोदर पण्डित ने देखा कि–

"श्यामानन्देर रूप देखे परम उज्ज्वल।
ज्योतिर्मय पैता अंगे करे झलमल।।
हेन काले आइला रसिकादि भक्त सब।
दण्डबत् प्रणाम करि कैला बहु स्तब।।
श्यामानन्द यज्ञोपबीत करिला गोपन।
तेज ढाकि आरम्भिला नाम संकीतन।।

–प्रेम विलास (११)

(अर्थात श्री श्यामानन्द प्रभु के परमोज्ज्वल, श्री अंग में ज्योतिर्मय यज्ञोपवीत झलमला रहा था। उसी समय श्री रसिक मुरारी आदि भक्तों ने वहां पदार्पण किया। श्री श्यामानन्द प्रभुके श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम करके वे सब उनकी स्तुति करने लगे। इस पर श्री श्यामानन्द प्रभु ने अपने ज्योतिर्मय यज्ञोपवीत और अपने परमोज्ज्वल स्वरूप के प्रकाश का संवरण करके, नाम संकीर्तन आरम्भ कर दिया।")

इस अद्‌भुत दृश्य को देख कर योगनिष्ठ श्री दामोदर पण्डित ने अनुभव किया कि श्री कृष्ण प्रेयसी, श्री श्यामानन्द प्रभु को अब्राह्मण समझकर उन्होंने अवज्ञा की थी किन्तु भक्ताधीन भगवान अपने प्रियतम भक्तों की अवमानना को कभी भी सहन नहीं करते। इसीलिये कृपामय श्रीकृष्ण ने इस अद्भुत दृश्य का संघटन किया। योगी दामोदर पश्चाताप करने लगे, "अहो! श्री कृष्ण प्रेयसी श्री श्यामानन्द प्रभु को अब्राह्मण कहकर मैने घोर अपराध किया है। विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन करके मैं इस तत्त्व को भली भाँति जानता हूँ कि श्रीकृष्ण के भक्तों का स्थान ब्राह्मणों से भी ऊँचा है। जीव स्वरूपतः भगवान श्रीकृष्ण का नित्यदास है। इसलिये भगवान श्रीकृष्ण की सेवा करना ही जीव का नित्य धर्म है एवम् श्रीकृष्ण

के भक्त इस नित्य धर्म का ही पालन करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जो वर्णोचित धर्म हैं, एवम् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास आदि जो आश्रमोचित धर्म हैं, वे कभी भी जीव का नित्यधर्म नहीं हैं। ये सभी धर्म नैमित्तिक धर्म मात्र ही हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है :–

सर्बधर्मान्परित्यज्य, मामेकं शरणम् ब्रज।
अहं त्बाम सर्बपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

– (गीता १८/६६)

(अर्थात सभी वर्ण एवम् आश्रमोचित धर्मों का परित्याग करके, तुम केवल एकमात्र मेरी शरण में आजाओ। मैं तुम को सभी पापों से मुक्त करके मोक्ष प्रदान करूंगा। इस विषय में तुम शोक मत करो।)"

"सभी आश्रम एवम् वर्ण धर्मों का परित्याग करके, केवल भगवान श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करने के कारण, श्रीकृष्ण भक्तों की, श्रीकृष्ण के निजजनों के रूप में गणना होती है। मैंने यह जानते हुए भी श्री श्यामानन्द प्रभु की अवज्ञा की है।" इस अन्तर्द्वंद्व से जर्जर, योगी श्री दामोदर और अधिक देर तक धैर्य धारण नहीं कर सके। वे ऊर्ध्व– श्वास से दौड़ते हुए, श्री श्यामानन्द प्रभु के पास जाकर, उन के चरणारविन्द में गिर पड़े। उन्होंने श्री श्यामानन्द प्रभु के दोनों चरणों को अपने हृदय में धारण करके, वहां उपस्थित सभी लोगों के सम्मुख पश्चाताप के आंसुओं से, श्री श्यामानन्द प्रभु के श्रीचरण द्वय को धोना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अत्यन्त कातर होकर कहा, "हे प्रभु! आप के भक्तिसिद्धान्त सम्मत शास्त्रीय वचनों में आस्था न रख कर तथा आप की अवज्ञा करके, मैने अमार्जनीय अपराध किया। आप मुझे अत्यन्त पतित, अधम जान कर, मेरे सभी अपराधों को क्षमा करते हुए मुझे अपने चरणारविन्द में स्थान प्रदान कीजिये।"

तब कृपामय श्री श्यामानन्द प्रभु ने कहा, "दामोदर! श्रीकृष्ण अत्यन्त कृपालु हैं। जो पूतना विषयुक्त स्तन पान करवाकर, उन का वध करने के लिये आयी थी, उस को भी उन्होंने धाय की गति प्रदान की। कृपामय श्रीकृष्ण तुम पर भी अवश्य कृपा करेंगे।"

ईसवी सन १६०६ में, एक शुभ दिन देख कर श्रीदामोदर पण्डित ने, अपनी दोनों पत्नियों तथा माता के साथ, श्री श्यामानन्द प्रभु से दीक्षा ग्रहण

कर ली। परवर्त्ती काल में यही दामोदर पण्डित,प्रेम भक्ति के प्रचार कार्य में, श्रीरसिकानन्द प्रभु के मुख्य सहायक बने थे।

शास्त्रों के अनुसार, श्रीकृष्ण भक्तों का स्थान ब्राह्मणों से भी अधिक ऊपर है यथाः–

चाण्डालोऽपि द्विज श्रेष्ठ हरि भक्ति परायणः।

श्री हरिभक्तिविलास में वर्णन हैः–

न शूद्रा भगवद भक्ता स्तेऽपि भागवतोत्तमा।
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने।।

प्रेम विलास ग्रन्थ में, ब्राह्मणों के शिरोमणि, श्रीनित्यानन्द प्रभु के सुपुत्र, श्री वीर चन्द्र प्रभु की इस उक्ति का वर्णन हैः–

कृष्णभक्तजन हय ब्राह्मण हइते बड़।
जिहों शास्त्र माने तिहों माने करि दृढ़।।

–प्रेमविलास (१६)

(अर्थात् श्रीकृष्ण भक्तों का स्थान ब्राह्मणों से भी उच्च है। जिन को शास्त्र ज्ञान है, वे लोग इस सिद्धान्त को दृढ़रूप से मानते हैं।)

श्रीश्री चैतन्य चरितामृत की मध्य लीला के अष्टम परिच्छेद में, निम्नलिखित वर्णन हैः–

किबा बिप्र किबा शूद्र न्यासी केन नय।
जेइ कृष्ण तत्तबेत्ता सेइ गुरु हय।।

(अर्थात् कोई ब्राह्मण हो, शूद्र हो या सन्यासी हो, जो भी श्रीकृष्ण के तत्त्व का ज्ञाता है, वही गुरु हो सकता है।)

योगनिष्ठ श्री दामोदर पण्डित ने अपने ब्राह्मणत्व के अहंकार का पूर्णरूपेण परित्याग करके, श्रीमती राधारानी की साक्षात कृपा से प्रेष्ठ, श्री कृष्ण प्रेयसी, सद्‌गोपकुलोद्भूत, श्रीश्यामानन्द प्रभु के चरणारविन्द में, अपने सभी आत्मीय कुटुम्बजनों के साथ आत्मसमर्पण किया।

❖

द्वादश अध्याय

मुण्डुलिया रंकिणी देवी का उद्धार एवं राजा श्री नवीन किशोर धल के प्रति कृपा

श्री श्यामानन्द प्रभु नीलाचल जाते हुए, धलभूमगढ़ राज्य में पहुँचे। इस राज्य के राजा,श्री नवीन किशोर धल, अत्यन्त दुष्चरित्र व दुराचारी थे तथा शक्ति के उपासक थे। उनकी इष्ट देवी का नाम था, मुण्डुलिया रंकिनी। यह देवी, नर रक्त व मांस भक्षिणी थी। साधुओं, सन्यासियों या वैष्णवों के आगमन पर राजा के अनुचर, उन लोगों के रात्रि यापन की व्यवस्था, इसी देवी के मन्दिर में ही करते थे। यह मन्दिर चारों ओर से बंद था। इस में केवल एक ही द्वार था। राजा के अनुचर, पथिकों को इस मन्दिर में ठहराकर, बाहर से एक मात्र द्वार को बन्द करके चले जाते थे। रात को देवी आकर इन पथिकों के रक्त का पान और मांस का भक्षण करती थी तथा राजा के वैभव की वृद्धि करती थी। यह प्रथा धीरे–धीरे नित्य घटित होने वाली परम्पंरा सी बन गई थी।

श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु तथा कई अन्य शिष्यों के साथ, धलभूमगढ़, में पहुँचे। परम्परा के अनुसार, राजा के कर्मियों ने इन लोगों को भी, रात्रि यापन करने के लिये, देवी के मन्दिर में ही स्थान दिया। ज्योंही श्रीश्यामानन्द प्रभु ने अपने शिष्यों सहित, मन्दिर में प्रवेश किया, दुष्ट राजकर्मचारी एक मात्र द्वार को बाहर से बन्द करके चले गये। श्री श्यामानन्द प्रभु, एकान्त मन्दिर को देखकर, बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, "राजा ने हम लोगों को बहुत ही उत्तम स्थान रहने के लिये प्रदान किया है। सभी निविष्ट चित्त से श्री श्री राधा श्यामसुन्दर जी के चरणारविन्द का ध्यान करो।" वे सभी अत्यन्त आनन्दित चित्त से, निश्चिन्त होकर, भगवान श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण एवम् लीलाओं आदि के स्मरण में निमग्न हो गए। उन लोगों को समय का भी ज्ञान न रहा। आधी रात

को, क्षुधार्त नर भक्षिणी रंकिनी देवी ने, मन्दिर में आबद्ध व्यक्तियों का रक्तपान करने और मांस भक्षण करने के लिये, वहां प्रवेश किया, किन्तु श्रीश्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु को वहां देखकर, उनसे संत्रस्त होकर उसने उन दोनों के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया तथा वह बहुत प्रकार से उन की स्तुति भी करने लगी।

ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवताओं को इस ब्रह्माण्ड के सम्बंध में ही अधिकार प्राप्त हैं। स्वयम् भगवान, गोलोक अधिपति, श्रीकृष्ण जी की विलास मूर्ति हैं, श्री बलदेव जी। श्री बलदेव जी की विलास मूर्ति हैं, श्री संकर्षण जी। इन्हीं संकर्षण जी से ही कारणाब्धिशायी, श्री विष्णु भगवान की उत्पत्ति हुई है। कारणाब्धिशायी विष्णु ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के अधिपति हैं। इन कारणाब्धिशायी विष्णु से गर्भोदशायी तथा गर्भोदशायी द्वितीय पुरुष से ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य देवताओं की उत्पत्ति हुई है। श्रीश्यामानन्द प्रभुजी, एक ओर तो गोलोकाधिपति स्वयं श्री भगवान श्रीकृष्ण की प्रेयसी हैं तथा दूसरी ओर कारणार्णवशायी अर्थात महाविष्णु का आवेश हैं। श्री रसिकानन्द प्रभु, गोलोकाधिपति स्वयं भगवानश्रीकृष्ण के चतुर्व्यूह में अनन्यतम, श्रीअनिरुद्धावतार हैं। इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत देव देवियों को भगवान श्रीकृष्ण व उन के परिकरों के विभिन्न स्वरूप तत्त्वों के सम्बंध ज्ञात रहते हैं। इस कारण से वे सब उन स्वरूपों के प्रति यथोचित आचरण भी करते हैं। क्योंकि श्री रंकिनी देवी, श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु के स्वरूप तत्त्व के सम्बंध में अवगत थीं, इसीलिए उन्होंने इन दोनों के दर्शन करते ही, इनके चरणारविन्द में साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया।

देवी रंकिनी ने अपने द्वारा किये गए दुष्कर्मों के लिये, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणारविन्द में बारम्बार क्षमा याचना की। परिणाम स्वरूप दया के सागर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने देवी पर कृपा की। राजा नवीन किशोर धल ने, श्रीश्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु के विनाश के लिये मन्दिर का द्वार बन्द करवा दिया था, यह जान कर देवी रंकिनी बहुत क्रुद्ध हो उठीं तथा भीषण रूप धारण करके, राजा के निकट जाकर बोलीं–

हाते काति खर्पर लइया क्रोध भरे।
बले राजा सबंशे मारिब आमि तोरे।।

मोर इष्टदेब प्रभु श्यामानन्द राय।
तांरे मोर गृहे भरि कपाट लागाय।।
जांर तेजे छाति मोर चड़चड़ करे।
भयेते चरणे आमि पड़िनू कातेरे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (५/२२–२४)

(अर्थात देवी हाथ में खड़ग एवम् खपरि लेकर अत्यन्त क्रोध पूर्वक बोलीं–"हे राजा! मैं 'तुम्हारा सवंश नाश कर दूंगी। मेरे इष्ट देव, श्री श्यामानन्द प्रभु को तुमने मन्दिर के अन्दर भिजवा कर, द्वार बन्द करवा दिया। उनके प्रचण्ड तेज से मेरी छाती धड़क रही है और अत्यन्त भयभीत होकर मैंने उनकी शरण ग्रहण की है।")

इस के अनन्तर श्री रंकिनी देवी ने कहा, "राजन! या तो तुम इसी समय सवंश जाकर, श्री श्यामानन्द प्रभु की शरण ग्रहण करलो, अन्यथा मैं तुम्हारा सवंश वध कर डालूंगी।"

राजा से इस प्रकार क्रोधपूर्ण वचन कहकर, देवी रंकिनी अन्तर्हित हो गईं तथा श्री श्यामानन्द प्रभु के सम्मुख प्रकट हो गईं। वहाँ वे अपने हाथों से भक्तिपूर्वक श्री श्यामानन्द प्रभु की सेवा करने लगीं।

उधर देवी के वचनों से अत्यन्त भयभीत तथा संतप्त होकर, राजा नवीन किशोर धल, आधी रात को ही अपने वंशजों के साथ, देवी रंकिनी के मन्दिर के लिए चल पड़े। राजा की पट्टरानी, अर्घ्य की थाली लेकर साथ हो लीं। कई रानियाँ हाथों में मशालें लिये साथ चल रही थीं। राजा ने तुरन्त मन्दिर का द्वार खुलवाकर, मन्दिर में प्रवेश किया। वह गले में वस्त्र डाल कर, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणों में गिर पड़ा, एवं–

गलेते बसन दिया उच्चारय तुण्डे।
राख प्रभु श्यामानन्द एत बलि कान्दे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (५/३५)

(अर्थात गले में वस्त्र डालकर, राजा नवीन किशोर धल, करुण क्रन्दन करते हुए, श्री श्यामानन्द प्रभु से यों क्षमा याचना करने लगा, "हे कृपा के सागर! मैं महापापी, अत्यन्त दुराचारी एवम् विषयों का कीट हूँ। तमोगुण से अंधा होकर, मैंने पहले भी बहुत से अपराध किये हैं और अब

आप के चरणारविन्द में भी महापाप किया है। हे करुणा के सागर! मैं आप के अभय चरणारविंद की शरण ग्रहण कर रहा हूँ। आप मेरे सभी अपराधों को क्षमा करदेवें।"

किन्तु जब श्री श्यामानन्द प्रभु ने विचार किया कि राजा नवीन किशोर धल ने रंकिनी देवी को प्रसन्न करके, अपने वैभव में वृद्धि करने के लिए बहुत से साधुओं एवम् वैष्णवों की हत्या की थी तो–

एत सुनिया श्री श्यामानन्द प्रभु बोले।
भक्तद्रोही मुख नाहि चाहि कोन काले।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (५/३८)

(अर्थात यह सब कथा सुनकर श्री श्यामानन्द प्रभु ने कहा कि मैं भक्त द्रोही के मुख के कभी दर्शन नहीं करता।)

श्री श्यामानन्द प्रभु ने सभी वैष्णवों को यह आदेश दिया, "तुम लोग इन सब को बाहर धकेलकर, तुरन्त मन्दिर के द्वार बन्द कर लो क्योंकि इस भक्तद्रोही राजा के मुख के दर्शन करने से, हम लोगों को महापाप स्पर्श कर लेगा।" इस आदेशानुसार, शिष्यों ने मन्दिर के द्वार को रुद्ध कर दिया। राजा नवीन किशोर धल अपनी रानियों, पुत्रों, मित्रों व आत्मीय परिजनों के साथ, द्वार के बाहर ही खड़े रह गए। भोर होने पर, सभी राजकर्मचारी तथा मंत्री आदि राजप्रासाद में गए। वहाँ जब उन को राजा आदि न मिले तो उनको आश्चर्य हुआ। एक सेवक के मुख से सारी घटना का विवरण मिलने पर, वे सभी देवी रंकिनी के मन्दिर में राजा के पास एकत्रित होने लगे। उधर प्रातःकाल में, श्री श्यामानन्द प्रभु ने सभी शिष्यों से यों कहा :–

श्यामानन्द प्रभु कहे शुन भक्तगण।
अन्य स्थाने जाबो आमि करह गमन।।
टेराबाड़ देह राजार मुख ना चाहिब।
साधु अपराधी राजार देशे ना थाकिब।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (५/४५,४६)

(अर्थात श्री श्यामानन्द प्रभु ने शिष्यों से कहा, "हे भक्तगण! हम इस साधुअपराधी राजा के देश में नहीं रहेंगे और इस राजा का मुख भी नहीं देखेंगे। इसलिए तुम कपड़े का घेरा लगा कर मेरे साथ अन्यत्र

चलो।")

इस आदेशानुसार, सभी भक्तों ने मिलकर कपड़े का घेरा लगा लिया और श्री श्यामानन्द प्रभु हरिध्वनि करते हुए, उन सब के साथ, मन्दिर के बाहर जाने लगे। देवी रंकिनी भी, श्री श्यामानन्द प्रभु के पीछे पीछे जाने लगीं। तब राजा भी अत्यन्त भयभीत होकर, अपनी पटरानी, राजपुत्र, राज कन्या एवम् अन्य आत्मीयों के साथ, श्री श्यामानन्द प्रभु का अनुगमन करने लगे। श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री राधाकृष्ण की लीलाओं का स्मरण करते हुए अपने शिष्यों के साथ छः कोस मार्ग का अतिक्रमण करके, सुवर्णरेखा नदी के तीर पर स्थित एक मनोरम आम्रवाटिका में जा पहुंचे। वहां वे सब के साथ अपने नित्य कर्म पूर्ण करने लगे। इसी समय देवी रंकिनी ने राजा नवीन किशोर को लाकर श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणारविन्द में लिटा दिया। देवी रंकिनी तथा सपरिकर राजा–रानी की प्रार्थना सुनकर, श्री श्यामानन्द प्रभु का कोमल हृदय द्रवीभूत हो गया। उन्होंने देवी रंकिनी तथा राजा पर कृपा दृष्टि डाली। उन्होंने देवी रंकिनी को श्री हरिनाम महामंत्र प्रदान किया तथा राजा ने भी परिवार सहित उनसे श्री हरिनाम की दीक्षा ग्रहण की।

श्री श्यामानन्द प्रभु ने राजा से कृपापूर्वक कहा, "हे राजन! तुम सभी प्रकार के पाप कर्मों का परित्याग करके, धर्मयुक्त आचरण करो। अहर्निश श्रीकृष्ण नाम का स्मरण करो। ब्राह्मणों और वैष्णवों की सेवा का व्रत धारण करलो। साधुओं के दर्शन मात्र पर ही, उन को साष्टांग दण्डवत प्रणाम करके, उनके चरणामृत का पान करो। जीव हिंसा मत करना। मन, कर्म तथा वचन से भी किसी को उद्वेग प्रदान मत करना।"

श्री श्यामानन्द प्रभु के इस उपदेश को सुनकर राजा नवीन किशोर धल ने उन को साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया और उन के आदेश को शिरोधार्य किया। फिर राजा ने श्री श्यामानन्द प्रभु से निवेदन किया "हे प्रभु! यदि आपकी कृपा हो जाये, तो कुछ साधु, सन्तों, वैष्णवों तथा ब्राह्मणों की सेवा करने की मेरी अभिलाषा को पूर्ण कीजिये।"

श्री श्यामानन्द प्रभु द्वारा सम्मति प्रदान किये जाने पर, राजा नवीन किशोर धल ने अपने राज्य की सीमा में जितने भी साधु, सन्त, वैष्णव तथा ब्राह्मण निवास करते थे, उन सभी को निमंत्रित करके, उस आम्रवाटिका में,

महामहोत्सव आरम्भ कर दिया। सारे पकवानों का सामान, राज प्रासाद से ही उपलब्ध करवाकर, बड़े बड़े बर्तनों में भर–भर कर, उस आम्रवाटिका में लाया गया। कच्ची रसोई का सारा सामान वहाँ पहुँचने पर, श्री श्यामानन्द प्रभु के निर्देश से, उनके शिष्यों ने अत्यन्त पवित्रता के साथ, विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बनाने आरम्भ कर दिये। श्री श्यामानन्द प्रभु के कुलदेवता, श्री श्यामरायजी, धारेन्दा से ही उनके साथ थे। श्रीश्यामराय जी के सामने भूमि का संस्कार करके, केले के पत्ते बिछाकर, उसके ऊपर उत्तम शाली अन्न, पुष्पान्न, विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन परोसे गये। श्रीविग्रह को नैवेद्य अर्पित होने के पश्चात, श्री श्यामानन्द प्रभु ने सभी साधु, सन्तों, वैष्णवों एवम् ब्राह्मणों के साथ आनन्दपूर्वक प्रसाद ग्रहण किया। उसके पश्चात राजा नवीन किशोर धल ने सपरिवार, श्री श्यामानन्द प्रभु का अधरामृत ग्रहण करके, अपना जन्म सार्थक किया। प्रसाद ग्रहण करने के उपरान्त राजा ने एक सौ स्वर्ण मुद्राएं, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणों में भेंट कीं एवम् सपरिवार उनको साष्टांग प्रणाम किया। सभी समागत साधु, सन्तों, वैष्णवों और ब्राह्मणों को भी राजा ने नवीन वस्त्र और दक्षिणा आदि प्रदान किये। राजा नवीन किशोर धल के साधु सेवा के प्रति इस अनुराग को देखकर, श्री श्यामानन्द प्रभु, बहुत ही प्रसन्न हुए। राजा ने श्री श्यामानन्द प्रभु के निवास के लिये, उसी आम्रवाटिका में ही दिव्य गृह का निर्माण करवा दिया। परवर्त्ती काल में, श्री गुरुदेव तथा साधु, सन्तों तथा वैष्णवों आदि की सेवा के लिये, राजा ने सातुटि नामक ग्राम प्रदान किया, जिसका श्री श्यामानन्द प्रभु ने श्यामसुन्दरपुर नाम रख दिया। इसी श्यामसुन्दरपुर नामक ग्राम में निवास के समय ही, द्वादश दिवसीय दण्डमहोत्सव की तिथियां आ गईं। श्री श्यामानन्द प्रभु के निर्देश से राजा नवीन किशोर धल ने, इस महोत्सव के लिये बहुत से द्रव्य तथा बहुत सी सामग्री दी। धलभूमगढ़ की प्रजा भी, श्री श्यामानन्द प्रभु की अलौकिक महिमा के दर्शन करके, महोत्सव के लिये द्रव्य व सामग्री लेकर श्यामसुन्दरपुर ग्राम में पहुँचने लगी।

महोत्सव का शुभारम्भ होने पर सैकड़ों नाम–संकीर्तन मण्डलियां भी चारों ओर से महोत्सव के स्थान पर पहुंचने लगीं। ज्येष्ठ मास की

द्वितीया के दिन, महासमारोह के साथ, महोत्सव का अधिवास हो गया। सहस्रों उत्कलवासी एवम् विभिन्न राज्यों के राजा भी महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये पहुंचने लगे। नाम–संकीर्तन की मधुर ध्वनि, श्यामसुन्दर पुर के ज़मीन आसमान में गुंजायमान होने लगी। नाम संकीर्तन के साथ, श्री श्यामानन्द प्रभु के मनोहारी नृत्य को देखकर, उपस्थित भक्तगण प्रेमावेश में मत्त होकर "हा निताई" "हा गौर" कहते हुए भूमि पर लोटने लगे। संकीर्तन के साथ साथ, चारों ओर से "लाओ–लाओ, खाओ–खाओ, दो–दो, लो–लो" की ध्वनियां भी गूंजने लगीं। राजा–प्रजा, धनी–दरिद्र, शूद्र–ब्राह्मण आदि, सभी ने महोत्सव में सम्मिलित होकर, परमानन्द प्राप्त किया। ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा वाले दिन, द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव सफलतापूर्वक पूर्ण हो गया। इस महोत्सव में दाम मिश्र नामक एक सामवेदी ब्राह्मण ने, भण्डारे का सारा कार्य सम्पन्न किया। श्री श्यामानन्द प्रभु के निर्देशानुसार, श्री रसिकानन्द प्रभु ने इस ब्राह्मण को दीक्षा प्रदान की। तब से ये दाम मिश्र सदा, श्री श्यामानन्द प्रभु के साथ रहकर, उन के कुलदेवता, श्री श्यामराय जी के पुजारी के रूप में नियुक्त हो गये।

घाटशिला नामकरण

एक बार राजा नवीन किशोर धल ने, श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु की परीक्षा लेने के लिये बहुत सारे द्रव्य व सामग्री "सीध े" उन के पास भिजवा दिये। बाकी सारे द्रव्य आदि तो ठीक ही थे, किन्तु आलुओं के बदले में, आलू की आकृति व वर्ण विशिष्ट के कुछ पत्थर या शिलाएं, अन्य सामग्री के साथ भेज दीं। श्री रसिकानन्द प्रभु ने रसोई करते समय, उन शिलाखण्डों को देखकर, राजा के मनोभाव को ताड़ लिया, किन्तु इस विषय में किसी को कुछ नहीं बताया। आवश्यकतानुसार, सभी सब्जियों में आलू की आकृति वाले उन शिलाखण्डों का ही उपयोग कर लिया। श्री रसिकानन्द प्रभु की ईश्वरीय शक्ति के प्रभाव से, सब्जियों में मिश्रित आलू की आकृति वाले वे विशिष्ट शिलाखण्ड भी आलुओं की ही भान्ति उबल गए। श्रीविग्रह को नैवेद्य अर्पित करने के पश्चात, श्री रसिकानन्द प्रभु ने प्रसाद की एक थाली जब राजा नवीन किशोर धल के

पास भेजी, तो राजा अत्यन्त आश्चर्यचकित रह गया। जांच पड़ताल करने के पश्चात् जब राजा पूर्णरूपेण आश्वस्त हो गया कि श्री रसिकानन्द प्रभु ने उसके द्वारा भेजे हुए शिलाखण्डों को उबाल कर ही, अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट रसोई तैयार की थी,तो राजा चमत्कृत हो गया और अपने द्वारा किये गये अपराध के मार्जन के लिये, वह श्री रसिकानन्द प्रभु के पास गया। राजा के अपने पास पहुंचने पर, श्री रसिकानन्द प्रभु ने जब हंसते हंसते उपरोक्त सारी घटना से, श्री श्यामानन्द प्रभु को अवगत कराया तो श्री श्यामानन्द प्रभु भी हंसे बिना न रह सके।

जिस स्थान पर श्री रसिकानन्द प्रभु ने शिलाओं को उबाल कर सब्जियां तैयार की थीं, उस का नाम तब से घण्टशिला पड़ गया। परवर्त्ती काल में "घण्ट" शब्द बिगड़ते बिगड़ते "घाट" बन गया और स्थान का नाम हो गया घाटशिला। झारखण्ड राज्य के टाटानगर के निकट स्थित "घाटशिला" नामक रेलवे स्टेशन, आज दिन तक श्री रसिकानन्द प्रभु की उस अलौकिक लीला का साक्ष्य वहन कर रहा है।

रंकिनी देवी राजा नवीन किशोर धल के राज्य में स्थित अपने उस मन्दिर में फिर वापिस नहीं गईं। परवर्त्ती काल में, वे श्री रसिकानन्द प्रभु के साथ, श्रीपाट गोपीवल्लभपुर चली गईं। वे गोपीवल्लभपुर के पश्चिमी पार्श्व में स्थित बेलवन में, अपने लिये निर्मित नये मन्दिर में रहने लग पड़ीं। गोपीवल्लभपुर में महोत्सव के समय जितनी भी पत्तलों और दोनों आदि की आवश्यकता होती थी, रंकिनी देवी उन सब को उपलब्ध कराती थीं।

पिछली एक शताब्दी से, रंकिनी देवी दोने तथा पत्तलें उपलब्ध कराने की सेवा नहीं कर रही हैं। कहते हैं कि श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में, श्री रसिकानन्द प्रभु के वंशज गोस्वामियों के घर में, रंकिनी देवी घर की कन्याओं की भांति ही आया-जाया करती थीं और वहाँ अपनी इच्छानुसार विचरण किया करती थीं। एक दिन वह गोस्वामी निवास की छत पर जाने वाले ज़ीने पर बैठी हुईं, अपने पैर हिला रही थीं। उसी समय, श्री गोविन्द जी के एक सेवक को किसी कार्यवश छत पर जाने की आवश्यकता आन पड़ी, परन्तु रंकिनी देवी की ज़ीने पर उपस्थिति के कारण, वह ऊपर न जा सका तथा देवी के प्रति तिरस्कारपूर्ण शब्दों का प्रयोग करके, उन पर प्रहार

करने को उद्यत हो गया। उस के इस व्यवहार से दुःखी होकर, देवी ने तत्कालीन महन्त, श्री सर्वेश्वरानन्द देव गोस्वामी के पास, उस सेवक की शिकायत की तथा महोत्सव के समय, पत्तलों तथा दोनों की प्रस्तुति की सेवा करने में, अपनी असमर्थता व्यक्त की। महन्त श्री सर्वेश्वरानन्ददेव जी ने सोचा कि रंकिनी देवी, देवी होते हुए भी, एक कन्या की भान्ति, श्री गोविन्द जी की सेवा कर रही थीं, किन्तु आधुनिक काल की गति के कारण, सभी लोग उन को देवी न समझकर, उनके प्रति साधारण मनुष्य की भाँति व्यवहार कर रहे थे। इस तथ्य को ध्यान में रखकर, महन्त जी ने शकाब्द १८१२ में रंकिनी देवी को निकटवर्त्ती बेलवन के मन्दिर में ही निवास करने का आदेश दिया। तब से देवी बेलवन के मन्दिर में निवास कर रही हैं।

❖

त्रयोदश अध्याय

श्री श्यामानन्द प्रभु का चतुर्थ बार ब्रजगमन

श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिक मुरारी को श्यामसुन्दरपुर से चाकुलिया भेज दिया। उन्होंने अकेले ही दूसरे दिन नीलाचल के लिए प्रस्थान किया। नीलाचल में, नीलाचल विहारी, श्री जगन्नाथ देव, श्री बलभद्र, श्री सुभद्रा जी तथा सुदर्शन जी के दर्शन करके, वे अपने चक्षुओं को सार्थक अनुभव करने लगे। श्री जगन्नाथ देव के मुखारविंद के दर्शन करके, श्री श्यानानन्द प्रभु प्रेम विह्वल होकर अश्रु विसर्जित करने लगे तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के मुखारविंद से निःसृत श्रीजगन्नाथाष्टक का भाव गम्भीर पाठ करने लगे। तत्पश्चात वे श्रीजगन्नाथ देव जी के चरणों में साष्टांग दण्डवत प्रपाम करके, श्री चैतन्य महाप्रभु के परिकरों से मिलने गए। उन लोगों के श्रीमुख से श्री गौर–सुन्दर जी के लीलामृत का पान करके, श्री श्यामानन्द प्रभु ने परमानन्द प्राप्त किया तथा अपने आपको धन्यातिधन्य अनुभव किया।

नीलाचल में उपरोक्त प्रकार कुछ दिन रहने के उपरान्त, श्री श्यामानन्द प्रभु ईसवी सन् १६१० में, श्रीधाम वृन्दावन को चल दिये। श्री वृन्दावन में पहुंच कर, श्रीमती राधारानी द्वारा प्रदत्त एवं अपने सेव्य, श्रीश्री राधाश्यामसुन्दर जी के दर्शन करके, वे भाव विभोर हो कर अश्रु विसर्जित करने लगे। उसी समय उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके प्राणनिधि, परम प्रिय सुहृद, श्री श्रीनिवासाचार्य भी, वृन्दावन पधारे हुए थे। वे उनसे मिलने गए। इतने समय बाद, एक दूसरे से मिल कर, वे बहुत ही प्रसन्न हुए और अपना समय श्रीकृष्ण कथा के रस में लीन होकर, व्यतीत करने लगे। उधर खेतरी में श्री नरोत्तम ठाकुर, उसी समय एक महामहोत्सव आयोजित करने की तैयारी में लगे थे। उन्होंने इस महोत्सव में भाग लेने के लिए, श्री श्रीनिवासाचार्य को ले जाने हेतु, श्री रामचन्द्र कविराज को वृन्दावन भेजा।

श्री श्यामानन्द प्रभु, कुछ दिन वृन्दावन में श्री श्रीनिवासाचार्य के साथ रहकर, मथुरा चले गए।

उधर श्री रसिकानन्द प्रभु, श्री श्यामानन्द प्रभु के निर्देशानुसार, उत्कल से श्रीधाम वृन्दावन पहुंच गए। श्रीश्री राधाश्यामसुन्दर जी की लीला स्थलियों के दर्शन करके, श्रीरसिक मुरारी जी बहुत आनन्द प्राप्त करने लगे। श्रीमती राधारानी द्वारा, श्री श्यामानन्द प्रभु को प्रदत्त, श्री श्यामसुन्दर जी के दिव्य श्रीविग्रह के दर्शन करके, वे भाव विभोर हो उठे। प्रेमातिरेक से उनके दोनों लोचनों से आंसुओं की धारा प्रवाहित होने लगी, जिस पर बहुत प्रयास करने पर भी वे नियन्त्रण न पा सके। फिर कल-कल निनादिनी, कलिंद तनया, श्रीकृष्ण प्रेयसी, श्री यमुना जी के नील जल के दर्शन करके, श्री रसिक मुरारी जी, प्रेमनिमज्जित होकर यमुना जी को बारम्बार प्रणाम करने लगे।

श्री रसिक मुरारी जी क्रमशः भद्रवन, लोहवन, श्रीवन, भाण्डीर वन, तालवन, खदीर वन, बोहलावन, कुमुद वन, काम्यवन, मधुवन तथा महावन आदि के दर्शन करके, गोवर्धन चले गए। श्री गिरिराज पर चढ़ कर, श्री रसिक मुरारी जी, श्रीगोपाल जी के दर्शन नहीं करेंगे, यह जान कर, श्रीगोपाल जी ने ब्रजवासी का रूप धारण करके, स्वयं पर्वत से नीचे आकर, उन को दर्शन दिये। श्री गोपाल देव जी ने, श्री रसिक मुरारी से कह, "रसिक! तुम शीघ्र उत्कल में जाकर, उत्कल के घर घर में, प्रेम भक्ति क प्रचार करो। मेरे अतिप्रिय, श्रीश्यामानन्द जी, मथुरा में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम मथुरा जाकर उन से मिलो।"

श्री गोपाल देव जी के आदेशानुसार, श्री रसिक मुरारी, मथुरा चले गये। वहाँ श्री केशव देव जी के दर्शन करते समय, उन की श्री श्यामानन्द प्रभु से भेंट हो गई। श्रीरसिक मुरारी ने, श्री श्यामानन्द प्रभु को जब साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया, तो श्री श्यामानन्द प्रभु ने उन को स्नेहालिंगन में आबद्ध करके, अपने पास बिठाया और उन की कुशल क्षेम पूछी। उसके पश्चात, श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्रीरसिकानन्द प्रभु से कहा, "रसिक! तुमने वृन्दावन आकर, समग्र ब्रजमण्डल के दर्शन करके, बहुत ही अच्छा किया। अब तुम उत्कल देश को वापिस चले जाओ।" श्री रसिक मुरारी कुछ दिन

और ब्रजमण्डल में रहकर, वहां के विशेष स्थानों के पुनः दर्शन करना चाहते थे, किन्तु श्री श्यामानन्द प्रभु ने उन से स्नेहपूर्वक कहा,"रसिक मुरारी! गोवर्धन में, श्री गोपाल देवजी ने ब्रजवासी के रूप में दर्शन देकर, तुमको उत्कल देश में जाने का जो आदेश दिया है, उस का कैसे उल्लंघन करोगे? उत्कल वासियों का उद्धार करने के लिए ही, भगवान श्रीकृष्ण ने हम दोनों को आदेश प्रदान किया है। उधर तुम्हारी विरह में, तुम्हारे आत्मीय जन, मुझ पर ही इस स्थिति के लिए दोषारोपण कर रहे हैं। इस लिए, तुम तुरन्त उत्कल देश को प्रत्यावर्तन करो।"

गोवर्धन में, भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रजवासी के रूप में जो उन को आदेश दिया था, वह सब श्री श्यामानन्द प्रभु को भी ज्ञात था, यह जान कर, श्री रसिक मुरारी आश्चर्य–चकित रह गए। श्री श्यामानन्द प्रभु, वास्तव में श्रीकृष्ण की प्रेयसी हैं, इस विषय में श्री रसिक मुरारी का रहा सहा संशय भी जाता रहा, क्योंकि श्रीकृष्ण के इस आदेश के विषय में, श्रीश्यामानन्द प्रभु को, स्वयं श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किस स्रोत से पता चल सकता था ? श्री रसिकानन्द प्रभु, श्री श्यामानन्द प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके, उनको साष्टांग दण्डवत प्रणाम करके, उत्कल देश को चले गए। श्री श्यामानन्द प्रभु वृन्दावन लौट आये। वृन्दावन लौटने पर, उनकी श्रीरामचन्द्र कविराज जी से भेंट हुई, जिन से उन को गौड़ मण्डल के सभी भक्तों की कुशल क्षेम का समाचार प्राप्त हुआ।

कुछ दिन और वृन्दावन में रहने के पश्चात् ईसवी सन्१६१३ में, श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री श्रीनिवासाचार्य तथा श्रीरामचन्द्र कविराज के साथ, गौड़ मण्डल के लिए प्रस्थान किया। प्रस्थान करते समय, श्री श्यामानन्द प्रभु, अपने सेव्य श्रीश्यामसुन्दर जी के विच्छेद से उत्पन्न आन्तरिक मर्मान्तक पीड़ा के कारण, अत्यन्त व्याकुल हो उठे। श्रीश्री निवासाचार्य ने प्रचार के लिए, श्री गोपालचम्पू तथा श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ग्रन्थों को साथ ले लिया। तीनों, शान्तिपुर, काटोआ और अम्बिका होते हुए, श्रीपाट जाजी ग्राम को गए। जब वे तीनों वनविष्णुपुर में पहुंचे, तो राजा वीर हम्वीर उन के दर्शन करके बहुत ही प्रसन्न हुए। राजा, श्री श्यामानन्द प्रभु के दर्शनों के लिए बहुत दिनों से लालायित थे। इस लिए उनके दर्शन प्राप्त

होने पर वे गद–गद होकर, भक्तिपूर्ण चित्त से, उन को बारम्बार प्रणाम करने लगे। श्रीश्यामानन्द प्रभु के साक्षात दर्शन करके तथा उन का संग करके, राजा वीर हम्वीर समझ गए कि उन्होंने श्री श्यामानन्द प्रभु के विषय में जो कुछ सुन रखा था, वे उससे भी कहीं अधिक गुणशाली थे।

राजा वीर हम्वीर के भक्ति भाव, अति विनम्र व्यवहार, वैष्णवोचित दीनता आदि को देखकर, श्री श्यामानन्द प्रभु बहुत ही प्रभावित हुए। वनविष्णुपुर में दस दिन श्रीकृष्ण कथा पीयूष का वर्षण करने के उपरान्त, उन्होंने वहां से उत्कल में जाने की इच्छा प्रकट की। उन की इस अभिलाषा के विषय में जान कर, राजा वीर हम्वीर भावी विच्छेद के कारण अत्यन्त व्याकुल हो उठे, किन्तु यह जानकर कि श्रीमन्महाप्रभु की इच्छानुसार उत्कल देश के जीवों का उद्धार करने का गुरु दायित्व, श्री श्यामानन्द प्रभु के कंधों पर था, राजा वीर हम्वीर ने उनको और अधिक दिन वनविष्णुपुर में रोकने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने, श्री श्यामानन्द प्रभु को बहुत से बहुमूल्य उपहार प्रदान किये तथा उन उपहारों को ले जाने की उचित व्यवस्था भी कर दी। श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री श्रीनिवासाचार्य सहित सब लोगों से विदा ली। श्री श्रीनिवासाचार्य, उन का हाथ थाम कर, बहुत दूर तक उन को छोड़ने गये। राजा वीर हम्वीर, श्री रामचन्द्र कविराज तथा बहुत से अन्य भक्तों ने भी उन का अनुगमन किया तथा उन को भावभीनी विदाई दी। वनविष्णुपुर से श्रीश्यामानन्द प्रभु, चलते–चलते उत्कल देश के नृसिंहपुर में पहुंच गये।

❖

चतुर्दश अध्याय

खेतरी में श्री नरोत्तम ठाकुर जी के श्रीविग्रह प्रकाश महोत्सव

श्री भगवान, उनके नाम एवम् उनके श्रीविग्रह, एक ही हैं, उन में कोई भेद नहीं। उनकी विभिन्न लीलाओं का श्रवण करने पर ऐसा ही अनुभव होता है। स्वरूप सर्वदा प्रत्यक्ष रूप से विराजमान होकर, सभी को दर्शन नहीं देते किन्तु श्रीविग्रह, सर्वत्र विराजमान हो सकते हैं। भक्त लोग अपनी इच्छानुसार, श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा करके, उन की सेवा का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। इन श्रीविग्रह तथा स्वरूप में कोई भेद नहीं। श्री भगवान की विभिन्न लीलाओं से ये प्रमाणित हैं। अम्बिका कालना में, श्री गौर–नित्यानंद जी के श्रीविग्रहों ने, श्री गौरीदास पण्डित के सम्मुख, स्वयं प्रसाद ग्रहण किया था तथा प्रेममग्न होकर नृत्य किया था। इस घटना का, इसी ग्रन्थ में पहले वर्णन किया जा चुका है। श्रीश्री चैतन्यचरितामृत में वर्णन है कि साक्षीगोपाल जी, छोटे विप्र के आह्वान पर, उनके पीछे पीछे चल कर, वृन्दावन से विद्यानगर चले आये थे और इतना ही नहीं, छोटे विप्र की प्रार्थना पर,विचार सभा में उस के पक्ष में साक्षी भी दी थी। त्रेतायुग में, श्री रामचन्द्र जी के द्वारा निर्मित, श्री गोपीनाथ जी ने, कलियुग में अपने प्रिय भक्त, श्री माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी के लिये, खीर चुराकर छिपा दी थी और मध्य रात्रि में, मन्दिर के पुजारी को जगाकर, उसी के हाथ वह खीर, श्री माधवेन्द्र पुरी के पास भिजवाई थी। ये तथ्य सर्वविदित हैं। ये घटनाएं इस बात का प्रमाण हैं कि श्रीविग्रह तथा स्वरूप अभिन्न हैं।

ईसवी सन १६१३ में, श्री नरोत्तम ठाकुर के मन में, श्रीविग्रह की सेवा की तीव्र इच्छा जाग्रत हुई। एक दिन रात्रि में उन्होंने स्वप्न देखा।

गौरांग, बल्लभीकान्त, श्री कृष्ण आर हय।
ब्रजमोहन, राधाकान्त, राधारमण एइ छय।। –प्रेम विलास

(अर्थात गौरांग, वल्लभी कान्त, श्रीकृष्ण, ब्रजमोहन, राधाकान्त, राधारमण, इन छः श्रीविग्रहों के स्वप्न में दर्शन करके, श्री नरोत्तम ठाकुर की निद्रा भंग हो गई।)

इन श्रीविग्रहों के दिव्य रूप, सौंदर्य एवं माधुर्य का स्मरण करके, श्री नरोत्तम ठाकुर की आंखों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे, जिन से उनका वक्षःस्थल प्लावित हो गया। सुबह उन्होंने स्वप्न के विषय में अपने पिता, श्री कृष्णानन्द दत्त को बताया। उन्होंने यह भी बता दिया कि उनके मन में श्रीविग्रह प्रतिष्ठा की प्रबल इच्छा जाग्रत हो उठी थी। अपने प्रिय पुत्र की यह शुभ अभिलाषा पूर्ण करने के लिये, राजा श्री कृष्णानन्द दत्त ने, स्वयं रुचि (दिलचस्पी) लेकर, यह कार्य सम्पन्न करने का वचन दिया। श्री नरोत्तम ठाकुर ने श्रीमती राधारानी तथा उपरोक्त अन्य पांच श्रीविग्रहों के साथ, श्री चैतन्य महाप्रभु के श्रीविग्रह के निर्माण का कार्य सुदक्ष मूर्तिकारों को सौंप दिया। श्री नरोत्तम ठाकुर स्वयं बुघरी में जाकर, श्री श्रीनिवासाचार्य से मिले और श्रीविग्रह प्रकाशोत्सव का सारा दायित्व उनको सौंप दिया। श्री श्रीनिवासाचार्य ने यह दायित्व सहर्ष स्वीकार कर लिया और श्री नरोत्तम ठाकुर ने उनके निर्देशानुसार, महोत्सव की तैयारी आरम्भ कर दी।

श्री नरोत्तम ठाकुर की इच्छा के अनुरूप, श्रीकृष्ण के पाँच श्रीविग्रहों के निर्माण का कार्य यथासमय पूर्ण हो गया, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के श्रीविग्रह, श्री ठाकुर की इच्छा के अनुरूप नहीं बन पाये, जिसके कारण वे अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो गये एवं कातर होकर, श्री गौरांगसुन्दर के चरणारविन्द में अपने मन की अभिलाषा प्रकट करने लगे। इस कातर प्रार्थना से पसीज कर, एक रात श्रीमन्महाप्रभु ने स्वप्न में श्री ठाकुर से यों कहा :–

सन्यासेर पूर्बे निज मूर्ति निरमिया।
केह नाहि जाने राखि गंगाय डूबाइया।।
तुमि प्रेम मूर्ति मोर, तोरे करि अनुग्रह।
विप्रदासेर धान्य गोलाय रेखेछि बिग्रह।।

–प्रेम विलास–१६

(अर्थात मैंने सन्यास ग्रहण करने से पहले, अपनी मूर्ति निर्मित करके, गंगा जी में डुबो कर रख दी थी, जिसे कोई नहीं जानता। तुम मेरी

प्रेम मूर्ति हो इस लिये मैं तुम पर अनुग्रह करके, बता रहा हूँ कि वह मूर्ति (श्रीविग्रह) विप्रदास के धान के गोला (स्टोर–गोदाम) में है।)

श्रीमन्महाप्रभु का स्वप्नादेश पाकर, श्री नरोत्तम ठाकुर छानबीन करते हुए, स्वयं श्री विप्रदास के पास गए। पूछने पर श्री विप्रदास ने बताया कि उनके धान तथा सरसों के बहुत से गोदाम थे, किन्तु वे सभी विषधर सर्पो से परिपूर्ण थे। मनुष्य को देखकर वे सर्प फुफकारते रहते थे। श्री नरोत्तम ठाकुर, श्री विप्रदास को समझा बुझाकर, ज्योंही गोदाम में गए, तो सारे सर्प अन्तर्हित हो गये। तब श्री ठाकुर ने एक गोदाम से, श्री चैतन्य महाप्रभु की मूर्ति निकाल ली।

गोला हइते तुलिलेन चैतन्येर मूर्ति।
देखिया सकल लोकेर गेल सब आर्त्ति।।

–प्रेम विलास

(अर्थात गोदाम से श्री चैतन्य देव की मूर्ति को निकाला, जिसे देखकर सभी लोगों का दुःख दूर हो गया।)

उन चिदानन्दघन, सौंदर्य से पूर्ण श्री गौरांगसुन्दर जी के श्रीविग्रह को अपने वक्ष पर रख कर, प्रेम से गद–गद, श्री नरोत्तम ठाकुर, अश्रुपूर्ण लोचनों सहित, खेतरी में वापिस पहुँचे। बाकी सभी श्रीविग्रहों का पहले ही निर्माण हो चुका था। अब श्रीमन्महाप्रभु के श्रीविग्रह भी स्वयं प्रकाशित हुए।

श्री श्रीनिवासाचार्य के निर्देशन में, श्रीविग्रहों के प्रकाश का महोत्सव, अत्यन्त समारोह–पूर्वक आरम्भ हुआ। गौड़ मण्डल, नीलाचल, श्री ब्रजमण्डल सहित भारतवर्ष के सभी वैष्णवों को इस समारोह में आमंत्रित किया गया था। इस लिये, इस समारोह में बहुत चहल पहल थी। श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में, श्री रसिकानन्द प्रभु द्वारा आयोजित रास महोत्सव के सिवाय ऐसा भव्य समारोह कहीं अन्यत्र आयोजित होने का अन्य कोई दृष्टान्त उपलब्ध नहीं। निमंत्रित वैष्णव यथासमय खेतरी में पहुंचे। श्री श्रीनिवासाचार्य ने स्वयं खेतरी में उपस्थित होकर महोत्सव का संचालन किया। उत्कल से श्रीश्यामानन्द प्रभु अपने बहुत से शिष्यों के साथ, महोत्सव में भाग लेने के लिए खेतरी पहुंचे। श्रीश्री निवासाचार्य व श्रीनरोत्तम ठाकुर ने उनको आलिंगनाबद्ध करके, उनका अंतरंग स्वागत किया।

जब श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु ने, श्री श्रीनिवासाचार्य को दण्डवत प्रणाम किया तो उन्होंने उन दोनों को भूमि पर से उठाकर,श्री रसिकानन्द प्रभु को सम्बोधित करते हुए, अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा, "वत्स! इस महोत्सव को सुसम्पन्न करने का गुरुदायित्व तुम्हारे कंधों पर डाल रहा हूँ। श्री रसिकानन्द प्रभु ने आचार्यपाद के इस आदेश को हाथ जोड़ कर शिरोधार्य किया। इसके पश्चात् श्री श्रीनिवासाचार्य के आदेश पर, श्री गोविन्द कविराज ने श्रीश्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु को स्वयं प्रकटित श्री गौरसुन्दर जी के अनिर्वचनीय, लावण्यमय श्रीविग्रह के दर्शन कराये । दर्शन करके दोनों महानुभाव, प्रेम विह्वल होकर, अश्रुविसर्जित करने लगे। तदुपरान्त, उन दोनों ने अन्य पांच श्रीविग्रहों के भी दर्शन किये।

महोत्सव के निमंत्रण प्राप्त होने पर, खड़दह से मां जाह्नवा, शांतिपुर से श्री अद्वैत पुत्र श्री अच्युतानन्द,श्री गोपाल आदि, अम्बिका से श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर, नवद्वीप से श्री श्रीवास पण्डित के भ्राता श्री श्रीपति व श्री श्रीनिधि, श्रीखण्ड से, श्री रघुनन्दन, काटोआ से श्री यदुनन्दन, खेतरी पहुँचे। श्रीधाम वृन्दावन, नवद्वीप, नीलाचल तथा गौड़मण्डल के भिन्न भिन्न स्थानों से वैष्णवों ने खेतरी में पहुँचकर महोत्सव में भाग लिया। श्री रसिकानन्द प्रभु ने बाहर से आये वैष्णवों के निवास के लिए ऐसी सुन्दर व्यवस्था की कि सभी भक्त लोग, प्रसन्न हो गये। श्री श्यामानन्द प्रभु ने, गुरुदेव श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर जी की सेवा का भार स्वयं ग्रहण किया।

ईसवी सन् १६१३ की फाल्गुनी दौल पूर्णिमा, यानि कि श्री गौरसुन्दर जी के शुभ आविर्भाव वाले दिन, श्रीश्रीनिवासाचार्य ने माँ जाह्नवा तथा उपस्थित महन्तों से आज्ञा लेकर, श्रीविग्रहों के अभिषेक का कार्य प्रारम्भ किया।

श्री रूप गोस्वामी कृत ग्रन्थादि बिधाने।
करिला सकल क्रिया अति साबधाने।।
श्री कृष्णेर महाभिषेकेर बिधिमते।
छय बिग्रहे अभिषेक कइला आनन्दित चित्ते।।

— प्रेम विलास—१६

(अर्थात श्री रूप गोस्वामी के द्वारा रचित "श्रीकृष्ण महाभिषेक पद्धति" ग्रन्थ के विधान के अनुसार, श्री श्रीनिवासाचार्य प्रभु ने अत्यन्त सावधान होकर, श्रीकृष्ण आदि छः श्रीविग्रहों का महाभिषेक किया।)

महाभिषेक के पश्चात, पूजन करके, श्री श्रीनिवासाचार्य जी ने स्वंय ही आरती भी उतारी। सभी उपस्थित महन्तों व वैष्णवों द्वारा, श्रीविग्रहों को दण्डवत प्रणाम करने के पश्चात, श्री नरोत्तम ठाकुर ने भी निम्नलिखित मंत्र का पाठ करते हुए, साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया:–

गौरांग, बल्लभीकान्त, श्री कृष्ण, ब्रजमोहन।
राधारमण, हे राधे राधाकान्त नमोऽस्तुते।।

–प्रेम विलास–१६

श्रीविग्रहों को नैवेद्य अर्पित करने के उपरान्त, श्री श्रीनिवासाचार्य ने मन्दिर से बाहर आकर, श्रीमन्महाप्रभु के परिकरों तथा मां जाह्नवा को प्रणाम किया। तब माँ जाह्नवा ने अति स्नेहपूर्वक श्री श्रीनिवासाचार्य से पूछा "श्रीनिवास! तुमने श्री गौरसुन्दर का पूजन कौन से मंत्र द्वारा किया?"

इस पर श्री श्रीनिवासाचार्य ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया–

तिहों कहे गोस्बामी गणेर आज्ञा द्वारे।
राधा कृष्ण युगल मंत्रे पजिनु चैतन्येरे।।
दशाक्षर गोपाल मंत्रे तांर पूजार बिधाने।
चैतन्य पूजिते आज्ञा कैला गोस्बामीर गणे।।

–प्रेम विलास–१६

(अर्थात दशाक्षर गोपाल मंत्र से श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करने की आज्ञा गोस्वामियों ने दी है। इसलिए इस युगल मंत्र से ही मैंने श्री चैतन्य देव का पूजन किया हैं।)

इसके उपरान्त उपस्थित महन्तों तथा वैष्णवों ने, श्री नरोत्तम ठाकुर को संकीर्तन प्रारम्भ करने का आदेश दिया। ठीक इसी समय, श्री नरोत्तम ठाकुर जी को अकस्मात, पूर्व रात्रि का स्वप्न याद आ गया।

रात्रि योगे नरोत्तम देखिछे स्बपन।
श्री चैतन्य आसि तारे कहिछे बचन।।
कालि महासंकीर्तने भक्तगण सने।

करिब नर्तन सबे देखिबे नयने।।

—प्रेम विलास—१६

(अर्थात रात्रि के समय श्री नरोत्तम ठाकुर स्वप्न में देख रहे हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु उन से बोले कि कल महासंकीर्तन में, मैं भक्तगणों के साथ नृत्य करूंगा। यह सब, सभी अपनी आंखों से देखेंगे।)

नाम संकीर्तन प्रारंम्भ करते समय,श्री नरोत्तम ठाकुर को उपरोक्त स्वप्न की बात याद आ गई। आज स्वयं श्रीमन्महाप्रभु महासंकीर्तन में प्रकट होंगे, इस उत्कष्ठा से, श्रीनरोत्तम ठाकुर ने अश्रुसिक्त नेत्रों तथा प्रेम विभोर चित्त से संकीर्तन आरम्भ किया। श्री देवीदास ने मधुर मृदंग एवम् श्रीगौरांगदास ने करताल (मंजीरा) बजाना आरम्भ किया। वल्लभ तथा गोकुल आदि, श्री नरोत्तम ठाकुर के मधुर कण्ठ से कण्ठ मिलाकर, सुमधुर स्वर में कीर्तन करने लगे। खेतरी नगरी ने मानो नवद्वीप का रूप धारण कर लिया हो । संकीर्तन का रंग आज कुछ और ही था।

ऐसे समय में, सभी उपस्थित लोगों ने अकस्मात विस्मयपूर्वक क्या देखा, वह निम्नलिखित पयारों में ध्यान पूर्वक पढ़िये:—

महा भक्त नरोत्तमेर भक्तिर प्रभावे।
गणसह गौर राय हइल आबिर्भाबे।।
नित्यानन्द, अद्वैत, श्री बास, गदाधर ।
श्री मुरारी, हरिदास, स्बरूप दामोदर।।
रूप—सनातन , गौरी दास आदि लइया।
संकीर्तने करे नृत्य आनन्दित हइया।।
श्री अच्युतानन्द आदि जत भक्तगण।
सबारे लइया नाचे शचीर नन्दन।।
जत जत भक्त छिल कारो बाह्य नाइ।
आनन्दे नाचे अद्वैत—गौरांग, निताई।।

—प्रेम विलास—१६

(अर्थात परम भक्त श्री नरोत्तम ठाकुर की भक्ति के प्रभाव से, श्री गौरसुन्दर अपने परिकरों के साथ प्रकट हुए। श्री नित्यानन्द, श्री अद्वैत, श्री श्रीवास, श्री गदाधर, श्री मुरारी, श्रीहरिदास, श्री स्वरूप दामोदर, श्री रूप, श्री

सनातन, श्रीगौरीदास, श्री अच्युतानन्द आदि भक्तों को लेकर शचीनन्दन, श्रीगौरसुन्दर जी, परमानन्द से नृत्य कर रहे थे। इस दृश्य को देखकर, भक्तगण वाह्य ज्ञान से शून्य हो गए।)

परिकरों सहित श्री गौरसुन्दर के माधुर्य–पूर्ण नृत्य को देखकर, उपस्थित महन्त व वैष्णवगण भी आनन्दातिरेक से प्रफुल्लित होकर, प्रेमविभोर होकर, उनके साथ नृत्य करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु स्वयं प्रकट होकर उन लोगों के साथ नृत्य कर रहे थे, ऐसे आनन्दमय वातावरण में उन लोगों का वाह्य ज्ञान लुप्त होता चला गया और वे उद्दण्ड होकर, नृत्य में लीन होते गए। तभी अकस्मात महाप्रभु, लीला संवरण करके, अप्रकट हो गये।

के बूझिते पारे प्रभुर अलौकिक लीला।
जैछे प्रकटिला तैछे अदर्शन हैला।।

–प्रेम विलास–१६

(अर्थात श्री गौरसुन्दर जी की अलौकिक लीला को कौन समझ सकता है। वे जैसे प्रकट हुए थे, वैसे ही अप्रकट भी हो गये।)

जब श्रीमन्महाप्रभु अपने परिकरों सहित अन्तर्हित हो गये, तो सभी उपस्थित वैष्णवों तथा महन्तों का बाह्य ज्ञान लौट आया। श्रीमन्महाप्रभु को अपने मध्य न पाकर, सब भक्तगण मर्मान्तक पीड़ा अनुभव करने लगे। वे विरह अनुताप से यों छटपटाने लगे कि उनकी व्याकुलता देखकर, पाषाण ह्दय भी पिघल गये। वे लोग व्याकुल होकर भूमि पर लोटने लगे तथा कहने लगे, "हाय–हाय, हे महाप्रभु! आप हमलोगों को छोड़कर अपने परिकरों के साथ किधर चले गये हैं? शान्तिपुरनाथ श्री अद्वैत ठाकुर! गौर–निताई के साथ आपने भी हम लोगों को छोड़ दिया है?" भक्तों का विलाप रोके नहीं रुक रहा था। श्री नरोत्तम ठाकुर, श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री श्रीनिवासाचार्य भी, श्री गौरसुन्दर जी की विरह में, दीर्घ निश्वास त्याग करते हुए, भूमि पर लोटते हुए छटपटा रहे थे।

जब लोगों का क्रन्दन थमा और उनके मन कुछ शान्त हुए, तो फाग खेलने का कार्यक्रम आयोजित किया गया। श्री श्रीनिवासाचार्य ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि सभी भक्त लोग, श्रीविग्रहों के अंगों में रंग

देकर फाग क्रीड़ा आरम्भ करें। मां जाह्नवा द्वारा फाग अर्पण करने के पश्चात् सभी उपस्थित गौर भक्त आगे आ–आकर, श्रीविग्रहों के अंगों में फाग देने लगे। श्रीविग्रहों को फाग अर्पण करने के पश्चात्, महन्त तथा वैष्णवगण, एक–दूसरे के साथ फाग खेलने लगे। फाग क्रीड़ा से सम्बन्धित सुमधुर कीर्तन की ध्वनि से, खेतरी के ज़मीन–आसमान गूंजने लगे। वहां के सभी स्थावर जंगम प्राणी, मनुष्य, पशु–पक्षी, कीट–पतंग, पुष्करणियों एवं नदियों का जल तक गुलाल के रंग से लाल हो गये।

श्री कृष्णेर जन्म यात्रा बिधि अनुसारे।
पूजये गौरांग चांद हरिष अन्तरे।।
पद्मोक्त श्री राधा कृष्णेर युगल ध्याने।
षोड़श उपचारे पूजिला आनन्दित मने।।
कृष्ण–गौर एक इथे भेद बुद्धि जार।
से जाय नरके तार नाहिक निस्तार।।

—प्रेम विलास—१६

(अर्थात् श्री कृष्ण के जन्म महोत्सव की विधि के अनुसार, श्री गौरसुन्दर का आनन्दपूर्वक पूजन करने लगे। पद्मपुराणोक्त, श्री राधाकृष्ण के युगल ध्यान से, षोड़शोपचार द्वारा, श्री गौरांग की पूजा की। श्रीकृष्ण तथा गौर एक ही हैं। जो इन में भेद बुद्धि रखता है, वह नरक में जाता है। उसका निस्तार नहीं।)

महोत्सव के सफलतापूर्वक सम्पन्न होने के पश्चात्, बाहर से आये हुए वैष्णव, एक–एक करके विदा होने लगे। श्री श्रीनिवासाचार्य तथा श्री श्यामानन्द प्रभु, इन वैष्णवों को यथायोग्य वस्त्र व दक्षिणाऽदि देने लगे। श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर ने, विदा होते समय श्री श्रीनिवासाचार्य से कहा, "वत्स श्रीनिवास! बीच–बीच में श्रीपाट अम्बिका में आकर, श्री गौर–नित्यानन्द प्रभु द्वय के दर्शन करते रहना तथा श्री श्यामानन्द को अपना एकांत निजजन समझना।"

श्री श्रीनिवासाचार्य ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "प्रभु! श्यामानन्द मेरा ही नहीं, अपितु श्री नरोत्तम, श्री रामचन्द्र तथा अन्य सभी वैष्णवों का प्राण है। उस पर श्री गौरसुन्दर जी की पूर्ण कृपा है।"

इसके पश्चात् श्रील हृदय चैतन्य अधिकरी ठाकुर, श्री श्रीनिवासाचार्य, श्री नरोत्तम ठाकुर, श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु आदि को स्नेहाशीर्वाद प्रदान करते हुए, अपने शिष्यों के साथ, श्रीपाट अम्बिका को चले गये।

श्री श्रीनिवासाचार्य, श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्रीरसिकानन्द प्रभु, महोत्सव के पश्चात् भी कुछ दिन खेतरी में ही रहे। इन दिनों को, श्रीकृष्ण कथा रस में मग्न रहते हुए बिता कर, श्री श्रीनिवासाचार्य, श्री नरोत्तम ठाकुर की सहमति से, श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु को साथ लेकर बुधनी को चले गये। बुधनी से श्री श्रीनिवासाचार्य जाजी ग्राम चले गए, जबकि श्री श्यामानन्द प्रभु ने नवद्वीप, अम्बिका व धारेन्दा के लिए प्रस्थान किया। पहले श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्रीधाम नवद्वीप में श्री गौरसुन्दर जी की लीला स्थलियों के दर्शन करके अम्बिका के लिए प्रस्थान किया। अम्बिका में श्रीगुरु चरणारविंद और श्री गौरसुन्दर के लावण्यमय श्रीविग्रह के दर्शन करके वे धारेन्दा चले गए।

श्री रसिकानन्द प्रभु के खेतरी से रोहिणी आगमन से पहले, उनके पिता, श्री अच्युतानन्द देव का स्वर्गवास हो गया था। पिता के राज्य और निजी सम्पत्ति को लेकर, उन के भाइयों में प्रबल हिंसानल प्रज्वलित हो उठा था। किन्तु श्रीरसिकानन्द प्रभु ने राज्य और सम्पत्ति की ओर मुड़कर भी नहीं देखा और साधन भक्ति के चौंसठ अंगों के यजन–याजन में ही अपने आपको सम्पूर्णरूपेण समर्पित कर दिया। श्रीरसिकानन्द प्रभु के भ्राता, उनके वैष्णवोचित आचार–विचार से प्रकटतः विरोध प्रदर्शित करने लगे व उनकी पत्नियां, श्रीमती श्यामदासी ठाकुरानी जी के वैष्णव सेवा कार्यों से भी असन्तोष प्रकट करने लगीं।

श्री रसिकानन्द प्रभु ने, अपने भ्राताओं और उनकी पत्नियों द्वारा, अपने साधन भजन में विघ्न डालने के कारण असन्तुष्ट होकर, अपनी पत्नी सहित रोहिणी नगर छोड़ दिया। उनके ज्येष्ठ भ्राता, श्री काशीनाथ ने सुवर्णरेखा नदी के तीरवर्ती जंगल को साफ करवाकर, काशीपुर नामक ग्राम की स्थापना की थी। ईसवी सन सोलह सौ चौदह में, श्री रसिकानन्द प्रभु, सपरिवार इसी काशीपुर में आकर रहने लगे। वे मयूरभंज के महाराजा द्वारा पूर्व काल में अपहृत अपने कुल देवता को, महाराज से वापिस ले आये थे।

रोहिणी नगर त्याग करते समय, वे कुलदेवता के उन श्रीविग्रह को अपना एकमात्र प्राणधन मानकर, काशीपुर ले आये। श्री श्यामानन्द प्रभु, श्रीरसिकानन्द प्रभु के इस नये निवास स्थान में आए। श्रीरसिकानन्द प्रभु के विनम्र निवेदन पर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने, उनके कुलदेवता का नामकरण किया, श्री गोपीवल्लभराय और श्रीविग्रह के नामानुसार, ग्राम का नाम हो गया गोपीवल्लभपुर। श्रीधाम वृन्दावन में, जिस प्रकार यमुना जी वृन्दावन को तीन दिशाओं से परिवेष्टित करके प्रवाहित होती हैं, ठीक उसी प्रकार, सुवर्णरेखा नदी भी गोपीवल्लभपुर को तीन ही दिशाओं से परिवेष्टित करके प्रवाहित होती है। जिस प्रकार श्रीधाम वृन्दावन में द्वादश वन हैं, उसी प्रकार श्री गोपीवल्लभपुर में भी बेलवन और ताड़ वन आदि द्वादश वन हैं। इसी प्रकार, श्रीधाम वृन्दावन की भांति, श्री गोपीवल्लभपुर में भी गोपेश्वर महादेव हैं। श्रीधाम वृन्दावन के वंशीवट की भांति, श्री गोपीवल्लभपुर में गौ–कर्ण वट है। इन सब कारणों से, वैष्णव जगत में, श्रीगोपीवल्लभपुर ने, गुप्त वृन्दावन के नाम से ख्याति अर्जित की है।

❖

पंचदश अध्याय

श्री रसिकानन्द प्रभु द्वारा भीम एवं श्रीकर का उद्धार

श्री श्यामानन्द प्रभु के जीवन चरित्र की पर्यालोचना करते समय, उन के प्रियतम शिष्य, श्री रसिकानन्द प्रभु के चरित्र का संक्षेप में वर्णन करना, आवश्यक हो जाता है, क्योंकि ये गुरु–शिष्य वस्त्र के ताने–बाने की भांति परस्पर ओत–प्रोत हैं–अभिन्न हैं। श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु की लीलाएं, एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। यदि श्री रसिकानन्द प्रभु की लीलाओं को प्रकाशित न किया जाए तो श्री श्यामानन्द प्रभु की लीलाएं सम्यक रूप से प्रस्फुटित नहीं हो सकतीं। इसीलिए गुरु की लीलाओं के साथ, उन के प्रियतम शिष्य की लीलाओं का भी संक्षिप्त रूप से यहां–वहां वर्णन किया गया है।

अपने श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में अवस्थान के समय, श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिकानन्द प्रभु को एक दिन अपने पास बुलाकर, स्नेहपूर्वक यों कहाः–

एक दिन रसिकेरे कहे श्यामानन्दे।
आमारे एकं भिक्षा देह मनेर आनन्दे।।
एइ भिक्षा सब जीबे कर परित्रान।
सबाकारे देह हरेकृष्ण षोलनाम।।
ब्रह्म क्षेत्री बैश्य शूद्र जत जत जन।
चाण्डाल पुक्कश हुन आछे जत जन।।
सबाकारे कर कृष्ण प्रेम भक्ति दान।
तोमा स्थाने एइ भिक्षा मागिनु निदान।।
किबा राजा किबा प्रजा किबा साधुजन।
किबा शिशु, किबा वृद्ध, किबा स्त्रीगण।।

–श्रीश्री रसिक मंगल दक्षिण (४/३–७)

(अर्थात् श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिकानन्द प्रभु से कहा, "तुम आनन्दपूर्ण चित्त से यह भिक्षा प्रदान करो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चांडाल, पुक्कश, हूण, शिशु, वृद्ध, राजा, प्रजा, स्त्री–पुरुष, सभी को तुम षोड़श नाम वाला हरे कृष्ण नामक महामंत्र प्रदान करो, सब को श्रीकृष्ण की प्रेम भक्ति प्रदान करो।)

इस पर श्री रसिकानन्द प्रभु ने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर, श्री श्यामानन्द प्रभु से कहा, "आप मुझे आदेश देने में इस प्रकार संकोच क्यों कर रहे हैं? ऐसी कौन सी वस्तु है, जो मैं आप को दे नहीं सकता? मैं तो अपने तन और प्राण तक आप के श्रीचरणों में समर्पित कर चुका हूं। आप मुझे जो भी आदेश देंगे, वह मेरे लिए वेदवाक्य होगा तथा मैं तत्क्षण उसे पूर्ण करने का यथासाध्य प्रयास करूंगा।" यह कह कर श्री रसिकानन्द प्रभु ने, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणारविन्द में साष्टांग दण्डवत प्रणाम करते हुए, उनके आदेश को शिरोधार्य किया। श्री श्यामानन्द प्रभु ने उनके मस्तक पर, कर–संचालन करते हुए जीवोद्धार करने के लिए, उनमें पूर्ण शक्ति का संचार किया। इसके पश्चात् श्री श्यामानन्द प्रभु चाकुलिया में श्री दामोदर मिश्र के घर चले गए। श्री दामोदर मिश्र को भी उन्होंने उत्कल के घर–घर में प्रेम भक्ति का प्रचार करने एवं ब्राह्मण से चाण्डाल पर्यन्त, सभी को श्री हरिनाम महामंत्र प्रदान करने का आदेश दिया।

जिस समय श्रीश्यामानन्द प्रभु तथा श्रीरसिकानन्द प्रभु ने, उत्कल में धर्मोपचार का कार्य प्रारम्भ किया था, उस समय उत्कल वासियों की दशा अत्यन्त शोचनीय और मर्मान्तिक थी। पठानों के आक्रमण के भय से, इस देश के सारे खण्ड राज्य भयाक्रान्त थे। पठानों के अत्याचारों के भय से, हज़ारों हिन्दु, अपना धर्म छोड़कर मुसलमान धर्म ग्रहण कर रहे थे। जो अपने धर्म का परित्याग नहीं करते थे, वे अपने देश को छोड़कर अन्यत्र जा रहे थे, क्योंकि पठान इन लोगों की हत्या कर देते थे। वैसे भी उत्कल वासी उस समय जीव हिंसा में लिप्त थे। कई लोग, शक्ति पूजा के नाम पर, सहस्रों बकरियों और भैंसों आदि की बलि देकर, इन मूक पशुओं के मांस से अपनी रसना को तृप्त करते थे, तो कई लोग ब्राह्मणों, वैष्णवों तथा साधुओं की ताड़ना करके, उनका सर्वस्व हरण कर लेते थे तथा लूटे हुये

धन को कुकर्मों पर व्यय करते थे। श्रीहरिनाम की मधुर ध्वनि को सुनते ही, संकीर्तन–कारियों को मारने के लिये दौड़ते थे। ऐसे पशु–स्वभावयुक्त दुष्ट मानवों को, श्री श्यामानन्द प्रभु व श्रीरसिकानन्द प्रभु, भक्तिरूपी अमृत का पान करवाकर, प्रेमोन्मत्त करने में जुट गये थे।

अब जब श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिकानन्द प्रभु को उत्कल के घर घर में श्री हरिनाम प्रचार करने का आदेश दिया तो:–

सेइ हइते शिष्य करे अच्युतनन्दन।
सबाकारे दिल कृष्ण प्रेम भक्ति धन।।
लौह जेन परश छुंइले हय सोना।
रसिक परशे कार्ष्ण हइल सर्बजना।।

–श्री श्री रसिक मंगल–दक्षिण ४/१२,१५

(अर्थात तब से श्री रसिकमुरारी अधिक से अधिक मनुष्यों को शिष्य बनाने लगे एवं सबको श्रीकृष्ण प्रेम भक्ति प्रदान करने लगे। जिस प्रकार पारसमणि के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है, उसी प्रकार श्रीरसिकमुरारी के स्पर्श से सभी लोग श्री कृष्ण भक्त बनने लगे।)

इस प्रकार भक्ति धर्म का प्रसार करते हुये, श्रीरसिकानन्द प्रभु, श्रीश्यामानन्द प्रभु के जन्म स्थान धारेन्दा पहुँच गये। उन दिनों इस गाँव में सद्गोप वंशोद्भूत, भीम तथा श्रीकर नामक दो ज़मींदार निवास करते थे। ये दोनों अत्यन्त दुष्ट प्रकृति के थे तथा उद्दण्डता व नृशंसता में, नवद्वीप के जगाई तथा मधाई से कहीं अधिक बढ़कर थे। उनके दुष्ट आचरण के विषय में सुनकर, श्रीरसिकानन्द प्रभु ने उस गाँव में सबसे पहले, उन् दोनों का ही उद्धार करने का निश्चय किया।

महान्तेर स्बभाब हय तारिते पामर।
निजकार्य नाइ तबु जान तार घर।।

–श्रीश्री चैतन्यचरितामृत्

(अर्थात् पतितों का उद्धार करना, महन्तों का स्वभाव होता है। अपना कोई कार्य न होने पर भी, महन्त केवल पतित जीवों का उद्धार करने के लिये ही उनके घर जाते हैं।)

श्री रसिकानन्द प्रभु संकीर्तन करते हुये, अपने परिकरों सहित, भीम

और श्रीकर की सभा में पहुँच गये किन्तु उनका स्वागत करना तो दूर की बात, माथे पर तिलक, हाथ में नाम माला धारण किये हुये श्री रसिकानन्द प्रभु को देखकर, वे दोनों भाई, क्रोधान्ध हो गये और नानाप्रकार के दुष्ट वचन बोलकर, वे उनको धिक्कारने लगे। भीम और श्रीकर कहने लगे, "श्री अच्युतानन्द के पुत्र होते हुये भी तुमने यह कौन सा काम पकड़ा हुआ है? तुमको यह कुबुद्धि किसने प्रदान की? अपनी पढ़ाई छोड़कर, एक टुकड़ा कपड़ा पहनकर, सम्पत्ति के बटवारे में झगड़ा जानकर, सबकुछ छोड़छाड़, पलायन कर आये हो तथा इधर उधर भागते फिरते हो? किसके कहने पर तुमने छोटी उम्र में ही वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया? अब तुम अपने कुटुम्बीजनों का पालन कैसे करोगे? तुम्हारे पिता, श्री अच्युतानन्द, मल्लभूम देश के राजा हैं। उनके कुल में तुम्हारे जैसे कुपुत्र ने कैसे जन्म ले लिया? राजपुत्र होकर भी तुम वैष्णवों की भांति घर घर में भीख माँगते फिरोगे? क्या तुम्हारे कारण, राजा अच्युतानन्द के वंश की मर्यादा हानि नहीं होगी?"

भीम तथा श्रीकर के उपरोक्त कठोर वचन सुनकर भी, श्री रसिकमुरारी जी खिन्न या क्रुद्ध नहीं हुए। वे मृदु हास्य करते हुये बोले, "आप लोगों की सारी बातें मैंने सुन ली हैं। आपकी बातों का प्रतिवाद न करते हुये मैं केवल यही निवेदन करता हूँ, कि आपके द्वारा उठायी गई शंकाओं के समाधान के लिये, आपके राज्य के सारे विद्वान पंडितों की एक सभा आयोजित की जाये, जिसमें विभिन्न शास्त्रों व पुराणों के आधार पर, सर्वसम्मत सिद्धान्त पर पहुंचा जाये। विचार सभा सर्वसम्मति से जो भी निर्णय लेगी, सबको वही धर्म ग्रहण करना होगा। यदि वेद–पुराण, उपनिषद आदि में श्रीकृष्ण भजन का सिद्धान्त प्रतिपादित होगा, तो आप लोग भी वैष्णव धर्म स्वीकार करके श्रीकृष्ण भजन करियेगा।"

भीम व श्रीकर ने विचार किया कि उनके राज्य और सभा में बहुत सारे दिग्विजयी पण्डित विराजमान थे। उन्होंने आगे विचार किया कि विचार सभा के तर्क युद्ध में, इस अपरिपक्व बुद्धि वाले बालक समान रसिकानन्द को परास्त करना कोई कठिन कार्य न होगा। यह सोचकर उन दोनों ने विचार सभा के लिये दिन निर्धारित कर दिया। दूर दूरान्त के बहुत से प्रख्यात–प्रकाण्ड, धुरन्धर विद्वानों को सभा में भाग लेने के लिये आमंत्रित

किया गया। जानकी, हरिचन्दन आदि प्रकाण्ड पण्डित, सभा में विराजमान होकर, उसको अलंकृत करने लगे। श्री रसिकानन्द प्रभु ने, श्री गुरुदेव व श्रीकृष्ण भगवान् के चरणारविन्द का ध्यान करते हुए, विचार सभा में उपस्थित सभी ब्राह्मणों–पण्डितों के चरणों में प्रणाम करते हुए, अपना आसन ग्रहण किया।

भीम तथा श्रीकर के कहने पर, सभा का कार्य आरम्भ हुआ। तर्कयुद्ध में पारंगत पण्डितों ने अपने तर्क जाल का विस्तार करके, श्री रसिकानन्द प्रभु को परास्त करने का भरसक प्रयास किया, किन्तु वे वेदों तथा वेदों के अनुगत शास्त्रों के युक्तिसंगत सिद्धान्तों द्वारा, उन दिग्विजयी पण्डितों के तर्कजाल को खण्ड–खण्ड करने लगे। वे ऐसे सिद्धान्तों की स्थापना करनें लगे, जिनको उपस्थित पण्डितों में से कोई भी खण्डित न कर पाया।

सबाकार गर्बचूर्ण रसिक करिला।
शास्त्रेर तत्त्बार्थ केह दिते ना पारिला।।

–श्रीश्री रसिक मंगल–दक्षिण ५/३०

(अर्थात सारे दिग्विजयी पण्डितों के गर्व को, श्रीरसिकमुरारी ने चूर–चूर कर दिया। वे लोग, श्री रसिकानन्द प्रभु द्वारा स्थापित सिद्धान्तों का खण्डन न कर सके।)

श्री रसिकानन्द प्रभु ने, वेद, पुराण, उपनिषद, श्रीमद्भगवद्गीता, व तंत्र आदि पर आधारित भक्ति सिद्धान्त की अकाट्य व्याख्या करके, इस सिद्धान्त की प्रांजल रूप से स्थापना कर दी कि श्रीकृष्ण ही एकमात्र उपास्य हैं और वैष्णव धर्म ही जीव का नित्य धर्म है। श्री रसिकानन्द प्रभु की हृदयग्राही व्याख्या के द्वारा, जब सभी धुरन्धर विद्वान परास्त हो गये तो उपस्थित श्रोताओं ने, श्री रसिकानन्द प्रभु की जय–जयकार से धरती–आकाश को कम्पायमान कर दिया।

ईसवी सन् १६१५ में ज़मींदार, भीम तथा श्रीकर ने सवंश श्री रसिकानन्द प्रभु के चरणों का आश्रय लिया। धारेन्दा के घर–घर में श्रीकृष्ण नाम की ध्वनि गूंजने लगी। श्रीकर तथा भीम के विनम्र निवेदन पर, श्री रसिक मुरारी ने धारेन्दा में एक महा–महोत्सव आयोजित किया, जिसका

सारा आर्थिक भार, भीम और श्रीकर ने ही वहन किया। यहां पर श्रीरसिक मुरारी ने अपने कुलदेवता, श्री गोपीवल्लभ राय जी के साथ, श्रीमती राधारानी जी का शुभ विवाह महोत्सव सम्पन्न किया। फिर वे गोपीवल्लभपुर वापिस चले गये।

श्री श्यामानन्द प्रभु, गोपीवल्लभपुर का नामकरण करके, पहले ही रोहिणी होते हुए, केसीआड़ी चले गए थे। इन्हीं दिनों, किशोर, उद्धव, पुरुषोत्तम व दामोदर आदि ने, कैसीआड़ी में, श्री श्यामानन्द प्रभु से दीक्षा ग्रहण की। केसीआड़ी से श्री श्यामानन्द प्रभु सांकोआ गए, जहां श्री मधुसूदन आदि ने उन का चरणाश्रय ग्रहण किया।

सांकोआ से मैनागढ़ पहुंचने पर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने मैनागढ़ के राजा वीरमहानन्द को अपने चरणाश्रय में ले कर, उनको दीक्षा प्रदान की। मैनागढ़ से वे दोबारा बलरामपुर गए।

श्री रसिकानन्द प्रभु की आदर्श गुरुभक्ति

बलरामपुर में अवस्थान के समय, श्री श्यामानन्द प्रभु ने एक स्वहस्तलिखित पत्र, पत्रवाहक द्वारा, गोपीवल्लभपुर में श्री रसिक मुरारी के पास प्रेषित किया। उस पत्र में निम्नलिखित आदेश था:–

त्वरिते आमारे आसि मिलिबे आपनि।।

–श्रीश्री रसिक मंगल–दक्षिण ८/५२

(अर्थात् शीघ्र आकर मुझ से मिलो।)

जिस समय पत्र लेकर पत्रवाहक वहां पहुंचा, श्री रसिक मुरारी जी, श्रीकृष्ण सेवा के उपरान्त, अभी प्रसाद ग्रहण करने के लिए बैठे ही थे और उन्होंने केवल एक ग्रास ही मुख में डाला था। क्योंकि उस पत्र में, श्री श्यामानन्द प्रभु ने यह लिखा था कि वे शीघ्र आकर उन से मिलें, इसलिए गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए, श्री रसिकानन्द प्रभु, भोजन की थाली का परित्याग करके उठ खड़े हुए। उन्होंने आचमन तक भी नहीं किया, क्योंकि उस से देर हो सकती थी। वे जिस अवस्था में थे उसीमें चल दिये और चलते चलते ही, रास्ते में सुवर्णरेखा नदी के जल से आचमन कर

लिया। गोपीवल्लभपुर से बलरामपुर का लम्बामार्ग तय करते–करते, दिन का अवसान हो गया। गहराती रात्रि और गहन अरण्य। ऐसे में भी, हाथियों, व्याघ्रों, भालुओं जैसे हिंसक वन्य जन्तुओं से परिपूर्ण वन के बीचों बीच, श्री रसिक मुरारी, निर्भीक चित्त से अकेले ही गुरु आज्ञा पालन हेतु, आगे बढ़ते गये।

घोर अंधकार से आवृत रात्रि में, मृदु–मृदु वर्षा में ही वे चलते–चलते, अन्ततः बड़बलरामपुर में पहुंच गए। जैसे पहले कहा जा चुका है, वे प्रसाद का परित्याग करके गोपीवल्लभपुर से बड़बलरामपुर के लिए रवाना हो गए थे। गुरु आज्ञा पालन में विलम्ब न हो, इसलिए वे तीव्र गति से बिना कहीं विश्राम किये, बलरामपुर आ पहुंचे थे। इन सभी कारणों से, उनका मुखमण्डल शुष्क हो गया था और उस की सारी आभा जाती रही थी। जब उन्होंने गुरुदेव के चरणारविंद में दण्डवत प्रणाम किया, तो उनके शुष्क मुख को देखकर, श्री श्यामानन्द प्रभु विचलित हो उठे। उन्होंने जब मुखमण्डल की शुष्कता के विषय में जिज्ञासा प्रकट की, तो श्रीरसिक मुरारी लज्जावश कोई उत्तर न दे सके। वे शीष झुकाये हुए, श्री गुरुदेव के चरणारविन्द में खड़े रहे। उसी समय पत्रवाहक ने वहां उपस्थित होकर, श्री रसिक मुरारी जी द्वारा गुरु आज्ञा पालन करने की सारी घटना का आद्योपांत प्रकाश किया। यह जान कर कि श्री रसिक मुरारी, बिना भोजन किये, इतना लम्बा रास्ता घोर रात्रि में तय करके अकेले ही उन के पास आ पहुंचे थे, श्री श्यामानन्द प्रभु बहुत ही दुःखी हुए। उन्होंने व्याकुल होकर, श्री रसिक मुरारी को अपने सामने बैठाकर, प्रसाद का सेवन करवाया। उपस्थित भक्तगण, उन की आदर्श गुरु भक्ति को देख कर धन्य–धन्य कह उठे।

❖

बड़कोला गांव में पंचम दोल महोत्सव

श्री रसिकानन्द प्रभु को अत्यन्त स्नेहपूर्वक प्रसाद ग्रहण करवाने के पश्चात, श्री श्यामानन्द प्रभु ने उन से कहाः–

आमार मनेते आछे एक अभिलाष।
करिब पंचम दोल बोइशाख मास।।

बड़कोला स्थान बड़ देखिते सुन्दर।
गहन कानन आम्र नदी मनोहर।।
महोत्सव आरम्भ करिब सेइ स्थले।
सर्ब द्रब्य तुमि लइया आइस सकले।।

—श्रीश्री रसिकमंगल—दक्षिण ८/६८—७०

(अर्थात मेरे मन में यह अभिलाषा है कि वैशाख मास में, पंचम दोल महोत्सव आयोजित करूं। आम्रवाटिका तथा निकट बहती हुई नदी आदि के कारण, इस बड़कोला ग्राम का दृश्य बहुत मनोरम है। तुम सारी सामग्री एकत्रित करो। इसी ग्राम में महोत्सव सम्पन्न होगा।)

श्री श्यामानन्द प्रभु का आदेश सुन कर, श्री रसिकानन्द प्रभु ने दोनों हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "प्रभु! आप की अभिलाषा को पूर्ण करना, मेरा प्रथम कर्त्तव्य है। इसलिए इस विषय में आप किसी प्रकार का संकोच अथवा शंका न करें। आप के कृपाबल से, वैशाख के मास में बड़कोला ग्राम में ही पंचम दोल महोत्सव सम्पन्न होगा।" फिर वे इस महोत्सव के लिए बहुत से पदार्थ तथा द्रव्य एकत्रित करके, धारेन्दा पहुंच गये। धारेन्दावासी भी महोत्सव के लिए द्रव्य जुटाने लगे। ईसवी सन् १६१६ की वैशाख पूर्णिमा वाले दिन, महोत्सव के लिए विशाल आयोजन किया गया। शामियाना लगाया गया। कपड़े पर विभिन्न प्रकार की चित्रकारी करके व फूलों से सुसज्जित करके, मण्डप को अत्यन्त मनोरम बनाया गया। इस महोत्सव के दर्शन करने के लिए दूर—दूर से भारी संख्या में वैष्णवों तथा जनसाधारण के साथ—साथ, राजा—महाराजा भी पधारे। श्री रसिकानन्द प्रभु, भीम और श्रीकर के घर से, श्री श्यामानन्द प्रभु के कुलदेवता, श्री श्यामराय को, समारोहपूर्वक, बड़कोला ग्राम में ले आए। शंख, घंटे, शहनाइयां, मृदंग, ढोल तथा करताल आदि वाद्य यंत्र एक साथ बज उठे। चतुर्दशी को महोत्सव का अधिवास सम्पन्न करके, पूर्णिमा को महोत्सव का शुभारम्भ हुआ। नाम संकीर्तन की ध्वनि से बड़कोलां ग्राम के धरती आकाश, अहर्निश गुंजायमान होने लगे। निम्नलिखित नामों का कीर्तन किया जाता था।

"श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण, हरे राम, श्री राधा गोविंद।।"

(शान्ति पुरे श्री अद्वैत नाम आरम्भिल।
निताई गौरांग दोंहें प्रेमे नृत्य कैल।।)

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १०/४,६

{अर्थात शान्तिपुर में श्री अद्वैत प्रभु ने इस नाम का शुभारम्भ किया, जिसमें श्री नित्यानन्द प्रभु व श्री गौरांग महापभु ने प्रेमविह्वल हो कर नृत्य किया था।}

हज़ारों मन गुलाल, कर्पूर, चंदन आदि लाया गया। बड़कोला ग्राम के सारे वृक्षों, लताओं, कीट—पतंगों, साधारण मनुष्यों, साधु, सन्तों, वैष्णवों, पुष्करिणियों व सरोवरों आदि ने गुलाल के रंग में रंग कर, होली कें दिनों में वृन्दावन जैसी श्री धारण कर ली।

मिदनापुर के मुग़ल सूबेदार का आगमन

बड़कोला गांव में आयोजित इस पंचम दोल महोत्सव का दर्शन करने के लिए, मिदनापुर का मुग़ल सूबेदार भी आया। श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु द्वारा आयोजित इस दिव्य महोत्सव के दर्शन करके, वह बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने मिदनापुर शहर में भी ऐसा ही एक महोत्सव आयोजित करने के लिए, श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु से, यों निवेदन किया:—

श्यामानन्द स्थाने कहे सेइ से जबन।
महोत्सव कर एथा शुन महाजन।।
सकल सम्भार दिब नाहि किछु दाय।
हिन्दु अधिकारी सब करिब बिदाय।।
सर्बद्रब्य गृहे गिया करह जतन।
सुखे जेन साधुगण करये भोजन।।

—श्रीश्री रसिक मंगल—दक्षिण ११/८—१०

(अर्थात उस सूबेदार ने, श्री श्यामानन्द प्रभु से कहा, "हे प्रभु! आप इस प्रकार दिव्य महोत्सव आयोजित कीजिए, जिसके लिए आवश्यक पदार्थों और द्रव्यों का प्रबंध मैं स्वयं करूंगा। मेरे पास जितने भी हिन्दु

अधिकारी हैं, मैं उन सब को भेज दूंगा। आप जाकर ऐसी व्यवस्था करें, जिस से साधु, महात्मागण, सुखपूर्वक प्रसाद ग्रहण कर सकें।")

मुग़ल सूबेदार के एकान्त आग्रह तथा सप्रेमानुरोध पर, श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु, मिदनापुर गये। ईसवी सन् १६१६ में, मिदनापुर के आलमगंज (वर्तमान नाम अलीगंज) में २४ प्रहर व्यापी महा–महोत्सव आयोजित हुआ। सैंकड़ों संकीर्तन मण्डलियां, वहां पहुंच कर, श्रीकृष्ण नाम की मधुर ध्वनि से मिदनापुर के धरती आकाश को कंपायमान करने लगीं। उस श्री कृष्णमय परिवेश में, सभी उपस्थित लोगों के मुख से, केवल "हरि बोल"–"हरि बोल" की ध्वनि ही निःसृत हो रही थी। जनसमूह के साथ–साथ, भावविह्वल मुग़ल सूबेदार भी, बारम्बार "हरि बोल"–"हरि बोल" कहते हुए, अश्रु विसर्जित करने लगा। श्री श्यामानन्द प्रभु, उस के मुख से हरिबोल ध्वनि का उच्चारण सुनकर, अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने मुग़ल सूबेदार का नामकरण कर दिया "हरिबोला" या "हर बोला"।

उस महादुष्ट सूबेदार को प्रेमाश्रु विसर्जित करते देखकर, मिदनापुर के नागरिक एक दूसरे से इस प्रकार चर्चा करने लगेः–

हेन श्यामानन्द रसिकेर परताप।
जबनेओ जार नाम करये से जप।।

–श्रीश्री रसिकमंगल–दक्षिण ११/१५

(अर्थात श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु की ऐसी महिमा है, कि मुग़ल सूबेदार भी, उन दोनों का शरणागत हो गया है।)

जो मुसलमान हिन्दु धर्म के घोर विरोधी थे, जिनके द्वारा भारतवर्ष में, बड़ी संख्या में धर्मपरायण हिन्दुओं का बलपूर्वक धर्म परिवर्तन किया जा रहा था, जिन मुसलमानों ने भारत के बहुत से प्रख्यात मंदिरों तथा देवी देवताओं की मूर्तियों को नष्ट कर दिया था, आज उन्हीं में से एक, श्रीश्यामानन्द प्रभु का शरणागत हुआ। इस प्रकार धीरे–धीरे, बहुत बड़ी संख्या में अनाचारी, गौ–भक्षक मुसलमान तक, श्रीश्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु की कृपा से परम श्री कृष्णभक्त बन गए।

मिदनापुर से श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु के साथ, नाड़ाजोल चले गए। नाड़ाजोल के प्रख्यात भूईयां परिवार के सभी सदस्यों

ने, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणों का आश्रय लिया। इसी ईसवी सन् १६१६ में, श्री श्यामानन्द प्रभु ने, नाड़ाजोल में श्री मदनमोहन जी की सेवा का प्रकाश किया। हरवर्ष श्रावण मास की कृष्णपक्षीय चतुर्दशी तथा अमावस्या को, श्रीमदनमोहन जी का कालीयदमन उत्सव समारोहपूर्वक सम्पन्न किया जाता है। श्री मदनमोहन जी नाव पर विराजमान होकर, भक्तजनों के साथ, एक दिन नाड़ाजल से नदी के प्रवाह के अनुकूल एवं दूसरे दिन जलप्रवाह के प्रतिकूल दिशाओं में, नदी के तीरवर्ती प्रतिघाट पर ही, निकटवर्ती ग्रामवासियों को दर्शन देते हुए आवागमन करतें हैं। नाड़ाजोल से श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु, पदुमवसान गये। पदुमवसान का वर्तमान नाम तमलुक है।

षोड़श अध्याय

श्री वासुदेव घोष ठाकुर द्वारा सेवित श्रीमन्महाप्रभु की सेवा का पुनः प्रकाश

(ईसवी सन् 1616)

तमलुक नगर में प्रवेश करते ही, श्री श्यामानन्द प्रभु ने सामने एक दुर्गामण्ड़प देखा। वे अपने शिष्यों के साथ वहीं बैठ गए। शिष्य उन को चारों ओर से घेर कर बैठे। वे उस समय, तारिकाओं से परिवेष्ठित चन्द्रमा की भान्ति शोभा पाने लगे। उन को वहां बैठे देखकर, राज्य के एक कर्मचारी ने राजा को यह समाचार देते हुए कहा, "हे महाराज! दस मूर्ति अत्यन्त पराक्रमी तथा तेजस्वी वैष्णव, दुर्गामण्डप में आकरं ठहरे हैं। आप आदेश दीजिए कि उन के लिए क्या व्यवस्था की जाये।"

एक मायावादी तांत्रिक सन्यासी ने, अपनी तंत्र विद्या का प्रयोग करके, तमलुक के राजा को अपने वश में कर रखा था। राजा उसी सन्यासी के निर्देशानुसार सारे कार्य करते थे। जिस समय राज अनुचर ने राजा को वैष्णवों के दुर्गामण्डप में अवस्थान के विषय में सूचित किया, उस समय वह मायावादी तांत्रिक वहीं बैठा था। राजअनुचर की बात सुन कर वह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा।

सेई बले दुर्गार मण्डप मार गेल।
झुटाखोर बैष्णब सेखाने बसिल।।
जे अन्तरे बसियाछिल बैष्णबेर गण।
क्षुदिया माटि भरह सेखाने नूतन।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश—८/२८,२९

(अर्थात उस सन्यासी ने कहा, "जूठा खाने वाले वैष्णव वहां आकर बैठ गए हैं, इसलिए दुर्गामण्डप अपवित्र हो गया है। उस मण्डप के जितने

स्थान पर वैष्णव बैठे हैं, वहां की मिट्टी खोदकर बाहर फैंक दो तथा उसके स्थान पर नई मिट्टी भर दो।")

सन्यासी का आदेश सुनकर, राजा ने श्री श्यामानन्द प्रभु के पास एक दूत भेज कर, उन को अपने शिष्यों सहित, दुर्गामण्डप का परित्याग करके, एक गोप के घर जाकर रहने का आदेश प्रेषित किया। राजा का ऐसा आदेश पाकर, श्री श्यामानन्द प्रभु अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। वे दुर्गामंडप का परित्याग करके, राजा के आदेश में निर्दिष्ट गोपगृह में न जाकर राजभवन के बिल्कुल सामने स्थित, एक वटवृक्ष के नीचे शिष्यों सहित बैठ गये। इधर तांत्रिक सन्यासी की इच्छानुसार, राजा ने दुर्गामण्डप की भूमि खोदने के लिए बहुत से आदमी लगा दिये। उन लोगों ने खुदाई का कार्य आरम्भ कर दिया, किन्तु एक अनहोनी बात देख कर, वे लोग आश्चर्यचकित रह गये।

तबे राजा दुर्गार मण्डप खुलाइल।
माटि राशि राशि करि दाण्डे फेलाइल।।
देखिल चौका तबे नाहिक मिटिल।
जतखुले पुनः पुनः समतुल हइल।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश—८/३४,३५

(अर्थात राजा ने अपने अनुचरों द्वारा दुर्गामण्डप की मिट्टी खुदवा कर बाहर फिकवा दी, किन्तु फिर भी दुर्गामण्डप पहले की ही भांति समतल रहा।)"

इस घटना को प्रत्यक्ष देख कर तांत्रिक बहुत डर गया। राजा के मंत्रियों आदि ने राजा के पास जाकर कहा, "हे महाराज! हमने स्वयं अपनी आंखों से देखा है कि बहुत सारी मिट्टी खोदकर बाहर फैंक दिये जाने पर भी, दुर्गामण्डप स्वतः ही, मिट्टी से पहले की ही भांति परिपूर्ण हुए जा रहा है। इससे साफ ज़ाहिर है कि श्री श्यामानन्द प्रभु साक्षात ईश्वर हैं। इस में कोई संदेह नहीं। अतः आप शीघ्र चलकर, उनकी शरण ग्रहण कीजिये, नहीं तो उन के क्रोध से आपका सवंश नाश हो जायेगा।"

अपने इन सभी शुभाकांक्षीओं की बात सुनकर, राजा अत्यन्त भीत तथा संतप्त हो उठे। अपने द्वारा किये गए अपराध को क्षमा करवाने के लिए, वे अपने वंशजों के साथ, श्री श्यामानन्द प्रभु के पास गए, किन्तु श्री

श्यामानन्द प्रभु ने उस साधुद्रोही राजा का दर्शन तक नहीं किया। उन के शिष्यों ने उन के आदेश से, श्री श्यामानन्द प्रभु के चारों ओर कपड़ा तान कर घेरा बना दिया। राजा गलवस्त्र होकर, उन की कृपा प्राप्त करने के लिए, साष्टांग दण्डवत प्रणाम की स्थिति में, वहीं पड़े रहे।

रात हो गयी। स्थिति यथावत रही। श्री श्यामानन्द प्रभु जब सो गये, तो श्रीमन्महाप्रभु ने उन को स्वप्न में दर्शन देकर यह आदेश दिया:–

आज्ञा कैल शुन ओहे श्यामानन्द राय।
आमि दुःख पाइ तुमि सुखे निद्रा जाओ।।
पदुमबसानेर काछे पूजा मोर छिल।
एकइ सन्यासी गिया मोरे दूर कैल।।
मिर्जापुर सन्निकट पाषण्डी ग्रामेते।
एकइ ब्राह्मण गृह करियाछे ताते।।
तार घरे आछि आमि हेंसेर भितरे।
तुमि गिया लइया आइस सेथा हइते मोरे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश–८/३–६

(अर्थात श्रीमन्महाप्रभु ने आदेश दिया, "हे श्यामानन्द! मैं दुःख में हूं और तुम चैन की नींद ले रहे हो। इस पदुमवसान के निकट मेरी पूजा होती थी, किन्तु इस सन्यासी ने आकर, मुझे यहां से हटा दिया। अब मैं मिर्ज़ापुर में एक ब्राह्मण के घर पर, एक चटाई के अंदर रह रहा हूं। तुम मुझे वहां से ले आओ।)

स्वप्नदर्शन के पश्चात, श्री श्यामानन्द प्रभु की निद्रा भंग हो गई। उन्होंने तत्काल श्री रसिक मुरारी को बुलाकर स्वप्न के विषय में सब कुछ बताया। ठीक उसी समय, एक वैष्णव ने वहां आकर उन को बताया, "हे प्रभु! इस परगने में जितने भी श्रीविग्रह थे, उन सबको इस दुष्ट तांत्रिक ने अग्नि में जलाकर नष्ट कर दिया था। अब केवल जिष्णुहरि तथा वर्गभीमा के श्रीविग्रह ही विद्यमान हैं। यह दुष्ट सन्यासी अपने अनुचरों के साथ इन श्रीविग्रहों को भी नष्ट करने गया था, क़िन्तु उस समय बहुत सारे ज़हरीले ततैये आकर, भीषण गर्जना के साथ उन लोगों को काटने लगे। इस लिए, भीषण यंत्रणा से व्याकुल होकर, वे सब श्रीविग्रहों को छोड़कर भाग खड़े

हुए। श्री वासुदेव घोष ठाकुर द्वारा सेवित श्रीमन्महाप्रभु के श्रीविग्रह भी यहां सेवित होते थे, किन्तु उन का अब कोई पता नहीं।"

श्री श्यामानन्द प्रभु ने जब यह सुना कि श्री वासुदेव घोष ठाकुर द्वारा सेवित श्रीमन्महाप्रभु के श्रीविग्रह भी पहले पदुमवसान में सेवित होते थे एवं अब उन का कोई भी पता नहीं था, तो उन्होंने अनुमान लगाया कि पूर्व रात्रि में उन्होंने स्वप्न में जिन श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन किये थे, सम्भवतः वे ही श्री वासुदेव घोष ठाकुर द्वारा सेवित श्रीमन्महाप्रभु के श्रीविग्रह होंगे। इन की लीला कथा भी अत्यन्त आकृष्ट करने वाली है, जो यों है।

श्री वासुदेव घोष व उन के दोनों भाई, श्री माधव घोष व श्री गोविन्द घोष, श्री गौरसुन्दर जी के अत्यन्त प्रिय कीर्तनीया थे। जब श्रीमन्महाप्रभु, श्री टोटा गोपीनाथ के (मतान्तरानुसार श्री जगन्नाथ देवजी के) श्रीअंग में विलीन हो गए थे, तो वासुदेव घोष ठाकुर, अपनी पत्नी सहित, श्रीमन्महाप्रभु की विरह से अत्यन्त कातर हो गये थे। यह निश्चय करके कि वे श्रीमन्महाप्रभु के अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यक्ति के मुख के दर्शन नहीं करेंगे, उन दोनों ने अपनी–अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली थी। फिर वे दोनों "हा गौर, हा गौर" कह कर, अत्यन्त व्याकुल होकर, आर्तनाद करने लगे। उन्होंने मन में यह भी विचार किया कि वे श्रीनीलाचल में श्रीमन्महाप्रभु के अप्रकट हो जाने के कारण, श्रीक्षेत्र नीलाचल के महोदधि में कूद कर अपने प्राण विसर्जित कर देंगे। उन लोगों ने यह विकल्प भी सोचा कि श्रीमन्महाप्रभु जब अंतर्धान हो गये हैं, तो क्यों न एक गड्ढा खोदकर, उस में प्रवेश करके, प्राण दे दिये जायें। ऐसा सोचकर, उन दोनों ने अन्नजल का त्याग कर दिया। अपने प्राण त्यागने के लिए, उन्होंने एक गड्ढा खोदा तथा उसमें बैठकर अपने ऊपर मिट्टी डालनी आरम्भ कर दी। श्री वासुदेव घोष ठाकुर की ऐसी करुण अवस्था देख कर, श्री गौरसुन्दर स्थिर न रह सके। रात को वे एक दिव्य बालक का रूप धारण करके, गड्ढे के पास पहुंचे और वासुदेव घोष से इस प्रकार बोले, "वासुदेव! तुम अपनी आंखों की पट्टी खोल कर देखो कि तुम्हारे सामने कौन आकर खड़ा है?" श्री घोष ने अपनी आंखों की पट्टी तो नहीं खोली किन्तु बालक रूपी गौरसुन्दर से उन का नाम पूछा। श्री गौरसुन्दर ने जब यह बतलाया कि उन का नाम निमाई था, तो

वासुदेव घोष ने उत्तर दिया, "अगर तुम सचमुच निमाई हो तो मेरी आंखों की पट्टी स्वयं खुल जाय।" तब श्रीमन्महाप्रभु की इच्छा से, श्री घोष दम्पत्ति की पट्टीयां अपने आप ही खुल गईं। उन दोनों ने श्री गौरसुन्दर को एक लावण्यमय बालक का रूप धारण किये अपनी गोद में सोते देखा। उनके श्रीअंग की ज्योति के प्रकाश से, चारों दिशाएं आलोकित हो रही थीं। जो दशा किसी निर्धन की, कोटि निधि प्राप्त होने पर होती है, श्री घोष दम्पत्ति की भी वही दशा हुई। "हे प्रभु! आप मुझे छोड़कर कहां चले गये थे?" यह कहकर विलाप करते हुए, श्री घोष, प्रेमविह्वल होकर, श्री गौरसुन्दर का अपनी गोद में दुलार करते हुए, अश्रु विसर्जित करने लगे। श्री वासुदेव घोष की इस भावविभोर अवस्था से पसीजकर, करुणा के सागर, श्रीमन्महाप्रभु ने उन को वर मांगने के लिये कहा। तब श्री घोष ने यों कहाः—

घोष बले मोरे जदि करिबे सुदया।
सदा एइखाने तुमि रबे मोरे लइया।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश—८/६१

(अर्थात् यदि आप मुझ पर दया करना चाहते हैं तो आप मेरे साथ सर्वदा यहीं रहें।)

श्री वासुदेव घोष की उपरोक्त प्रार्थना सुनकर श्रीमन्महाप्रभु तब से उनके पास पदुमवसान में ही रहने लगे। क्योंकि श्री वासुदेव घोष, पुत्र विहीन थे, इसलिए उनके तिरोधान पर, श्री गौरसुन्दर ने स्वयं उनके श्राद्धपात्र का दान किया था। जिस बकुल वृक्ष के नीचे बैठकर, श्रीघोष ठाकुर निविष्ट चित्त से भजन करते थे, वह वृक्ष अब भी विद्यमान है।

श्री श्यामानन्द प्रभु ने राजा को संदेश भेजा कि, वह यदि श्रीमन्महाप्रभु की सेवा के लिये प्रबंध दो गुना कर दे और उस वैष्णवद्वेषी मायावादी तांत्रिक सन्यासी को वहाँ से निष्काशित कर दे, तभी श्री श्यामानन्द प्रभु, राजा का अपराध क्षमा कर सकेंगे। तब राजा ने निम्नलिखित उत्तर दिया—

राजा बले जेइ आज्ञा करिबे आमारे ।
दास हइया श्री चरणे खाटिमु ताहारे।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश—८/६७

(अर्थात राजा ने कहा कि श्री श्यामानन्द प्रभु जो भी आज्ञा देंगे, मैं उनके चरणारविन्द का दास होकर, उस कार्य को सम्पादित करूंगा।)

श्री श्यामानन्द प्रभु, राजा की ऐसी दीनता व विनम्रता से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने श्री रसिकानन्द प्रभु को बुलाकर, उन्हें श्रीमन्महाप्रभु के श्रीविग्रह की खोज के लिये, मिर्ज़ापुर जाने का आदेश दिया। कई भक्तों को साथ लेकर, श्री रसिक मुरारी जी मिर्ज़ापुर पहुँचे। श्रीमन्महाप्रभु के श्रीविग्रह की खोज करते करते वे, श्रीमन्महाप्रभु द्वारा स्वप्न में, श्री श्यामानन्द प्रभु को बताए हुए ब्राह्मण के घर गये। वह ब्राह्मण उस समय घर पर नहीं थे। वे भिक्षा के लिए निकटवर्ती ग्राम में गए थे। श्री रसिकानन्द प्रभु ने उन ब्राह्मण की कन्या को एक साड़ी तथा कुछ रुपये उपहार स्वरूप दिये, जिससे वह कन्या बहुत प्रसन्न हुई। वह श्री रसिक मुरारी के कहने पर, उनको घर के अन्दर ले गई और उनको श्रीमन्महाप्रभु के श्रीविग्रह के दर्शन करवाए। श्री रसिक मुरारी ने देखा कि ब्राह्मणों ने मुसलमानों के भय से, उन लावण्यमय श्रीविग्रह को, एक चट्टाई के अन्दर छिपा कर रखा था। श्री गौरसुन्दर के उस बालस्वरूप का दर्शन करके, श्री रसिक मुरारी, भाव विभोर होकर उनकी स्तुति करने लगे। फिर वे वहाँ से वापिस आ गये और श्री श्यामानन्द प्रभु को, उन श्रीविग्रह के विषय में सूचित किया।

श्रीविग्रह की सूचना मिलने पर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिकानन्द प्रभु तथा अनेक भक्तों के साथ उच्चस्वर से नाम संकीर्तन करते हुए, मिर्ज़ापुर के लिये प्रस्थान किया। तमलुक के राजा ने भी अपने मंत्रियों आदि तथा सेना के साथ, श्री श्यामानन्द प्रभु का अनुसरण किया। मिर्ज़ापुर पहुँचकर, उन्होंने उक्त ब्राह्मण से सम्पर्क साधा और उसे श्रीविग्रह के विषय में अपने अकाट्य तर्क से सन्तुष्ट करके, वे श्रीविग्रह को प्राप्त करके तमलुक वापस आ गए। तमलुक के राजा ने एक नये मंदिर का निर्माण करवाके, उन श्रीविग्रह की, उस में स्थापना करवा दी। श्री श्यामानन्द प्रभु के आदेश से, राजा ने श्रीमन्महाप्रभु की नित्य सेवा के लिये, बहुत सारी सम्पत्ति दान करने के विषय में, एक सनद (प्रमाण–पत्र), सोने की आठ मोहरों के साथ, श्री श्यामानन्द प्रभु को प्रदान करके, उनको साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। श्रीश्यामानन्द प्रभु के ही आदेश के अनुसार राजा

ने, श्रीरसिकानन्द प्रभु के एक शिष्य, श्री राधावल्लभ से, अपने परिवार सहित दीक्षा ग्रहण की। परवर्तीकाल में तमलुक के राजा, परम वैष्णव तथा साधु सेवी हुए।

इस प्रकार, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के प्रिय परिकर श्रील वासुदेव घोष ठाकुर द्वारा सेवित श्रीमन्महाप्रभु के श्रीविग्रह की सेवा का तमलुक में पुनः प्रकाश हुआ। दुष्ट तांत्रिक सन्यासी तमलुक छोड़कर कहीं और चला गया।

तमलुक में श्रीमन्महाप्रभु की सेवा का पुनः प्रकाश कराने के पश्चात्, श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द व अन्य शिष्यों के साथ, बसन्तिया चले गये। ईसवी सन १६१७ में उन्होंने बसन्तिया में, श्री गोकुल चन्द्र जी की सेवा का महा समारोहपूर्वक प्रकाश किया। उन श्रीविग्रह की सेवा के लिये, एक अधिकारी नियुक्त करके, सेवा का दायित्व भी उसी को अर्पण किया। बसन्तिया से, श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु के साथ, धारेन्दा चले गये।

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु का धारेन्दा आगमन

पुत्र की यश कीर्ति का विस्तार होने पर जैसे पिता गौरवान्वित अनुभव करते हैं, उसी प्रकार अपने शिष्य की कीर्ति का विस्तार होने पर, गुरुदेव भी आनन्दित होते हैं। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, अम्बिका में ही रहते थे। वहाँ उनको श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु की पवित्र कीर्ति के प्रसार के नित नये समाचार प्राप्त होते थे, जिन को सुनकर, उनको बहुत ही प्रसन्नता होती थी। ये दोनों प्रभु, श्री हरिनाम व प्रेम के सैलाव में उत्कल वासियों को किस प्रकार प्लावित कर रहे थे, यह सब अपनी आँखों से देखने के लिये, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, ईसवी सन् १६१७ में धारेन्दा आये। अपने गुरुदेव के आगमन का समाचार पाते ही, श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्रीरसिक मुरारी, अन्य शिष्यों व भक्तों के साथ, आगे जाकर रास्ते में ही उनका स्वागत किया। श्री गुरुदेव के दर्शन करते ही, श्रीश्यामानन्द प्रभु ने, उनको साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। श्रीगुरुदेव ने उनको स्नेहपूर्वक गोदी में लेकर, आशीष वचन कहे। जब श्री रसिक मुरारी ने, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु

को साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया, तो उन्होंने उनको (श्री रसिक मुरारी को) भी भूमि पर से उठा कर, अपने अंक में भर लिया और उल्लसित हो कर, इस प्रकार कहा–

अनिरुद्धावतार चतुर्व्युहाधिपति ।
नारायण सम मूर्ति रसिके प्रसिद्धि।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश–२५/१७

(अर्थात भगवान श्री कृष्ण के चतुर्व्यूह में अनन्यतम श्रीअनिरुद्ध के अवतार ही, श्री रसिक मुरारी हैं। इनके श्रीमन्नारायण समान स्वरूप को सभी जानते हैं।)

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, श्री श्यामानन्द प्रभु व श्रीरसिकानन्द प्रभु के धारेन्दा में एकत्रित होने पर, वहाँ नित्य हरिनाम संकीर्तन, साधु व वैष्णव सेवा तथा महोत्सव आदि होने लगे। इसी दौरान उनतालीसवें द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव का समय भी आ गया। श्रील हृदय चैतन्य प्रभु अधि कारी ठाकुर जी की उपस्थिति में ही, इस महोत्सव का अनुष्ठान किया गया। इस में भाग लेने आये हुए श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु एवं श्री दरिया दामोदर के शिष्यों और प्रशिष्यों की संख्या को देखकर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु फूले न समाये । श्रीमन्महाप्रभु द्वारा अभिप्रेत, श्री नाम व प्रेम प्रचार कार्य को, उनके शिष्य और प्रशिष्यगण यथार्थरूप दे रहे थे, यह सब अपनी आँखों से देख कर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के आनन्द की सीमा का पाराबार न रहा! उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, "वत्सगण ! उत्कल देश में तुम लोगों के, श्री नाम तथा प्रेम प्रचार के कार्य को देखकर, मैं बहुत ही सन्तुष्ट हूँ। तुम इसी प्रकार ही, श्रीमन्महाप्रभु के इन वचनों को पूर्ण किये जाओ–

पृथिवी पर्यन्त जत आछे देश ग्राम।
सर्वत्र संचार हइबे मोर नाम।।"

–श्री चैतन्य भागवत अन्त्य–४/१२६

(अर्थात पृथ्वी पर जितने भी नगर व ग्राम आदि हैं, उन सब में, मेरे नाम का प्रचार होगा।)

श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु, श्री दरिया दामोदर व

सहस्रों उत्कल वासी भक्तों के साथ कुछ दिन परमानन्द के साथ बिताकर, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु, श्रीपाट अम्बिका को लौट गये। विदाई की बेला में, श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु ने, उनको और अम्बिका में विराजमान श्री गौर–निताई के श्रीविग्रहों के लिये, बहुत से मूल्यवान उपहार, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु को प्रदान किये।

जब सब भक्तगण, एक एक करके धारेन्दा से विदा हो गये, तो श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिकानन्द प्रभु को, गोपीवल्लभपुर भेज दिया।

एक दिन श्री रसमय, श्री भीम, श्री बंशी व श्रीकर आदि भक्तगणों ने, श्री श्यामानन्द प्रभु से यों निवेदन किया, "हे प्रभु! पिछले कई वर्षों से, आप केवल तीर्थाटन ही किये जा रहे हैं। अब आप विवाह करके, कुछ दिन विश्राम कीजिये। यदि आप की आज्ञा व सम्मति हो, तो हम लोग किसी उपयुक्त कन्या का पता लगाएं।"

श्री श्यामानन्द प्रभु ने पहले तो साफ इन्कार कर दिया, किन्तु जब सब भक्तों ने मिलकर बारम्बार निवेदन किया तो, उन्होंने विवाह करने के लिये सहमति प्रकट कर दी। सभी भक्त उपयुक्त कन्या की खोज करते करते, बड़बलरामपुर पहुँचे और वहाँ के श्री जगन्नाथ दास की कन्या, कुमारी श्यामप्रिया को उपयुक्त पाकर, विवाह के लिये चुना। सभी भक्तों के एकान्त आग्रह से, श्री श्यामानन्द प्रभु ने श्यामप्रिया को पत्नि रूप में ग्रहण कर लिया।

नाम श्याम प्रिया अति बड़ सुरूपिनी ।
रूपे गुणे लक्ष्मी अंशे भुबन मोहिनी ।।
संकीर्तन महोत्सब करिया आनन्दे ।
बिबाह करिलेन श्यामप्रिया श्यामानन्दे ।।

–श्रीश्री रसिक मंगल–११/२७,२८

(अर्थात श्री श्यामप्रिया अत्यन्त सुन्दरी थीं। वे लक्ष्मी के अंश से प्रकट हुई थीं एवम् रूप, गुण आदि में ख्याति प्राप्त थीं। श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री नाम संकीर्तन महोत्सव के माध्यम से, श्री श्यामप्रिया देवी का पाणिग्रहण किया।)

❖

सप्तदश अध्याय

मयूरभंज के महाराजा श्री वैद्यनाथ भंज के प्रति श्री रसिक मुरारी जी की कृपा

श्री श्यामानन्द प्रभु ने श्री रसिकानन्द प्रभु को चाण्डाल पर्यन्त सभी जीवों को श्री हरिनाम–प्रेमदान करने का आदेश प्रदान किया था। श्री रसिकानन्द प्रभु ईसवी सन् १६१७ में मयूरभंज राज्य में गये। उस समय मयूरभंज राज्य के अधिपति थे, महाराज श्री वैद्यनाथ भंज। श्री रसिकानन्द प्रभु सीधे राजदरबार में पहुंचे। उन के अकस्मात आगमन पर, महाराज ने अपने दोनों छोटे भाईयों, छोटाराय और राउत राय सहित, श्री रसिकानन्द प्रभु के चरणारविन्द की वंदना की।

श्री रसिकानन्द प्रभु के दर्शनों से प्रभावित होकर जब महाराज वैद्यनाथ भंज अपने भ्राताओं सहित, उन से श्री कृष्ण मंत्र से दीक्षा ग्रहण करने को उद्यत हो गये, तो राजसभा में उपस्थित सभी स्मार्त पण्डितों ने आपत्ति प्रकट की। उन पण्डितों ने कहा, "महाराज! आप की सभा में बहुत से कर्मनिष्ठ विद्वान विराजमान हैं। पहले श्री रसिकानन्द प्रभु से, शास्त्रों के आधार पर तर्क होना चाहिए। तर्क से जो भी धर्म निश्चित हो, हम सब भी आप के साथ, उसी को ग्रहण कर लेंगे। इसलिए आप दीक्षा ग्रहण करने से पहले, हमें श्रीरसिक मुरारी जी से शास्त्रार्थ करने की अनुमति प्रदान कीजिए।"

स्मार्त पंडितों के उपरोक्त कथन से, श्री रसिकानन्द प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे पण्डितों के प्रति यथोचित सम्मान प्रकट करते हुए बोले, "शास्त्रों का यही कथन है कि किसी विषय को, पूर्णरूपेण विचारमंथन के बिना स्वीकार करना अनुचित है। देवगुरु बृहस्पति ने भी कहा है कि:–

केबलम् शास्त्र–माश्रित्य, न कर्तब्यो विनिर्णयः।
युक्तिहीन बिचारेतु धर्महानिः प्रजायते।।

(अर्थात केवल शास्त्रों के वचनों को मान कर ही कर्त्तव्य का निर्णय नहीं कर लेना चाहिये। युक्ति व तर्कविहीन विचार के द्वारा धर्म की हानि होती है।)"

यह कह कर श्री रसिक मुरारी जी, अपने मत के समर्थन में विभिन्न शास्त्रों में उपलब्ध सिद्धान्तों के दृष्टान्त देने लगे। सर्वप्रथम उन्होंने सांख्य तत्त्व पर विचार व्यक्त किये एवं सांख्य तत्त्व के अनुसार भी श्रीकृष्ण भजन ही सार है, इस सिद्धान्त को स्थापित किया। फिर उन्होंने मीमांसा शास्त्र का विवेचन किया और यह स्थापित कर दिया कि इस शास्त्र के अनुसार भी, श्रीकृष्ण निष्ठा ही सार वस्तु है। तदन्तर उन्होंने पातंजल शास्त्र का विवेचन कर के यह प्रतिपादित कर दिया कि इस शास्त्र के अनुसार भी श्रीकृष्ण भजन में निष्ठा ही सर्वश्रेष्ठ है। इस के अनन्तर उन्होंने तर्कशास्त्र, वैशेषिकशास्त्र, वेदान्त, चतुर्वेद तथा छत्तीस स्मृतियों आदि पर विचार करते हुए भी, यह स्पष्ट रूप से स्थापित कर दिया कि जीव का एक मात्र कर्तव्य श्रीकृष्ण भजन ही है। श्री रसिक मुरारी जी के अकाट्य तर्कों से उपस्थित पण्डित बगलें झांकने लगे और साधु–साधु कह उठे। उन के श्रीमुख से, श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण भक्ति की हृदयग्राही व्याख्या सुन कर, सब पंडित अभिभूत हो गये। उन सबने कहा कि बाल्यकाल से ही नाना शास्त्रों का अध्ययन करके भी, वे लोग जिस सिद्धान्त को अनुभव नहीं कर सके, उसे इतनी अल्पायु में ही, श्री रसिक मुरारी ने कैसे हृदयंगम कर लिया, यह चमत्कार ही तो था। तब सभी पण्डितों ने राजा से इस प्रकार कहाः–

शुनिया कहेन सब द्विज राजास्थाने।
बालक नहेन एइ सम नारायणे।।
किबा व्यास, शुक, नारदादि मुनिगण।
किबा बृहस्पति जन्म हइला आपन।।

–श्रीश्री रसिकमंगल–१३/४२,४३

(अर्थात सब ब्राह्मणों ने राजा से कहा, "ये रसिक मुरारी बालक नहीं हैं। नारायण के समान हैं अथवा व्यासदेव, शुकदेव व नारद आदि मुनिगण या देवगुरु बृहस्पति ही स्वयं श्री रसिक मुरारी के रूप में प्रकट हुए हैं।")

राजसभा में उपस्थित सभी पंडितों तथा विद्वानों ने, जब श्री रसिक मुरारी के सिद्धान्त को मान लिया और यह तत्त्व भी स्वीकार कर लिया कि भगवान श्रीकृष्ण ही जीवों की एकमात्र गति हैं, तो महाराजा श्री वैद्यनाथ भंज ने अपने सहोदरों सहित, श्री रसिक मुरारी के चरणों का आश्रय ग्रहण कर लिया। उन का अनुसरण करते हुए मयूरभंज राज्य के निवासियों ने भी, क्रमशः श्री रसिकानन्द प्रभु के चरणों का आश्रय लेना आरम्भ कर दिया। श्री वैद्यनाथ भंज के निवेदन पर, श्री रसिकानन्द प्रभु ने पूर्ववर्ती महाराजा, श्री वीरेश्वर भंज द्वारा प्राप्त ब्रह्मशाप का भी, सिद्ध श्री कृष्णमंत्र के तेज से निवारण कर दिया। शाप की घटना इस प्रकार हैः–

मयूरभंज राज्य के अतंर्गत बुढाबलन नदी के तट पर, प्रतिभादेईपुर नामक एक गांव था। इस गांव में एक बीस वर्षीय रूपवान ब्राह्मण, अपनी सोलह वर्षीया पत्नी सहित निवा्स करते थे। ब्राह्मणपत्नी केवल असामान्य सुन्दरी ही नहीं अपितु परम पतिव्रता भी थी। एक दिन यह रूपवती ब्राह्मणी कलशी लेकर बुढ़ाबलन नदी से जल लेने गई। उसी समय महाराजा वीरेश्वर भंज भी वहां आखेट करते हुए आ पहुँचे। ब्राह्मणी के अपूर्व सौंदर्य को देखकर, वे मोहित हो गये। उन्होंने अपने मंत्री को आदेश दिया कि जैसे भी हो, वह उस सुन्दर स्त्री को लाकर, उन्हें प्रदान करे। काम पीड़ित महाराजा का आदेश पाकर, मंत्री उस स्त्री की प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करने लगा। उसने स्वयं भी ब्राह्मणी के पति के पास जाकर, उनसे कहाः–

चारि क्रोश पृथ्वी चारि कन्या दिब तोरे।
तोमार प्रेयसी राजा दिबे द्विजबरे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश–७/६६

(अर्थात हे ब्राह्मण! तुम अपनी पत्नी को, राजा को दे दो। मैं तुमको इस के बदले में चार कोस भूमि और चार रूपवती कन्याएँ प्रदान करूँगा)

मंत्री के वचनों को सुन कर ब्राह्मण अत्यन्त कुपित होकर, मंत्री सहित राज अनुचरों की तीव्र भर्त्सना करने लगे। मंत्री के बहुत प्रयास करने पर भी, ब्राह्मण जब टस से मस न हुए, तो और उपाय न देखकर, उसने जाकर महाराजा को सूचित कर दिया। तब महाराजा वीरेश्वर ने भी ब्राह्मण

देवता को समझाने का प्रयास किया किन्तु उन्होंने इस दुष्ट अनुरोध को, ज़ोर देकर अस्वीकार कर दिया। हार कर राजा ने अपने अनुचर भेज कर ब्राह्मण की हत्या करवा दी। जब महासती ब्राह्मणी ने महाराजा द्वारा अपने पति की हत्या करवाये जाने का समाचार सुना तो उसने गांव के निवासियों से कहकर एक कुण्ड खुदवाया। कुण्ड खनन के पश्चात उस में लकड़ियां भरवाकर, अग्नि प्रज्ज्वलित करके, ब्राह्मणी जब अपने पति के मृत शरीर के साथ अपने आप को अग्नि में भस्म करने के लिये उस प्रज्ज्वलित अग्नि की परिक्रमा कर रही थी, उसी समय महाराजा वहां आ पहुंचे। अपने पति की विरह में विलाप करती हुई वह महासती महाराजा को देखकर, अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी। उसने क्रोधावेश में महाराजा को शाप दे दिया।

तोर बंशे जेउ राजा हइबे जनम।
षोड़श वछर काले निबे तारे यम।।
तार पत्नी पतिहीना कान्दिया बेड़ाबे।
जबे सती आमि एउ प्रमाण हइबे।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश—७/७८,७९

(अर्थात हे राजन! तुम्हारे वंश में जिस किसी पुरुष का भी जन्म होगा, सोलह वर्ष की आयु में उसको यमराज ले जायेंगे, अर्थात उसकी मृत्यु हो जाएगी और उस की पत्नी मेरी तरह पतिहीन होकर, विलाप करती रहेगी। यदि मैं सती हूँ तो सचमुच ऐसा होता रहेगा।)

ब्राह्मणी का शाप पाकर कामांध राजा, धीरे—धीरे प्रकृतिस्थ होने लगे। काम का ज्वार उतरने पर उनको यह ऐहसास हो गया कि उन के वंश के लिये तो सर्वनाश का अवसर उत्पन्न हो गया था। अत्यन्त कातर हो कर, राजा उस महासती के चरणों में गिर पड़े और गिड़गिड़ा कर अपने वंश को शापमुक्त करने के लिये उनसे बार बार प्रार्थना करने लगे। महाराजा की करुणावस्था को देखकर, ब्राह्मणी को दया आ गई। दया से पसीज कर उसने महाराजा के वंश की रक्षा करने के लिये एक उपाय कर दिया। उसने एक मर्यादा बांधते हुए महाराजा से कहा, "तुम्हारे वंश में सभी पुरुषों की पन्द्रह वर्ष की आयु में ही पुरुष संतान हो जाया करेगी परन्तु सोलह वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु अवश्य हो जाया करेगी।" उसी समय

से मयूरभंज के महाराजा के वंश के पुरुष पन्द्रह वर्ष की आयु में पुत्र के जनक बन कर सोलहवर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त होने लगे।

जिस समय महाराजा वैद्यनाथ भंज ने श्री रसिकानन्द प्रभु का चरणाश्रय ग्रहण किया, उस समय उनकी आयु चौदह वर्ष थी। जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं, श्री रसिकानन्द प्रभु ने भंज वंश के ब्रह्मशाप का, सिद्ध श्रीकृष्णमंत्र के तेज से निवारण कर दिया था। श्री रसिकानन्द प्रभु की कृपा के कारण, जब महाराजा वैद्यनाथ भंज, पच्चीस वर्ष की आयु को पार कर गए तो, उन्होंने अपने वंशजों सहित आकर उनसे श्रीकृष्ण मंत्र की दीक्षा ग्रहण की। श्री रसिकानन्द प्रभु की कृपा से महाराजा परम श्री कृष्ण भक्त हो गए। भजन करते करते वे ऐसे उच्च स्तर पर पहुंच गए कि जिस समय, उन्होंने मयूरभंज में अपना शरीर छोड़ा, ठीक उसी समय वृन्दावन में बहुत से वैष्णवों ने उनको मंदिरों के दर्शन करते देखा।

मयूरभंज के शापमुक्त महाराजा, परवर्तीकाल से श्रीश्यामानन्दी गोष्ठी के नये महंतों की गद्दीनशीनी के समय, उनके मस्तक पर छत्र धारण करने की महान गौरवशाली सेवा, परम्परा से करते चले आ रहे हैं।

श्री रसिकानन्द प्रभु की असीम कृपा से महाराजा श्रीवैद्यनाथ भंज ने, परम वैष्णव बन कर, वैष्णवों के मानदण्डः

तृणादपि सुनीचेन तरोरिब सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरि।।

का पूर्णरूपेण, अपनी जीवनशैली में किस प्रकार सन्निवेश कर लिया था, निम्नलिखित घटना उस का एक दृष्टांत है।

एक बार राजा के दरबार में, श्री रसिकानन्द प्रभु भावविह्वल होकर, श्रीमद्भागवत से श्रीकृष्ण की मधुर लीला का वर्णन कर रहे थे। महाराजा वैद्यनाथ भंज भी अपने सहोदर भ्राताओं के साथ भाव–विभोर होकर कथा का श्रवण कर रहे थे। प्रधान आमात्य भी अमृतमयी कथा सुनने में मस्त थे। ठीक इसी समय एक राज कर्मचारी, एक विशेष कार्यवश परम्परानुसार एक वस्त्र भेंट करते हुए, महाराजा के सम्मुख खड़ा होकर, आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। महाराजा ने आदेश प्रदान करने के लिये इशारा करते हुए, उस राज कर्मचारी की ओर देखा। उस समय श्री रसिकानन्द प्रभु के एक

शिष्य, द्विज रामकृष्ण भी वहां पर उपस्थित थे। इस तेजस्वी ब्राह्मण को, भुवनमंगल के नाम से भी जाना जाता था। महाराजा, श्रीकृष्ण लीला का श्रवण स्थगित करके, विषयकर्म के प्रति आग्रह का प्रकाश कर रहे थे, यह देख कर ये द्विज रामकृष्ण, अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे।

उठिया कहिला राजा हइला अज्ञान।
कृष्णामृत बाणी छाड़ि कया कर पान।।
निघीते मारिला एक चड़ राजा मुखे।
मूर्च्छागत हैला राजा सबे पाइला दुःखे।।

—श्रीश्री रसिक मंगल—दक्षिण २६/१२,१३

(अर्थात् रामकृष्ण खड़े होकर कहने लगे—राजन। तुम अज्ञानी की भान्ति श्रीकृष्ण कथामृत का आस्वादन छोड़कर, विषयवार्ता का श्रवण कर रहे हो। उपरोक्त शब्द कहते हुए, श्री रामकृष्ण ने महाराजा के मुख पर थप्पड़ मार दिया, जिस के कारण राजा मूर्छित होकर गिर पड़े एवम् सभी उपस्थित लोग अत्यन्त दुःखी हुए।)

द्विज रामकृष्ण के थप्पड़ के प्रचण्ड घात से महाराजा के मूर्छित हो जाने पर आमात्यगण अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और अपनी अपनी तलवारों को निकालकर, श्री रामकृष्ण की हत्या करने के लिए, राजा के भ्राताओं की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। इसी समय महाराजा की मूर्छा भंग हो गई। उन्होंने जब देखा कि उन के आमात्य, श्री रामकृष्ण की हत्या करने को उद्यत थे, तो उन्होंने आमात्यों की यथोचित भर्त्सना की। परम वैष्णव महाराजा ने, तत्क्षण श्री रामकृष्ण के चरण पकड़ कर कहा, "श्रीगुरुदेव के श्रीमुख से निःसृत श्रीकृष्ण कथामृत का परित्याग करके, मैंने अन्यत्र दृष्टिपात किया था। मेरे इस अपराध के लिए, आपके द्वारा दिया गया दण्ड उचित ही है। आज मेरे गुरुभाई ने, मेरे साथ भाई जैसा ही व्यवहार किया है। श्रीकृष्ण कथा छोड़कर, मैं विषयों में मग्न हो रहा था। आपने आज मुझे इससे बचा लिया।" यह कहकर महाराजा ने अनुतापजनित अश्रुओं से अपने वक्षः स्थल को प्लावित करते हुए, सभी उपस्थित लोगों के सम्मुख ही, द्विज श्री रामकृष्ण का आलिंगन करके, व्याकुल होकर उच्च स्वर से रुदन आरम्भ कर दिया। फिर महाराजा ने श्री रामकृष्ण को अपने पास बैठा कर

पूछा, "मेरे कठोर अंग का स्पर्श करके आप के कोमल हाथ में वेदना तो नहीं हुई ?"

महाराजा वैद्यनाथ की ऐसी दीनता तथा मधुरता देखकर, श्रीरसिक मुरारी अत्यन्त प्रसन्न होकर महाराजा को उनके भ्राताओं सहित, कृपाआशीर्वाद प्रदान करने लगे। मगर श्री रसिक मुरारी ने महाराजा वैद्यनाथ भंज की अपने सम्मुख ताड़ना करने के लिये, श्री भुवनमंगल के प्रति रोष प्रकट किया तथा उन्हें अपने पास बुलाकर कहा, "मेरी उपस्थिति में मेरे ही सम्मुख, विष्णुकलाजात राजा को तुम ने अहंकारयुक्त होकर जो दण्ड प्रदान किया है, वह तुम्हारे औद्धत्य का ही परिचय है। अतः तुम्हें हमारे निकट रहने की और आवश्यकता नहीं। तुम अन्यत्र चले जाओ।"

श्री भुवनमंगल की अनुनय–विनय एवम् प्रार्थना से भी जब श्री रसिकानन्द प्रभु सन्तुष्ट नहीं हुए तो श्री भुवनमंगल अत्यन्त दुःखी मन से वन में जाकर, एक शिला पर बैठकर अश्रुपूर्ण लोचनों सहित, महामंत्र का जाप करने लगे। किन्तु आश्चर्य की बात यह हुई कि उन को देखकर, वन के हिंसक व्याघ्रों आदि ने आकर उन को प्रणाम किया और वे उनके चारों ओर बैठ गए।

इस ओर जब महाराजा ने देखा कि उनके ही कारण, श्री भुवनमंगल ऐसा मानसिक कष्ट भोग रहे थे तो वे भी स्नान तथा आहार आदि का परित्याग करके अपने कक्ष का द्वार बन्द करके सोते रहे। मंत्री, आमात्य और महारानी आदि तक भी उनको बुला बुलाकर हार गये परन्तु वे टस से मस न हुए।

राजा कहे भुवनमंगल ना आसे जतक्षन।
कभु ना उठिब आमि शुन सर्ब्बजन।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १६/१०६

(अर्थात राजा ने कहा जब तक श्री भुवनमंगल नहीं आते, तब तक मै नहीं उठूंगा।)

श्री रसिकानन्द प्रभु ने जब सारी बात सुनी तो उन्होंने हंसते हुए, नागरी उद्धव को महाराजा के पास यह संदेश दे कर भेजा कि "वे शीघ्र ही भुवनमंगल को ले आयेंगे। अतः राजा द्वार खोलकर बाहर आ जायें।" श्री

रसिकानन्द प्रभु का यह सन्देश पाकर, महाराजा ने तत्क्षण स्नान आदि करके, श्री रसिकानन्द प्रभु के पास पहुंच कर, उनका चरणामृत और अधरामृत ग्रहण किया।

राजा के आदेश से मंत्रियों ने श्री भुवनमंगल की बहुत खोज की। खोज करते करते जब वे जंगल में गए तो उन्होंने श्री भुवनमंगल को वहां भयंकर वन्य व्याघ्रों आदि के बीच में बैठे हुए देखा। मंत्रियों के बार बार आग्रह करने पर भी जब श्री भुवनमंगल नहीं आये तो श्री रसिकानन्द प्रभु के आदेश से नागरी उद्धव एक मंत्री को साथ लेकर उस स्थान पर गए जहां श्री भुवनमंगल बैठे हुए थे। जब नागरी उद्धव ने उनको श्रीरसिकानन्द प्रभु का आदेश सुनाया तो श्री भुवनमंगल एक भयंकर व्याघ्र की पीठ पर बैठकर, चारों ओर से अन्य भयानक व्याघ्रों आदि से घिरे हुए, श्री रसिकानन्द प्रभु के पास पहुंचे। महाराजा वैद्यनाथ भंज, श्री भुवनमंगल के लिये, श्रीरसिककानन्द प्रभु के चरणारविन्द में बारम्बार प्रार्थना करने लगे। तब श्री रसिकानन्द प्रभु ने श्री भुवनमंगल को पहले की भांति अपनी निजी सेवा प्रदान करके, कृपापूर्वक अपने ही पास रख लिया।

महाराजा की ऐसी गुरुनिष्ठा व वैष्णवधर्म के प्रति प्रगाढ़ अनुराग देखकर मयूरभंज राज्य के निवासी भी श्रीरसिकानन्द प्रभु की कृपा प्राप्त करके वैष्णव धर्मावलम्बी हुए। जब श्री रसिकानन्द प्रभु ने मयूरभंज से, श्री श्यामानन्द प्रभु के पास, गोविन्दपुर के लिए प्रस्थान किया तो महाराजा ने बहुत से मूल्यवान पदार्थ और द्रव्य सम्भार उन के साथ भेजे। जाते समय श्री रसिकानन्द प्रभु मयूरभंज से श्रीयमुना ठाकुरानी को साथ ले गए। उनके प्रबल आग्रह के कारण, श्रीश्यामानन्द प्रभु ने श्री यमुना ठाकुरानी को पत्नी रूप में ग्रहण किया।

❖

भोग के लिये ही सही, श्री गोपीनाथ जी की अमृतकेली खीर का आस्वादन करने के लिए प्रकट हुई अपने मन की अभिलाषा को, श्री माधवेन्द्र पुरी अपराध ही मानने लगे।

श्री गोपीनाथ जी के भोग के पश्चात, शयन आरती के दर्शन करके, श्री पुरीपाद, श्री गोपीनाथ जी को दण्डवत प्रणाम करके मन्दिर से बाहर आकर गांव के जनशून्य हाट (बाज़ार) में बैठकर नामकीर्तन करने लगे। मन्दिर के पुजारी भी, श्री गोपीनाथ जी को शयन देकर अपने घर चले गए। रात में पुजारी को स्वप्न में दर्शन देकर श्री गोपीनाथ जी ने यों कहाः–

उठह पुजारी कर द्वार बिमोचन।
क्षीऱ एक राखियाछि सन्यासी कारण।।
माधब पुरी सन्यासी आछे हाटेते बसिया।
ताहाकेत एइ क्षीर शीघ्र देह लयां।।

–श्रीश्री चैतन्य चरितामृत–मध्य–४

(अर्थात हे पुजारी! तुम उठकर मन्दिर का द्वार खोलो। माधवेन्द्र पुरी नामक एक सन्यासी हाट में बैठे हुए हैं। उनके लिए मैने खीर का एक भांडा रखा हुआ है। तुम शीघ्र वह भांडा ले जाकर उनको (श्री पुरी पाद को) दे दो।)

स्वप्नदर्शन करके पुजारी की निद्रा भंग हो गई। स्वप्नादेश के अनुसार रात्रि में ही स्नान करके पुजारी ने जब मंदिर का द्वार खोला, तो वे दंग रह गए। उन्होंने देखा कि श्री गोपीनाथ जी के उत्तरीय वस्त्र के नीचे अमृतकेली खीर का एक भांडा छुपाया हुआ था। पुजारी जी ने उस भांडे (पात्र) को हाथ में लेकर, उस स्थान का संस्कार किया तथा मंदिर का द्वार बंद कर दिया। फिर वे खीर के पात्र के साथ, हाट में आकर श्री माधवेन्द्र पुरी जी को ढूंढने लगे। श्री पुरीपाद को ढूंढते हुए पुजारी जी यों कह रहे थे–

क्षीर लह एइ जार नाम माधबपुरी।
तोमार लागि गोपीनाथ क्षीर कैल चुरि।।'

–श्रीश्री चैतन्यचरितामृत–मध्य–४

(अर्थात् जिन का नाम श्री माधवेन्द्र पुरी है, वे आकर खीर ग्रहण

करें। उनके लिये श्री गोपीनाथ जी ने खीर के इस पात्र (भांडे) को चोरी करके रखा है।)

श्री माधवेन्द्र पुरी जी ने जब सुना कि उनका नाम लेकर कोई उनको पुकार रहा था तो उन्होंने सामने आकर अपना परिचय प्रदान किया। पुजारी जी ने खीर का भांडा उनको देकर, उनको दण्डवत प्रणाम किया और श्री गोपीनाथ जी द्वारा खीर चोरी करने की घटना से उनको अवगत कराया। स्वयं श्री गोपीनाथजी ने उनके लिए खीर का पात्र छुपाकर रखा था, यह जान कर श्री माधवेन्द्र पुरी भावविह्वल होकर अश्रुविसर्जित करने लगे। वे अमृतकेली खीरप्रसाद को खा कर ही शांत नहीं हुए बल्कि उन्होंने खीर के उस मिट्टी के भांडे को भी टुकड़े–टुकड़े करके, अपने बहिर्वास में बांध लिया। उन्होंने मन ही मन सोचा कि वे प्रतिदिन एक एक टुकड़ा खाकर श्री गोपीनाथ जी की इस अद्भुत कृपालुता के गुण को याद करते रहेंगे। इस घटना के बाद ही श्रीगोपीनाथ जी, श्री खीरचोरा गोपीनाथ के नाम से विख्यात हो गये।

नीलाचल जाते समय, श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु रेमुना पहुंचकर, श्री गोपीनाथ जी के दर्शन करके भावविभोर हो उठे थे। उनमें अष्ट सात्विक विकार प्रकट हो गये थे तथा वे बहुत समय तक, यहां नृत्य करते रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु ने, श्री नित्यानन्द प्रभु से उस समय यों कहा था:–

प्रभु कहे नित्यानन्द करह बिचार।
पुरी सम भाग्यबान केह नाहि आर।।
जांर लागि गोपीनाथ क्षीर कैल चुरि।
अतएब नामहैला क्षीर चोरा हरि।।

–श्रीश्री चैतन्यचरितामृत–मध्य–४

(अर्थात श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे नित्यानन्द! विचार करो, श्री माधवेन्द्र पुरी जैसा भाग्यवान अन्य कोई नहीं। जिन के लिये, श्री गोपीनाथजी ने खीर की चोरी करके अपना खीरचोरा गोपीनाथ नाम धराया।)

जैसा कि पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है, श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री

रसिकानन्दन प्रभु जी के साथ नृसिंहपुर से रेमुना पहुंचे थे। वे श्री गोपीनाथ जी के दर्शनार्थ मन्दिर में गए, किन्तु वहां उनको श्री गोपीनाथ जी के दर्शन प्राप्त नहीं हुए, क्योंकि वे उस मन्दिर में विराजमान नहीं थे। उन्होंने निकटवर्त्ती ग्राम के कई निवासियों से पूछताछ की किन्तु उन में से कोई भी ठीक–ठीक नहीं बता सका। केवल एक व्यक्ति ने यह कहा कि "पहले कभी श्री गोपीनाथ जी इसी मन्दिर में पूजित होते थे और हमलोगों ने भी उनके दर्शन किये थे किन्तु मुसलमानों के अत्याचारों के भय से जब ग्राम निवासियों ने ग्राम छोड़ा तो उसके पश्चात दोबारा यहां गोपीनाथ जी के दर्शन नहीं हुए।" ग्रामवासी का उत्तर सुनकर, दोनों प्रभु श्रीगोपीनाथ जी को खोजते फिरने लगे। जब बहुत खोज करने पर भी उनका कोई पता न चला तो मर्माहत होकर श्रीश्यामानन्द प्रभु ने अन्न तथा जल का परित्याग कर दिया। भक्तवत्सल भगवान अपने भक्त की ऐसी दयनीय अवस्था देखकर निश्चेष्ट न रह सके। उन्होंने रात्रि को स्वप्न में दर्शन देकर, श्री श्यामानन्द प्रभु से कहा, "हे श्यामानन्द! तुम मेरे लिये कोई चिन्ता मत करो। गाँववासियों ने हाट में मेरे सर्वांग में सिन्दूर का लेपन करके मुझे चण्डीदेवी बना दिया है। तुम मुझे वहां से लाकर पुनः इसी मन्दिर में स्थापित करके, पहले की भान्ति मेरी पूजा आरम्भ करो।" स्वप्नदर्शन से श्री श्यामानन्द प्रभु की निद्रा भंग हो गई। सवेरा होते ही उन्होंने श्री रसिकमुरारी तथा अन्य शिष्यों को, श्री गोपीनाथ जी के स्वप्नादेश के विषय में सूचित किया।

स्वप्न के निर्देशानुसार, श्री श्यामानन्द प्रभु रेमुनावासियों के साथ हाट में गये। वहां उन्होंने सिंदूर से लेपित एक प्रस्तरफलक देखा, जिसकी चंडीदेवी के रूप में कुछ ग्रामवासी पूजा कर रहे थे। श्री श्यामानन्द प्रभु के आदेशानुसार, उस प्रस्तरफलक को भली भान्ति धोया गया, जिस के फलस्वरूप, सिन्दूर साफ हो गया तथा श्री गोपीनाथ जी के अनिंद्य, सुन्दर, त्रिभंग भंगिम श्रीविग्रह प्रकाशित हो गये। तब श्री श्यामानन्द प्रभु ने उन श्रीविग्रह को पांचतीर्थों के जल से स्नान कराकर, महोत्सवपूर्वक उनके प्राचीन मंदिर में स्थापित कर दिया। इस महोत्सव के उपलक्ष्य में, चौबीस प्रहरीय अखण्ड श्री हरिनाम संकीर्तन महायज्ञ का अनुष्ठान किया गया। निम्नलिखित नाम ध्वनि मुख्य रूप से इस महायज्ञ में छाई रही जिसका

शुभारम्भ कभी स्वयं श्री अद्वैत प्रभु ने किया था:–

'श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण, हरे राम श्री राधा गोविन्द।।"

इस विषय में श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ग्रन्थ के दशम अध्याय के निम्नलिखित पयार का अवलोकन कीजिये :–

"शांतिपुरे श्री अद्वैत नाम आरम्भिल ।
निताई–गौरांग दोंहे प्रेमे नृत्य कइल।।"

(अर्थात शांतिपुर में श्री अद्वैत प्रभु ने इस नाम को आरम्भ किया था, जिसमें श्री नित्यानन्द प्रभु व श्री गौरांग महाप्रभु ने प्रेमपूर्वक नृत्य किया था।)

श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु के रेमुना वास के समय ही, उनके अलौकिक चरित्र की कथा श्रवण करके, यवन शाह जी ने, रेमुना आकर दोनों प्रभुओं के दर्शन किये। उनकी प्रार्थना पर श्री श्यामानन्द प्रभु ने यवन शाह जी को हरिनाम महामंत्र प्रदान किया था।

रेमुना से दोनों प्रभु क्रमशः सप्तसरा, रामचण्डी, ब्रज सरोवर तथा गर्गेश्वर महादेव आदि के दर्शन करके गौरदाण्ड पहुंचे। वे दोनों प्रभु गौरदाण्ड की पवित्र रज पर लोटने लगे। इसी स्थान पर श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी जी का आविर्भाव हुआ था। यहां पर श्री श्यामानन्द प्रभु ने अकस्मात तीन बार बलदेव नाम का उच्चारण किया–

बलदेव नाम तिनबार उच्चारिल।
महाप्रभु जैछे नरोत्तमे प्रकाशिल।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १०/११

(अर्थात श्री श्यामानन्द प्रभु बलदेव नाम का तीन बार उच्चारण किया, जिस प्रकार, श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने, श्री नरोत्तम ठाकुर का प्रकाश किया था।)

श्री श्यामानन्द प्रभु के आह्वान पर ही इस रेमुना में, गौड़ीय वैष्णवाचार्य एवम् श्री गोविन्द भाष्य, भाष्यकार, श्रील बलदेव विद्याभूषण पाद का, आविर्भाव हुआ था।

❖

उन्नविंश अध्याय

नीलाचल में श्री जगन्नाथ देव के रथ का अचल होना एवम कुंज मठ की स्थापना

(ईसवी सन् 1619)

रेमुना में श्री खीरचोरा गोपीनाथ जी की सेवा का पुनः प्रकाश करके, श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु ने महाभारत में वर्णित विराट राज्य के लिए प्रस्थान किया। अज्ञातवास के समय, इस राज्य में निवास के समय, पाण्डवों ने अपने अस्त्रों–शस्त्रों को एक समी वृक्ष पर छिपाकर रखा था। उस वृक्ष के दर्शन करके, दोनों प्रभु नीलगिरि चले गए। नीलगिरि के राजा मर्दराज, श्री हरिचन्दन ने अपनी पट्टरानी के साथ, श्री श्यामानन्द प्रभु के पास आकर, उनके चरणों का आश्रय ग्रहण किया। नीलगिरि में धोवशीला नामक एक अति पवित्र स्थान है, जहाँ श्री श्यामानन्द प्रभु ने सेवा करने के लिये, एक अधिकारी नियुक्त किया। श्री रसिकानन्द प्रभु सूर्यपुर होते हुए, बड़ग्राम में, श्री श्यामानन्द प्रभु से पुनः मिले। बड़ग्राम में श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री वंशीधर–श्यामा की सेवा का भार, श्री बलभद्र दास को सौंपा । मंगलपुर के भुईंयां ने आकर, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणों का आश्रय ग्रहण किया, जिसके उपरान्त, प्रभु द्वय साथ साथ भद्रक गए। इस स्थान पर बड़ी संख्या में उत्कल वासियों ने, श्री रसिकानन्द प्रभु के चरणारविन्द का आश्रय ग्रहण किया। भद्रक से श्री श्यामानन्द प्रभु, बाणपुर होते हुए, श्री साक्षीगोपाल पहुंचे। श्रीसाक्षीगोपाल की अपरूप सौन्दर्य राशि का दर्शन करके, वे भावविभोर हो उठे। उनके श्रीअंगो में स्वेद, कंप, अश्रु, पुलक आदि अष्ट सात्विक विकार प्रकाशित होने लगे। वे कभी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर 'हरिबोल' 'हरिबोल' की ध्वनि करते हुए, भक्तों के साथ नृत्य करने लगते तो कभी भावविह्वल होकर, अश्रुविसर्जित करते हुए, भूमि पर

लोटने लग पड़ते थे। जब वे कुछ स्थिर हुए तो श्री साक्षीगोपाल जी के सेवक ने आकर उनको माला तथा चंदन आदि अर्पित किये एवं सभी भक्तों सहित प्रभुद्वय को प्रसाद का भोजन कराया।

साक्षीगोपाल से प्रभुद्वय ने अन्य भक्तों के साथ, श्री जगन्नाथ देव जी के दर्शन करने के लिये, पुरीधाम के लिये पैदल ही प्रस्थान किया। रास्ते में संध्या उतर आने के कारण उन लोगों को पुरीधाम से पांच कोस पहले ही रुकना पड़ा। रात को श्री जगन्नाथ देव ने स्वप्न में दर्शन देकर,श्रीश्यामानन्द प्रभु से यों कहा–

आज्ञा कैल शुन ओहे श्यामानन्द राय।
याने नाहि चड़ि केने पदे चलि जाओ।।
तोमार दुःख हैले मोर दुःख हय।
मोर अंग जेई तोमार अंग सुनिश्चय।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १०/४७–४८

(अर्थात हे श्यामानन्द! तुम किसी वाहन द्वारा यात्रा करने के बजाय, पैदल ही क्यों चले आ रहे हो? तुम्हारे कष्ट से, मुझे भी कष्ट होता है, क्योंकि तुम्हारा शरीर निश्चितरूप से मेरा ही शरीर है।)

श्री जगन्नाथ देव जी के अन्तर्धान हो जाने पर, श्री श्यामानन्द प्रभु की निद्रा भंग हो गई। उन्होंने श्री रसिकानन्द प्रभु को स्वप्न के विषय में जानकारी दी। दूसरे दिन सवेरे, नित्यकर्मों से निवृत्त होकर, भक्तों ने नाम संकीर्तन आरम्भ किया। श्री श्यामानन्द प्रभु, दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर, भावविभोर होकर उन लोगों के मध्य मधुर–मधुर नृत्य करने लगे। उस दिन, श्री जगन्नाथ देवजी की रथ यात्रा थी। पुरीधाम में महा समारोह के साथ, शंख, भेरी, दुंदुभि आदि वाद्य यन्त्रों की ध्वनि के बीच श्री जगन्नाथ देवजी, बलराम जी तथा सुभद्रा जी, श्री मंदिर से पहुंडी विजय करके, अपने अपने रथों पर आरूढ़ हो गए। उपस्थित भक्तों तथा श्रद्धालुओं की जयध्वनि से, चारों दिशाएं गूंज उठीं। इस के पश्चात्, श्री बलभद्रजी का तालध्वज रथ तथा श्री सुभद्रा जी का विजया रथ, अनायास ही गुंडिचा मन्दिर के लिए चल दिये, किन्तु श्री जगन्नाथ देव जी का नन्दीघोष रथ, टस से मस नहीं हुआ। जब रथ को चलाने के सारे प्रयत्न विफल हो गये तो पुरी के

महाराज, श्री गजपति जी, चिन्तित हो उठे। हज़ारों भक्त, रथ की रस्सी को पकड़ कर खींचने लगे। महाराज के सारे हाथियों को भी रथ खींचने के लिए लगाया गया किन्तु श्रीजगन्नाथ देव जी का रथ पर्वत की भांति भारी हो गया तथा तिल भर भी आगे नहीं बढ़ा। पुरी के महाराजा हताश हो गए। उसी समय मुदीरथ को, श्री जगन्नाथ देव जी का यह आदेश प्राप्त हुआः–

तारे आज्ञा कैल प्रभु जगत् ईश्बर।
मोर भक्त श्यामानन्द रसिकशेखर।।
आठारनालाते आछे तारा दुइ जन।
तारे आन गिया सभे करिया यतन।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १०/६३–६४

(अर्थात श्री जगन्नाथ देव जी ने आदेश दिया कि "मेरे भक्त श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु, दोनों ही अठारहनाला में हैं। तुम सब वहाँ जाकर, उन दोनों को यत्नपूर्वक यहाँ ले आओ।")

श्री जगन्नाथ देव जी के इस आदेश से, जब मुदीरथ ने महाराज को अवगत कराया, तो वे सभी पात्र मित्रों को लेकर, श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु को लाने के लिये स्वयं अठारहनाला गए। महाराजा ने दोनों प्रभुओं को, श्री जगन्नाथ देव जी के आदेश से अवगत कराया, जिसे सुनकर, प्रभुद्वय भक्तों को लेकर तुरन्त बड़दांड में आ पहुंचे। तुमुल नाम संकीर्तन ध्वनि के बीच रथ की परिक्रमा करके, श्री श्यामानन्द प्रभु के आदेश से, ज्योंही श्री रसिकानन्द प्रभु ने अपने मस्तक से रथ को धक्का लगाया तो सभी को विस्मित करते हुए, रथ ने तुरन्त चलना आरम्भ कर दिया। घड़ घड़ ध्वनि करते हुए रथ थोड़ी ही देर में गुंडिचा मंदिर जा पहुंचा। महाराज गजपति तथा उपस्थित सहस्रों भक्त, प्रभुद्वय के प्रति, श्री जगन्नाथ देव जी की ऐसी प्रत्यक्ष कृपा के दर्शन करके, आश्चर्यचकित तथा भावविभोर हो गए। महाराज गजपति ने पुरी धाम में रहने के लिए, श्री श्यामानन्द प्रभु को एक उत्तम निर्जन स्थान प्रदान किया, जहां उन्होंने एक मंठ की स्थापना की। उन्होंने उसका कुंजमठ नामकरण किया।

एक रात जब श्री श्यामानन्द प्रभु सो गए तो श्रीजगन्नाथ देव जी ने उन को स्वप्न में दर्शन देकर यों कहाः–

बले शुन श्यामानन्द आमार बचन।
बहु दुःख पाइले आमाय करिते दर्शन।।
सेइखाने एकइ बिग्रह बानाइबे।
श्रीकृष्णेर रूप श्री गोविन्द नाम दिबे।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १०/७७–७८

(अर्थात श्रीजगन्नाथ देव जी ने कहा "हे श्यामानन्द! तुम मेरी बात सुनो। मेरे दर्शन करने के लिए आते समय, तुम को बहुत दुःख उठाना पड़ा। तुम वहां पर, श्रीकृष्ण के एक विग्रह की प्रतिष्ठा करके, उस का नाम श्री गोविन्द रखना।")

श्री श्यामानन्द प्रभु ने सवेरे, श्री रसिकानन्द प्रभु को श्री जगन्नाथ देव जी के आदेश से अवगत कराया तथा श्री जगन्नाथ देव के लिए छप्पन भोग की ऐसी व्यवस्था की जिस में पंचकोसी नीलाचल में निवास करने वाले सभी लोग, अमृत से भी स्वादिष्ट महाप्रसाद का भोजन करके, श्रीश्यामानन्द प्रभु का यशोगान करते हुए, विदा हुए। श्री रसिकानन्द प्रभु ने कुञ्जमठ की सेवा के लिए एक अधिकारी नियुक्त किया। परवर्ती काल में, महाराज गजपति नृसिंह देव ने, श्री रसिकानन्द प्रभु को, कुंज मठ से संलग्न फुल टोटा नामक उद्यान प्रदान किया। ईसवी सन् १६३७ में, श्री जगन्नाथ देव जी के मंदिर परिसर में विराजमान श्री वटकृष्ण जी के, श्री रसिकानन्द प्रभु के साथ, कुंज मठ में आ जाने पर, महाराज ने इन श्रीविग्रह की सेवा के लिए भी बहुत सी भूसम्पत्ति दान की। श्री रसिकानन्द प्रभु के नामानुसार, महाराज ने श्री वट– कृष्ण का नाम परिवर्तित करके, 'श्री रसिकराय' रखा।

नीलाचल से श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु, गोविन्दपुर आए, जहां श्री विनोद राय जी की दर्शन करके, पंचदिवसीय रासमहोत्सव का आयोजन किया। इस के पश्चात् कानपुर होते हुए वे, श्री गोपीनाथ जी के पुनः दर्शन करने के लिए रेमुना गए। यहां कुछ दिन रहने के पश्चात्, श्री श्यामानन्द प्रभु राजघाट पहुंचे।

श्री श्यामानन्द प्रभु द्वारा मगर को मंत्रदान एवं मायावादी सन्यासी, श्री शंकरदास का उद्धार

अष्टादश अध्याय

गोविन्दपुर में रास महोत्सव

ईसवी सन् १६१८ में, श्री श्यामानन्द प्रभु गोपीवल्लभपुर गए। वहां से वे श्री रसिकानन्द व अन्य बहुत सारे शिष्यों को साथ लेकर नईहाटी गए। दोनों प्रभुओं के सम्पर्क में आकर, नईहाटी के बहुत से निवासी, वैष्णवधर्म ग्रहण करने लगे। वहां श्री अर्जुनी के घर रहते हुए, श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु ने तीन महा–महोत्सव सम्पन्न किये।

नईहाटी से दोनों प्रभु, केसीआड़ी गये, जहां ब्रजमोहन, नारायण दास, श्यामदास, राधामोहन तथा यादवेन्द्र आदि ने, श्री रसिक मुरारी जी से दीक्षा ग्रहण की। केसीआड़ी से दोनों प्रभु झाटीआड़ा गये। वे दोनों जहां जहां भी जाते थे, उनके दिव्य गुणों से आकृष्ट होकर हजारों व्यक्ति उनके पास आकर उनका चरणाश्रय ग्रहण करते थे। झाटीआड़ा से मुरूडा पहुंचने पर, वहां के ज़मींदार ने, श्री श्यामानन्द प्रभु क़ी सेवा के लिये, उनको गोविन्दपुर नामक ग्राम भेंट किया तथा उनके लिये वासोपयोगी गृह का भी निर्माण करवाया। श्रीश्यामानन्द प्रभु, श्रीमती गौरांग देवी, श्रीमती यमुनादेवी तथा श्रीमती श्यामप्रियादेवी को क्रमशः– धारेन्दा तथा बड़बलरामपुर से बुलवा कर गोविन्दपुर में श्रीकृष्ण कथा रस–रंग में समय व्यतीत करने लगे। ईसवी सन् १६१८ में ही उन्होंने गोविन्दपुर में श्री विनोदराय जी की सेवा का प्रकाश किया। इसके उपलक्ष्य में उन्होंने एक विशाल तथा भव्य रास महोत्सव का भी आयोजन किया। तभी से इस गांव का नाम पड़ गया, रासगोविन्दपुर।

महापापी उड्डण्ड भुईंयां का उद्धार
(ईसवी सन् 1619)

एक दिन श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिकानन्द प्रभु से कहा, "रसिक! तुमने श्रीकृष्ण प्रेम दान करके, उत्कल प्रदेश के बहुत सारे जीवों

का उद्धार किया है। नृसिंहपुर का ज़मींदार, उद्दण्ड भुईयां अत्यन्त दुष्ट प्रकृति का है, जो सर्वदा ब्राह्मणों तथा वैष्णवों को पीड़ित करता रहता है। यदि ऐसा दुष्ट व्यक्ति वैष्णव धर्म स्वीकार करले तो उस का स्वयं का भी कल्याण होगा तथा उसे देखकर नृसिंहपुर के अन्य निवासी भी वैष्णव धर्मावलम्बी हो जायेंगे। मेरे विचार में उसका उद्धार करने के लिये, हम दोनों को नृसिंहपुर जाना चाहिये।

नृसिंहपुर के निकटवर्ती स्थान, बालिया का ज़मींदार उद्दण्ड भूईंयां, अपने नाम के अनुरूप अत्यन्त उद्दण्ड प्रकृति का था। यथानाम, तथा गुण। मादक द्रव्यों के सेवन में महामत्त उद्दण्ड भुईंयां, चोरी, डकैती, नर हत्या, नारी अपहरण, जैसे नाना प्रकार के दुष्कर्मों में लिप्त था। गौड़मण्डल से नीलाचल जाने वाला मार्ग इसी की ज़मींदारी के बीच में होकर जाता था। उस मार्ग से धनवान, व्यापारी, ब्राह्मण, साधु, वैष्णव, जो कोई भी गुज़रता था, उद्दण्ड भुईंयां उन सब की हत्या करके, उनका सब कुछ लूट लेता था।

एक रात उद्दण्ड भुईंयां ने स्वप्न में देखा कि एक महापुरुष आकर उसके सम्मुख खड़े हो गये और अत्यन्त कोमल स्वर में उस से बोले, "उद्दण्ड! तुम श्री श्यामानन्द प्रभु का चरणाश्रय ग्रहण करो।" इतना कह कर वे महापुरुष अन्तर्हित हो गये। उद्दण्ड भुईंयां की निद्रा भंग हो गई। साथ ही अपने द्वारा किये गये कुकृत्य एक एक करके उसे याद आने लगे और वह उन के कारण पश्चाताप करने लगा। वह स्वप्न के आदेशानुसार, श्री श्यामानन्द प्रभु से दीक्षा ग्रहण करने के लिये भी बेचैन सा हो उठा।

दूसरे ही दिन श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु, बहुत से शिष्यों के साथ, नृसिंहपुर में आ पहुंचे, किन्तु उद्दण्ड भुईंयां दोनों प्रभुओं को पहचान न सका। उनको साधारण वैष्णव जानकर और एक साथ इतने लोगों को देखकर, वह मन ही मन प्रसन्न हो उठा। उसने अपने अनुचरों को साथ लेकर, उन सब का वध करके, उनका सबकुछ लूट लेने के उद्देश्य से उन सब पर आक्रमण कर दिया। भुईंयां के अनुचर द्रुतगति से श्री श्यामानन्द प्रभु,श्री रसिकानन्द प्रभु व अन्य भक्त वैष्णवों पर तीर चलाने लगे। किन्तु उन लोगों के विस्मय की कोई सीमा न रही, जब उनके द्वारा छोड़े गये तीर, श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु व उनके शिष्यों को

विद्ध या आहत न करके, तीर छोड़ने वाले लोगों को ही वापिस आकर विद्ध करने लगे।

जेइ बिन्धे तारे शर फिरि बाजे गिया।
उद्दण्ड राय महाभय पाइल देखिया।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ८/११४

(अर्थात जो तीर छोड़ रहा था, तीर लौटकर उसी को भेद रहा था। यह देखकर उद्दण्ड भुईयां भयभीत हो गया।)

ऐसे समय पर,श्री श्यामानन्द प्रभु व श्री रसिकानन्द प्रभु की कृपा से उद्दण्ड भुईयां को रात्रि का स्वप्न याद आ गया। साथ ही उसे अनुभव होने लगा कि श्री श्यामानन्द प्रभु स्वयं उस का उद्धार करने के लिये नृसिंहपुर पधारे थे। स्वप्न में उसे जिन श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणों का आश्रय लेने का आदेश प्राप्त हुआ था, उन्हीं को अपने सम्मुख पाकर, उद्दण्ड भुईयां ने पश्चाताप के आंसुओं से अपने वक्षःस्थल को प्लावित करते हुए, दौड़कर उन प्रभु के चरणों को पकड़ लिया। दांतों में तृण दबाकर और गलवस्त्र धारण करके, वह श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणारविन्द में साष्टांग दण्डवत प्रणाम करके, यों बोला —

आमि बड़ पापी मूर्ख कारे नाहि चिनि।
अज्ञानेते अपराध करेछि ना जानि।।
दयार सागर प्रभु बारेक उद्धार ।
शरण पशिनु तोमार श्री पाद कमल।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ८/११८/११६

(अर्थात हे प्रभु! मैं अत्यन्त पापी मूर्ख हूँ। आप लोगों को मैं पहचान न सका। अज्ञानवश आप लोगों के चरणारविन्द में घोर अपराध किया। अब मैं आपके चरणारविंद की शरण ग्रहण कर रहा हूँ। हे दया के सागर ! आप मुझ पर कृपा कीजिये।)

उद्दण्ड भुईयां के ऐसे पश्चातापपूर्ण वाक्य सुनकर और एकान्त शरणागति देख कर, श्री श्यामानन्द प्रभु का मन पसीज गया और उन्होंने उस पर कृपा की।

श्री श्यामानन्द प्रभु की कृपा प्राप्त करने के पश्चात, महापापी

उद्दण्ड भुईयां में आए अद्भुत परिर्वतन को देखकर सभी विस्मित होने लगे। जो व्यक्ति साधुओं–वैष्णवों तक की हत्या कर देता था, आज वही साधुओं–वैष्णवों तथा श्रीकृष्ण की सेवा में दत्तचित होकर लग गया था, यह आश्चर्य करने की बात नहीं तो और क्या था?

उद्दण्ड भुईयां के अनुरोध पर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने धारेन्दा से श्री श्यामराय जी के श्रीविग्रह लाकर, नृसिंहपुर में तीन दिवसीय महा–महोत्सव आयोजित किया। तीन दिन–तीन रात, अविराम श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन चलता रहा तथा साधुसेवा होती रही। महोत्सव के दधिमंगल के उपरान्त उद्दण्ड भुईयां ने श्री श्यामानन्द प्रभु के पास जाकर यों निवेदन कियाः–

बड़ दुष्ट महापापी मुइ दुराचार।
सहस्र सहस्र साधु करिनु संहार।।
एक घर भरियाछे गुधड़ि ताहार।
जदि आज्ञा कर आनि साक्षाते तोमार।।

–श्रीश्री रसिक मंगल–दक्षिण १६/६०–६१

(अर्थात हे प्रभु! मैं अत्यन्त दुष्ट, दुराचारी व महापापी हूँ। मैंने सहस्रों साधुओं का संहार किया था, जिनकी एक मात्र सम्बल, गूदड़ियों से एक कमरा भरा हुआ है। यदि आप की आज्ञा हो तो मैं उन गूदड़ियों को आपके पास ले आऊँ।)

श्री श्यामानन्द प्रभु के आदेश से सभी गूदड़ियां वहां लाई गईं। गूदड़ियों ने स्तूपीकृत होकर, एक छोटे पर्वत का आकार धारण कर लिया। इतनी सारी गूदड़ियों को देखकर, श्री श्यामानन्द प्रभु तथा सभी उपस्थित वैष्णवों के आश्चर्य की सीमा न रही। श्री श्यामानन्द प्रभु के आदेशानुसार गणना करने पर, इन गूदड़ियों की संख्या ७१८ (सात सौ अठारह) निकली। इस संख्या से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि श्री श्यामानन्द प्रभु की कृपाप्राप्ति से पहले, उद्दण्ड भुईयां कितना निर्मम था।

श्री श्यामानन्द प्रभु ने महोत्सव में आये वैष्णवों में, उपरोक्त सभी गूदड़ियां वितरित कर दीं तथा साथ ही उन्होंने वैष्णवों से यह निवेदन भी किया कि वे महापापी उद्दण्ड भुईयां पर कृपा करें। उद्दण्ड भुईयां ने उन गूदड़ियों के साथ साथ बहुत से वस्त्र तथा दक्षिणा भी वैष्णवों को प्रदान की,

जिससे प्रसन्न होकर उन लोगों ने भुईंयां को जी भर कर आशीर्वाद देते हुए, अपने अपने स्थानों के लिए प्रस्थान किया।

महापापी श्री उद्दण्ड भुईंयाँ, श्री श्यामानन्द प्रभु की कृपा प्राप्त करने के पश्चात परम वैष्णव हो गए। उनका अनुकरण करके, सहस्रों उत्कलवासी भी, श्री श्याामानन्द प्रभु के चरणों का आश्रय ग्रहण करने लगे।

रेमुना में श्री क्षीरचोरा गोपीनाथजी की सेवा का पुनः प्रकाश (ईसवी सन् 1619)

नृसिंहपुर से श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु को साथ लेकर, श्री क्षीरचोरा गोपीनाथ जी के दर्शन करने के लिये रेमुना गये। इन श्री क्षीरचोरा गोपीनाथ जी का निर्माण त्रेतायुग में स्वयं भगवान श्री राम तथा श्री सीता देवीं के करकमलों द्वारा हुआ था। वनवास काल में श्री रामचन्द्र जी, श्री सीता जी तथा श्री लक्ष्मण जी के साथ, घूमते–घूमते चित्रकूट पर्वत पर पहुँचे। इस पर्वत पर–एक वटवृक्ष के नीचे रहने के समय, एक दिन श्री राम जी ने श्री सीता जी से यों कहाः–

द्वापरेर रूप कलियुगे एथा हबे।
गोपीनाथ नाम आमार अबश्य हइबे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ६/७

(अर्थात द्वापर युग में मेरा जो रूप होगा, उसका कलियुग में यहां पर श्री गोपीनाथ नाम से पूजन होगा।)

श्री राम जी से द्वापर युग की बात सुनकर, श्रीजानकी जी, श्री राम जी के उस भावी स्वरूप का दर्शन करने के लिए अत्यन्त उत्सुक तथा व्याकुल हो उठीं। श्री राम जी से उस रूप के दर्शन करवाने के लिए, वे बारम्बार अनुरोध करने लगीं। श्री जानकी जी के अनुरोध पर, श्री राम जी एक प्रस्तर खण्ड ले आये और फिर उन्होंने श्री सीता जी को नेत्र मूंदने के लिए कहा। श्री सीता जी द्वारा नेत्र मूंद लेने पर श्री राम जी ने अपने बाण द्वारा उस पत्थर के टुकड़े पर एक आकृति बना दी।

तबे शरमूले लिखेन श्री रघुनन्दन।
बृन्दाबन फिरे जेन श्री नन्दनन्दन।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ६/११

(अर्थात श्री रामचन्द्र जी ने अपने तीर के द्वारा उस प्रस्तर खण्ड पर जिन श्रीविग्रह की खुदाई की, उसे देख कर यों लग रहा था मानो स्वयं श्री. कृष्ण वृन्दावन में घूम रहे हों।)

श्री कृष्ण के उस अपरूप लावण्यमय नवकिशोर नटवर, श्रीविग्रह का स्वहस्त से तीर के द्वारा निर्माण करके, श्री राम जी ने श्री सीता जी को अपने नेत्र खोलने के लिये कहा। श्री सीता जी ने आंखें खोलीं और सामने पड़े श्रीविग्रह को देखा। श्री गोपीनाथ जी के उस अपरूप श्रीविग्रह के दर्शन करके श्री सीता जी बार–बार कामबाण से कम्पित होने लगीं। श्रीगोपीनाथ जी का मुखारविन्द, कोटि कोटि चन्द्रमाओं के प्रकाश को भी मात दे रहा था। श्रीविग्रह की नवजलधर अंग शोभा, अत्यन्त मनोहर रूप धारण करके, सभी के चित्त को आकर्षित कर रही थी। श्री राम जी ने प्रफुल्लित होकर श्री सीता जी से कहाः—

राम कहे शुन प्रिये जनकनन्दिनी।
सर्बागं लिखिनु आमि नेत्र लिख तुमि।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ६/१६

(अर्थात श्री रामचन्द्र जी ने कहा, हे प्रिय जनक नंदिनी! मैंने श्रीविग्रह के अन्य सभी अंगों का निर्माण कर दिया है किन्तु इनके नेत्रों का निर्माण तुम करो।)

श्री रामचन्द्र जी की आज्ञानुसार, श्री सीताजी ने धीरतापूर्वक प्रफुल्लित मन से, श्री गोपीनाथ जी के श्रीविग्रह की वेणी और नेत्रों का निर्माण कर दिया। फिर वहां से श्रीराम जी, श्री सीता जी तथा श्री लक्ष्मण के साथ, घूमते घूमते कहीं और चले गये।

एक बार वशिष्ठ मुनि उस मार्ग से कहीं जा रहे थे। एक वटवृक्ष के नीचे इन श्रीविग्रह के अकस्मात दर्शन करके, वे आर्श्चयचकित हो गये। उन्होंने ध्यानमग्न होकर जान लिया कि इन श्रीविग्रह का निर्माण स्वयं श्री राम जी के हाथों हुआ था तथा द्वापर युग में, श्री राम जी इसी रूप में

अवतरित होंगे। महामुनि वशिष्ठ ने एक मन्दिर का निर्माण करवा कर, उस में श्री गोपीनाथ जी के इन श्रीविग्रह की स्थापना कर दी। इनकी सेवा का दायित्व अपने एक शिष्य पर डाल कर, महामुनि अपने गन्तव्य स्थान को चले गये। परवर्त्तीकाल में कटक के महाराजा, इन श्रीविग्रह को रेमुना ले आये, जहां एक मन्दिर का निर्माण करवाकर, इनकी स्थापना कर दी। यहां राजोपचार से इन की सेवा होने लगी।

परवर्त्तीकाल में इन्ही श्री गोपीनाथ का नाम खीरचोरा गोपीनाथ पड़ना भक्तवांछाकल्पतरु भगवान की भक्तवत्सलता का एक अनूठा दृष्टान्त है। कलियुग में श्रीश्री चैतन्य महाप्रभु के नरलीलोचित परम गुरुदेव, श्री माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी जी, ब्रजमण्डल में भ्रमण करते करते, श्रीगोवर्द्धन में पहुंच गये। एक दिंन गिरिराज की परिक्रमा करते हुए वे गोविन्दकुण्ड में स्नान करके, एक वृक्ष के नीचे बैठ कर नाम जप कर रहे थे। ऐसे समय पर, एक सुन्दर गोप बालक ने वहां आकर उनको एक पात्र में दूध दिया। श्री माधवेन्द्र पुरी के पूछने पर उस बालक ने वहां के निवासी के रूप में ही अपना परिचय दिया तथा यह कहकर कि खाली पात्र को वह बाद में आ कर ले जायेगा, वह वहां से चला गया। उसी रात्रि को पुरीपाद ने स्वप्न में देखा कि वही बालक उनका हाथ पकड़कर, उनको एक कुँज में ले गया। कुँज में वह उनसे कहने लगा कि, "माधव! मैं इस कुँज में रहता हूँ। मुझे शीत, गर्मी, वर्षा तथा दावाग्नि के कारण बहुत कष्ट होता है। मैं बहुत दिनों से तुम्हारी ही राह देख रहा था कि कब तुम यहां आकर मेरी सेवा करोगे।" दूसरे दिन सबेरे श्री माधवेन्द्र पुरीपाद, निकटवर्ती गाँव में गये और वहां के निवासियों को साथ लेकर उसी कुँज में गये, जो उन्हें स्वप्न में उस बालक ने दिखलाई थी। वहां उन लोगों को श्री गोपाल जी के परम सुन्दर एक श्रीविग्रह पड़े मिले। श्री माधेवन्द्र पुरी उन श्रीविग्रह को वहां से ले आये और समारोहपूर्वक गिरिराज के ऊपर उनकी स्थापना करके, उनकी सेवा का प्रकाश किया.। श्री गोपाल जी के प्रकट होने पर, उस स्थान पर नित्य महा–महोत्सव होने लगे। छप्पन भोग व छत्तीस व्यंजनो के द्वारा इन की सेवा होती रही। इस घटना के लगभग दो वर्ष बाद, श्री माधवेन्द्र पुरीपाद ने एक रात फिर स्वप्न देखा।

गोपाल कहे पुरी आमार ताप नाहि जाय।
मलयज चन्दन लेपो तबे से जुड़ाय।।
मलयज आन जाइ नीलाचल हइते।
अन्य हइते नहे तुमि चलह त्बरिते।।

—श्रीश्री चैतन्य चरितामृत—मध्य—४

(अर्थात स्वप्न में गोपाल जी उनसे कह रहे थे "माधवेन्द्र पुरी! धूप में पड़े रहने के कारण, मेरे शरीर से धूप का ताप अभी तक गया नहीं है। यदि मलयचंदन का लेपन किया जाये, तभी मेरे श्रीअंग शीतलता को प्राप्त होंगे। यह मलयचंदन नीलाचल से लाना होगा। तुम स्वयं उसे लाने के लिये प्रस्थान करो।")

श्री गोपाल जी का आदेश पाकर, उनकी सेवा के लिए एक सेवक का प्रबन्ध करके, श्री माधवेन्द्र पुरीपाद ने मलयचंन्दन लाने के लिये, नीलाचल के लिये प्रस्थान किया। चलते चलते वे गौड़मण्डल में पहुँच गये, जहां उन्होंने श्री अद्वैताचार्य को शांतिपुर में दीक्षा प्रदान की। उसके पश्चात वे रेमुना चले गये। रेमुना में श्री गोपीनाथ जी की सौंदर्य राशि का दर्शन करके वे प्रेमविभोर होकर, बहुत देर तक नृत्य—कीर्तन आदि करते रहे।

श्री गोपीनाथ जी के भोग वितरण के समय, श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद के द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर, ब्राह्मण पुजारी ने उन को बताया कि "संध्या के समय, श्रीगोपीनाथ जी को मिट्टी के बड़े बड़े बारह कुल्हड़ों में अमृतकेली नामक खीर का भोग लगता है। इस खीर का स्वाद भी अमृत जैसा ही होता है। श्री गोपीनाथ जी का खीर भोग इतना स्वादिष्ट होता है कि यह खीर सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई है।" इसी बीच भोग का समय आ उपस्थित हुआ। अमृतकेली खीर के द्वादश पात्र, श्री गोपीनाथ जी को अर्पित किये गये। इस समय श्री माधेवन्द्र पुरी, मन ही मन सोचने लगे कि "यदि बिना मांगे मुझे कुछ खीरप्रसाद मिल जाये तो उस का आस्वादन करके ठीक ऐसी ही खीर का भोग मैं गोवर्द्धन में अपने श्री गोपाल जी को भी अर्पण करूं।" फिर दूसरे ही क्षण वे अपनी इस अभिलाषा के कारण लज्जित महसूस करने लगे क्योंकि वे तो बिना मांगे प्राप्त खाद्य पदार्थ को ही खाते थे, नहीं तो भूखे ही रह लेते थे। इसी कारण, श्री गोपाल जी के

(ईसवी सन् 1620)

जब श्री श्यामानन्द प्रभु राजघाट में वास कर रहे थे, तो एक दिन एक भक्तिहीन मायावादी सन्यासी, उन्हें झूठाखोर वैष्णव कह कर परिहास करने लगा। श्री श्यामानन्द प्रभु ने उस परिहास का कोई विरोध या प्रतिकार नहीं किया। वे शान्त रहे और अपने साथी भक्तों के साथ, सुवर्णरेखा नदी में स्नान करने चले गए। नदी के तीर पर एक विशालकाय मगर मुंह बाय पड़ा था। मगर के भयंकर–विकराल मुख को देख कर, श्री प्रभुपाद के साथी भयभीत हो गए, किन्तु श्री श्यामानन्द प्रभु जी ने, उस मगरमच्छ से यों कहा:–

बले एथा आइस बापु करि प्रतिकार।
जेमने हइबे तुमि भब सिन्धु पार।।
कोन जन्मे पाप हइते कुम्भीर हइयाछ।
एबे जीब हिंसा तुमि केन करितेछ।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १५/७०–७१

(अर्थात श्री श्यामानन्द प्रभु ने कहा, "हे मगरराज! तुम मेरे पास आओ। तुम भवसिन्धु को कैसे पार करोगे? मैं उस का उपाय बताता हूँ। पूर्व जन्म के पाप से ही तुम्हें मगर योनि प्राप्त हुई है। तुम अब जीव हिंसा क्यों करते हो?")

श्री श्यामानन्द प्रभु के मुख से उपदेश वाक्य सुनकर वह मगर उपस्थित लोगों को विस्मित करते हुए अकस्मात श्री प्रभुपाद के पास आया और उन को प्रणाम किया। तब श्री श्यामानन्द प्रभु ने उस पर कृपा करते हुए, उसे हरिनाम महामंत्र प्रदान करके, यह आदेश दिया:–"हे मगरराज! आज से तुम पूर्णरूपेण जीवहिंसा त्याग दोगे। भगवान श्रीकृष्ण तुम पर निश्चित रूप से कृपा करेंगे।

एत शुनिया कुम्भीर चरणे लुटिला।
आनन्द हइया जल भितरे पशिला।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १५/७४

(अर्थात यह सुन कर उस मगर ने श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणों में प्रणाम किया और आनन्दित होकर नदी के जल में प्रवेश कर गया।)"

श्री प्रभुपाद के इन वाक्यों को सुनकर, उस विशालकाय मगर ने, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणों में प्रणाम किया और आनन्दमग्न हो कर नदी के जल में प्रवेश कर गया।

भक्तिहीन मायावादी सन्यासी दूर से यह सब देख रहा था। उस ने जब यह प्रत्यक्ष देखा कि मनुष्यों की तो बात क्या, जलचर मगर तक, श्री श्यामानन्द प्रभु की शरण ग्रहण कर रहे थे, तो प्रभुपाद के प्रति अपने द्वारा किये गये दुर्व्यवहार के कारण वह अनुतप्त होकर, पश्चाताप की ज्वाला में जलने लगा। सारे अभिमान को त्याग कर, वह श्री श्यामानन्द प्रभु की शरण में आ गया। कृपा के सागर प्रभुपाद जी ने, अनुताप से दग्ध उस सन्यासी को कृपापूर्वक हरिनाम महामंत्र प्रदान करके, उस का नाम रख दिया "श्री शंकर दास"।

राजघाट से श्री प्रभुपाद बेड़ापाल चले गये, जहां कुछ दिन रहने के पश्चात, वे भक्तों के साथ भोगराइ चले गए।

श्री बासुली देवी का उद्धार
(ईसवी सन् 1620)

भोगराइ में श्री आनन्दानन्द, श्री श्यामानन्द प्रभु को अत्यन्त भक्तिभाव से अपने घर ले गए। श्री प्रभुपाद के वहां आने पर, नित्य महोत्सव होने लगे। जहां श्री श्यामानन्द जी रह रहे थे, उस स्थान के निकट भयंकर रूप धारिणी एक देवी विराजमान थीं, जिनका नाम था बासुली देवी। चार दुष्ट तांत्रिक सन्यासी उन देवी का पूजन आदि करते थे। रोज़ प्रातःकाल वे उन देवी को बहुत से जीवों की बलि देकर, मांस खुद खा लेते। वे साधुओं तथा वैष्णवों को देखकर, उन का परिहास करते थे।

जो वैष्णव, श्री श्यामानन्द प्रभु के साथ भोगराइ आये थे, उन को देखकर भी एक दिन वे दुष्ट सन्यासी, निन्दापूर्ण परिहास करने लगे। तब भक्तगणों ने श्री श्यामानन्द प्रभु के पास जाकर, उन के चरणों में यों निवेदन किया, "हे प्रभु! बासुली देवी के मंदिर में चार दुष्ट सन्यासी रहते हैं, जो हर समय साधुओं तथा वैष्णवों की निन्दा करते रहते हैं। आज हमें देख कर भी उन लोगों ने, नाना प्रकार के कटुवाक्य कहकर, उपहास किया। हे प्रभु!

आप कृपा करके कोई उचित व्यवस्था कीजिए, क्योंकि इन दुष्टों के मुख से साधु वैष्णवों की निन्दा सुनकर, गाँव के निवासी भी उकता गये हैं।" अपने प्रिय भक्तों के मुख से ऐसे उद्‌गार सुन कर, श्री प्रभु जी बोले, "तुम लोग श्री हरिनाम संकीर्तन आरम्भ करो। उसी से इन दुष्टों का दमन हो जायेगा।" इस आदेश के अनुसार उपस्थित भक्तों ने उच्चस्वर से नाम संकीर्तन करना आरम्भ कर दिया, जिससे भोगराइ का आकाश तक कम्पायमान हो उठा। रात को नाम संकीर्तन के उपरान्त जब सभी भक्त वैष्णव, प्रसाद ग्रहण करके निद्रालीन हो गये, तो श्री श्यामानन्द प्रभु भी सुख की नींद लेने लगे। ऐसे समय पर बासुली देवी दिव्य रूप धारण करके उनके शयन स्थान में आई–

देखे प्रभु निद्राते हइछे अचेतन।
बाशुली बसिया तबे चापिल चरण।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १५/६४

(अर्थात जब देवी ने देखा कि श्री श्यामानन्द प्रभु निद्रालीन हैं तो वे उनके निकट बैठ कर उन के चरण दबाने लगीं।)

इससे श्री श्यामानन्द प्रभु की निद्रा भंग हो गई। उन्होंने देखा कि कोई अपरिचित स्त्री उन के निकट बैठी, उन की चरण सेवा कर रही थी। श्री श्यामानन्द प्रभु ने तब देवी से प्रश्न किया, "तुम कौन हो और यहां आकर क्यों मेरी सेवा कर रही हो? मैंने पहले तो तुम्हें कभी देखा ही नहीं।"

एत शुनिया बासुली चरणे लुटिला।
दोष क्षम मोर मुइ बासुली बलिला।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १५/६६

(अर्थात यह सुन कर बासुली देवी ने, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणों में प्रणाम करके कहा, "हे प्रभु! मेरे सारे अपराधों को क्षमा कर दीजिए। मैं बासुली देवी हूँ।")

श्री श्यामानन्द प्रभु ने जब देखा कि जीवों का रक्तपान करने वाली बासुली देवी, उनकी सेवा कर रही थी तो वे बहुत खिन्न हुए और क्रोधित होकर उस से बोले, "तुम जीवों की हत्या करके, उनके रक्त तथा मांस का भक्षण करती हो, इसलिए तुम मेरा स्पर्श मत करो। प्राणियों के हत्यारों के

मुख का दर्शन करना भी महापाप है।"

श्री श्यामानन्द प्रभु के भर्त्सनापूर्ण वाक्य सुन कर, बासुली देवी रोने लगीं तथा हाथ जोड़ कर बोलीं, "हे प्रभु! मुझे बकरी आदि जीवों की जो भी बलि दी जाती है, मैं उसे स्वीकार नहीं करती। दुष्ट लोग अकारण ही पशुओं का वध करते हैं। बलि में मारे हुए पशुओं को पिशाचनियां ही खाती हैं। जहां पशुओं का वध होता है, वहां तो मैं रहती भी नहीं। दुष्टलोग तो मांस के कारण ही पशुओं का वध करते हैं।" यह कहते हुए, बासुली देवी, श्री श्यामानन्द प्रभु के चरण पकड़ कर, बारम्बार विनय करने लगीं। देवी की ऐसी अनुतप्त दशा देख कर, करुणा के सागर, श्री श्यामानन्द प्रभु का हृदय द्रवित हो गया। उन के आदेश से, उन्हीं के शिष्य, आनन्दानन्द ने, देवी को श्री हरिनाम महामंत्र की दीक्षा प्रदान की। दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त, जब बासुली देवी श्री श्यामानन्द प्रभु के पास आईं तो, उन्होंने उसे आदेश देते हुए कहा, "हे बासुली! सदा श्रीकृष्ण तथा वैष्णवों की भक्ति करो। कभी भी जीवहिंसा न करना। जीवहिंसक के कभी दर्शन भी मत करना। जो जीवहिंसा करता है, उसे स्वयं जा कर दण्ड देना।" यह आदेश प्राप्त करके देवी ने श्री श्यामानन्द प्रभु को प्रणाम करके, इस आज्ञा को शिरोधार्य किया।

श्री श्यामानन्द प्रभु के निवास स्थान से बाहिर आते ही बासुली देवी ने महाभयंकर, उग्र व चण्डरूप धारण कर लिया। क्रोध से थर–थर कांपती हुई सी, वे मंदिर में आईं और उन चार दुष्ट सन्यासियों को केशों से पकड़ कर, उन को पीटते हुए कहने लगीं:–

बले श्यामानन्दे पूजा कर सबे गिया।
नागेले सबारे आमि खाइब धरिया।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १५/११५

(अर्थात सभी जाकर श्री श्यामानन्द प्रभु की सेवा करो, नहीं तो मैं तुम सब का भक्षण कर लूंगी।)

अपनी इष्टदेवी के ये वचन सुन कर, चारों संन्यासी अत्यन्त भयभीत हो गए। सुबह होते ही, वे लोग दौड़ते हुए गए और श्री श्यामानन्द प्रभु के चरण पकड़ कर, बासुली देवी से रक्षा करने के लिए उन से बारम्बार

विनती करने लगे। तब श्री श्यामानन्द प्रभु, उन चारों से बोले, "यदि आज से तुम लोग जीवहत्या न करोगे, श्री गुरु, श्रीकृष्ण व वैष्णवों को देख कर उन की पूजा करोगे, तभी बासुली देवी तुम पर कृपा कर सकती हैं और तुम निर्भय होकर आनन्द से विचरण कर सकते हो, अन्यथा नहीं।"

मरता क्या न करता? और कोई चारा भी न था। सो वे संन्यासी, श्री श्यामानन्द प्रभु का आदेश सुन कर, तत्क्षण उस का पालन करने के लिए तैयार हो गये। अपने गुरु (श्रीश्यामानन्द प्रभु) के आदेश से, श्री आनन्दानन्द ने उन चारों को श्री हरिनाम महामंत्र प्रदान किया और वे श्री श्यामानन्द प्रभु की कृपा से परम वैष्णव हुए।

श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में रास महोत्सव
(ईसवी सन् 1621)

एक दिन श्री श्यामानन्द प्रभु, धारेन्दा में श्री रसमय के घर पर, श्रीकृष्ण कथा रस में मगन थे। श्री रसिक मुरारी, दामोदर, नेत्रानन्द, किशोर, ठाकुर, हरिदास, भीम, श्रीकर रसमय, बंसीदास, चिन्तामणि आदि भक्तगण भी वहां उपस्थित थे। इस समय श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिक मुरारी से यों कहा :–

एक महारास यात्रा करह प्रचार।
त्रिभुबन जने येन लागे चमत्कार।।
बसन्त समय बैशाख पूर्णमी।
शरद उज्ज्बल चन्द्र निर्मल यामिनी।।

–श्रीश्री रसिक मंगल–पश्चिम १/१४

(अर्थात एक ऐसे महारास महोत्सव का आयोजन करो, जिसके दर्शन करके त्रिभुवन के सभी लोग चमत्कृत हो जायें। बसन्त काल में वैशाख मास की पूर्णिमा वाले दिन, जब चन्द्रमा अति उज्ज्वल तथा रात्रि अत्यन्त निर्मल होती है, उसी समय रास का आयोजन करना।)

श्री श्यामानन्द प्रभु ने यह भी कहा कि, "अभी से इस महोत्सव के लिए, द्रव्यसंग्रह के निमित्त सभी सचेष्ट हो जाएं। राजा, प्रजा, धनी, दरिद्र, सभी को आमंत्रित करो तथा सभी से यथासामर्थ्य, द्रव्यसंग्रह करो। यह

रास महोत्सव गोपीवल्लभपुर में ही होगा।" यह आदेश देकर, श्री श्यामानन्द प्रभु गोविन्दपुर चले गए। श्री रसिकानन्द प्रभु भी, श्री गुरुदेव के चरणारविन्द का स्मरण करते हुए, महोत्सव के लिए द्रव्य संग्रह करने के लिए निकल पड़े। दिन श्याम, नारायण दास, रामकृष्ण, श्याम गोपाल, रसमय, बंसीदास आदि भक्त, अपने साथ अन्य सैंकड़ों भक्तों को लेकर, महोत्सव के लिए उपयुक्त स्थान का संस्कार करने लगे। श्री रसिकानन्द प्रभु ने महोत्सव के लिए आवश्यक पदार्थों, चावल, मूंग, उर्द, आटा, मैदा, चना, खीसारी आदि का प्रबन्ध कर के भण्डार में रख दिया। घी, तेल, गुड़, मिष्ठान तथा पकवान आदि भी यथेष्ट परिमाण में भण्डार में ला रखे। उत्तम मुड़की, दिव्य चिड़वा, खील, हुड्डुम, लूची–पूरी, विभिन्न प्रकार के फलों व सब्जियों आदि का भी संग्रह किया गया। श्रीविग्रहों के लिये नैवेद्य का उचित प्रबन्ध कर लिया गया। नाना प्रकार के अन्य द्रव्यों का भी प्रबन्ध कर लिया गया, जिस से समागत वैष्णव भक्तों को किसी प्रकार की असुविधा न हो।

रास महोत्सव के लिए अष्ट–दलाकृति, अष्टकोण, परिमित रास मण्डप आदि का निर्माण किया गया। निर्मित रासमण्डल के चारों ओर, चार द्वार थे। एक विशाल उच्च मंच भी बनाया गया। ब्रह्मा, शिव, पुरन्दर आदि देवों की उचित स्थान पर स्थापना की गई। मंच पर विचित्र मणिझारे, चारों ओर लटक रहे थे। सोला के बने हुए नाना प्रकार के पुष्प झारे भी स्थान–स्थान पर सुशोभित हो रहे थे। पूरे स्थान को उज्ज्वल वर्ण की विचित्र पताकाओं से भी सजाया गया। इन पताकाओं के ऊर्ध्व भाग में कनककुम्भ स्थापित किया गया। मण्डप के खम्भों को सुन्दर–आकर्षक वस्त्र से आच्छादित कर दिया गया। सारा स्थान साज सज्जा के कारण ऐसा लग रहा था, मानों स्वयं वृन्दावन ही वहां प्रकट हो गया हो।

रास मण्डप के बीचों–बीच, एक मनोरम मण्डप का निर्माण करके, उस में एक उज्ज्वल सिंहासन स्थापित किया गया। सिंहासन के ऊपरी भाग में कल्पतरु सुशोभित था। इस स्वर्ण निर्मित कल्पतरु पर नाना प्रकार की मणियां, ज्योति वितरित कर रही थीं। कल्पतरु के नीचे, अष्टकोण में, अष्ट श्रीकृष्ण श्रीविग्रह, अष्ट ठाकुरानियों के संग विराजमान हो गए। वैशाख मास की पूर्णिमा को रास महोत्सव का महासमारोहपूर्वक शुभारम्भ

किया गया।

श्री श्यामानन्द प्रभु महोत्सव के लिए सबसे पहले गोपीवल्लभपुर पहुंचे। श्रीपाट अम्बिका से श्रील हृदय चैतन्य प्रभु भी बहुत से शिष्यों के साथ आ पहुंचे। जाजीग्राम से श्री श्रीनिवासाचार्य तथा खेतरी से, श्री नरोत्तम ठाकुर जी भी आये। इन के अतिरिक्त मुख्य आउलिया ठाकुर, विद्युतमाला ठाकुरानी, बड़बलराम दास, श्री नित्यानन्द प्रभु के पुत्र व पौत्रगण, श्री अद्वैत प्रभु के पुत्र व पौत्रगण, द्वादश गोपाल के शिष्य व प्रशिष्यगण, चौंसठ महन्तों के शिष्य व प्रशिष्यगण, रामदास ठाकुर, वैरागी कृष्णदास, श्रीप्रसाद ठाकुर तथा जगन्नाथ आदि भी रास महोत्सव में पहुंचने वालों में मुख्य थे। द्वारिका, मथुरा, वृन्दावन, तथा नीलाचल में जितने भी श्री कृष्ण भक्त वैष्णव थे, वे सब ही रास महोत्सव का दर्शन करने के लिए आए। बहुत से राजाओं, महाराजाओं ने भी, इस महोत्सव में अपना योगदान दिया। चारों वर्णों व चारों आश्रमों के सहस्रों लोग भी, जिनमें स्त्री–पुरुष, बालक, वृद्ध सभी सम्मिलित थे, अपने–अपने घरों के द्वार बन्द करके, रास महोत्सव का दर्शन करने के लिए, गोपीवल्लभपुर में एकत्रित हुए। लोगों की अपार भीड़ के कारण महोत्सव स्थल पर तिल धरने तक का स्थान न रहा।

महोत्सव के आरम्भ में श्री रसिक मुरारी जी ने वस्त्र तथा आभरण प्रदान करके, वैष्णवों का पूजन किया। फिर हल्दी, तंडुल, दूर्वा, धान्य, आम्रपत्र एवं नारियल प्रदान करके, मंगल कलश की स्थापना की गई। चारों कलशों के चारों ओर, रत्न प्रदीप प्रज्ज्वलित किये गए। दही, दूध, घी, मधु, शर्करा, माल्य, चन्दन, आभरण, कुमकुम, कस्तूरी, कपूर, केसर आदि, एक सौ एक पात्रों में रख कर लाये गये।

इस प्रकार महोत्सव का अधिवास करके श्री रसिक मुरारी ने, श्री श्यामानन्द प्रभु की चरणवन्दना की। उन्होंने श्रील हृदय चैतन्य प्रभु का भी विधिपूर्वक पूजन किया। इसके पश्चात, श्री रसिक मुरारी ने अपने हाथ से वस्त्र, माल्य, चन्दन तथा आभरणों द्वारा, कीर्तनीया तुलसी दास जी का वरण किया। गुरु भ्राताओं, सुयोग्य शिष्यों तथा प्रत्येक महंत को कपूर, चन्दन, माल्य तथा वस्त्रादि द्वारा सम्मानित करके, अधिवास का कार्य पूर्ण किया। अधिवास के अनन्तर, श्रीरसिक मुरारी जी ने, समारोहपूर्वक महोत्सव का शुभारम्भ

किया। सैंकड़ों व्यक्ति भण्डारगृह में रसोई के लिए आवश्यक सामान देने लगे। रसोई का कार्य ब्राह्मणों ने सम्भाला। सैंकड़ों व्यक्ति परोसने के काम में और सैंकड़ों ही जल लाने के लिए नियुक्त किये गए। घंटशिला से आई रंकिनी देवी, सैंकड़ों व्यक्तियों के साथ, साल के पत्तों से बनाए गए दोने और पत्तलें प्रस्तुत करने लगीं। श्रीविग्रह के सम्मुख उपलब्ध स्थान का संस्कार करके, वहां पत्ते बिछाये गये। सुगंधित बारीक चावल, षट्‌रस युक्त व्यंजन, नाना प्रकार की खीर, पिठा, आदि व्यंजन–पकवान रख कर, श्रीविग्रह के लिए नैवेद्य की व्यवस्था की गई। श्रीकृष्ण को नैवेद्य अर्पण करने के पश्चात, उपस्थित जनसमूह को प्रीतिपूर्वक महाप्रसाद परोसने का कार्य आरम्भ हुआ, जिसमें सहस्रों व्यक्ति नियुक्त थे। उच्छिष्ठ दोने तथा पत्तलों को उठा कर फैंकने के लिए भी सैंकड़ों व्यक्ति नियुक्त किये गये थे। महारास महोत्सव के इस अतुल वैभव के दर्शन करके, मनुष्यों की तो बात क्या, देवता भी चमत्कृत हो गये।

देवलोक नरलोक हइया एकसंग।
रासजात्रा महानन्दे करे नाना रंग।।

–श्रीश्री रसिक मंगल–पश्चिम २/३६

(अर्थात देवलोक के देवगण तथा नरलोक के मनुष्यगण, एक साथ इस रासयात्रा के आनन्द में मस्त होकर, नाना प्रकार के रंग करने लगे।)

श्री रसिकानन्द प्रभु ने रासयात्रा में अभिनय करने के लिए बालकों की एक रासमण्डली बनाई थी। देवकीदास, गोकुल, गोपीजन वल्लभ, गौरगोपाल दास, नारायण दास, गोकुल दास, गोपीजीवन तथा भूधर नामक आठ बालकों को सखियों के रूप में सज्जित किया गया। एक सौम्य सुदर्शन बालक को, जिसका नाम रघुनाथ था, श्रीकृष्ण के वेश में सज्जित किया गया। इन सभी बालकों की भव्य सज्जा का दर्शन करके सभी उपस्थित नर–नारी मोहित हो गये।

श्री रसिकानन्द प्रभु के आदेश से रास का मंचन आरम्भ हुआ। विभिन्न प्रकार के वाद्य एक साथ बजने लगे। मादोल की विमर्द, पटह की लाम्पढय, पणव की तान, ढाक के शब्द, गम्भीर भेरी की झंकार तथा दुन्दुभि की हुंकार, उपस्थित जनों को मानो बधिर करने लगे। वैशाखी पूर्णिमा के

उज्ज्वल चन्द्रकिरण योग में, सारी पृथ्वी ज्योत्स्ना से नहा उठी। इस प्रकार मनोहर, चित्त को हरण करने वाली रजनी में, श्रीकृष्ण के वेश में सज्जित बालक, रासमण्डल के कल्पतरु तलदेश में जाकर, त्रिभंग भंगिमा ढंग से दण्डायमान हो गया। श्रीकृष्ण के अपनी मुरली द्वारा एक एक गोपी के नाम उच्चारण की ध्वनि करने पर, ब्रज सुंदरियां, एक एक करके वहां आकर, श्रीकृष्ण के चारों ओर, अपने लज्जा से नत मस्तकों के साथ समाहित होने लगीं। इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अनुक्रम से गोपिकाओं व श्रीकृष्ण के वेश में सज्जित बालक, मन को मुग्ध करने वाली ऐसी लीला करने लगे कि उपस्थित सहस्रों भक्तगण, भाव-विभोर होकर उन के अभिनय के साथ एकात्म हो गये।

जत लीला कृष्णगोपी कैला रासरसे।
शिशुगण सब करे अशेष विशेषे।।
सबे बले साक्षात् हइला बृन्दाबन।
नारायण अंशे जन्म अच्युतनन्दन।।

—श्रीश्री रसिक मंगल

(अर्थात श्रीकृष्ण तथा गोपियों ने रासलीला के समय जैसी-जैसी लीला की थी, वे बालक भी उन सब लीलाओं का अभिनय करने लगे, जिसे देख कर सभी दर्शक कहने लगे कि यहां स्वयं वृन्दावन ही प्रकट हो गये हैं। श्री अच्युतनन्दन, श्री रसिक मुरारी ने, जो नारायण के अंश से प्रकट हुए हैं, यह करके दिखाया है।)

इस अभिनय के दौरान, जब श्री रसिकानन्द प्रभु अपने निवास स्थान से रासमण्डप को जा रहे थे तो एक विषधर गोखुर सर्प ने उन के चरण में दंशन कर दिया। उस सर्प ने इतनी तीव्रता से डंक मारा कि उस के दोनों दांत टूट कर, श्री रसिक मुरारी जी के चरण में ही रह गए। उन के श्रीचरण से अविराम रक्तधारा बहने लगी किन्तु उन्होंने किसी से भी इस के विषय में कुछ न कहकर, केवल श्रीकृष्ण का ही स्मरण किया। अत्यधिक भीड़ होने के कारण, भक्तों के पांव तले कुचले जाकर, उस विषधर की मृत्यु हो गई तथा उस का शरीर चूर-चूर होकर मिट्टी में मिल गया। भयंकर विषधर द्वारा काटे जाने के पश्चात, चार प्रहर बीत गए। दूसरे दिन, सबेरे भक्तगणों

ने रक्त की धारा देखकर दंशित स्थान से दोनों दांतों को बाहर निकाल कर फैंक दिया। वे लोग, श्री रसिकानन्द प्रभु से ओझा बुला कर विष उतारने के लिए अनुरोध करने लगे किन्तु उन्होंने सहमति प्रकट नहीं की।

झाड़िते ना दिल विष हैल नाश।
चमत्कार सबे देखि रसिक प्रकाश।।

—श्रीश्री रसिक मंगल—पश्चिम ४/६४

(अर्थात उन्होंने किसी भी ओझा से विष उतरवाने न दिया। विष की क्रिया अपने आप ही नष्ट हो गई। श्री रसिकानन्द प्रभु का ऐसा प्रभाव देख कर सभी दंग रह गए।)

पूर्णिमा की रात्रि में बालकों द्वारा अभिनीत रासलीला को देख कर उपस्थित भक्त इतने मोहित हो गए कि वे प्रतिपदा की रात को भी लीला के दोबारा मंचन के लिए, श्री रसिकानन्द प्रभु से अनुरोध करने लगे। अपनी इच्छा न होते हुए भी, केवल भक्तों के एकान्त आग्रह के कारण ही, उन्होंने रासलीला के पुनः अभिनय के लिए सम्बंधित बालकों को आदेश प्रदान किया, किन्तु घनाच्छन्न आकाश के कारण, बज्रपात सहित इतनी वर्षा होने लगी कि रासलीला का पुनर्मंचन असम्भव हो गया। इस पर श्री श्यामानन्द प्रभु ने व्यवस्था दी कि रासलीला का शास्त्रीय प्रमाण एक ही रात्रि का है, इसलिए दूसरी रात में इस का मंचन नहीं हो सकता। इस आदेश पर, दधिमंगल आरम्भ किया गया। सैंकड़ों मटकों में हल्दी, केसर, कस्तूरी कुमकुम आदि मिश्रित करके, दधि लाया गया। माल्य व चंदन से विभूषित हो, सैंकड़ों संकीर्तन मण्डलियों ने एक ही साथ नाम संकीर्तन प्रारम्भ किया। मृदंग तथा दुन्दुभी आदि की ध्वनि से आकाश गूंजने लगा। उन लोगों के थिरकते पदों के भार से, पृथ्वी टलमल करने लगी। प्रेमावेश में, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु भी दोनों बाहें ऊपर उठा कर मधुर—मधुर नृत्य करने लगे। भक्तगण एक दूसरे की ओर, दधिकर्दम फैंकने लगे। इस दधिमंगल के आनन्द में जब चार प्रहर का समय पलक झपकने के समान व्यतीत हो गया, तो श्री रसिकानन्द प्रभु ने आकर, श्री श्यामानन्द प्रभु, श्रील हृदय चैतन्य प्रभु तथा अन्य सभी गुरुजनों को प्रणाम किया। उपस्थित वैष्णवों के साथ सम्भाषण करने के उपरान्त, उन सब को लेकर वे, सुवर्णरेखा नदी में

जलकेलि करने के लिए गए। वे सब सुवर्णरेखा नदी के निर्मल जल में प्रवेश करके, एक दूसरे पर जल फैंक--फैंक कर क्रीड़ा करने लगे।

जलकेलि के पश्चात, सहस्रों लोग प्रसाद सेवन करके परितृप्त हुए। इसके बाद, श्री श्यामानन्द प्रभु के आदेश से, श्री रसिकानन्द प्रभु, एक एक करके उपस्थित वैष्णव भक्तों को विदाई देने लगे। वैष्णवों को हज़ारों कौपीनें व बहिर्वास प्रदान किये। ब्राह्मणों व सन्यासियों को धन, स्वर्ण, वस्त्रादि प्रदान करके सम्मानित किया। रास महोत्सव में आई हुईं संकीर्तन मण्डलियों तथा रासलीला में अभिनय करने वाले बालकों को भी वस्त्र तथा आभरण प्रदान करके सन्तुष्ट किया। सभी साधु, सन्त, वैष्णव, ब्राह्मण, राजा, प्रजा तथा साधारण नागरिक तक, श्री रसिकानन्द प्रभु का यशोगान करते हुए, श्रीपाट गोपीवल्लभपुर से विदा हुए।

विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध वर्णन के अनुसार, ईसवी सन् १६२१ में, श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में अनुष्ठित इस रास महोत्सव के सदृश विशाल और भव्य महोत्सव, आज तक कहीं भी आयोजित नहीं किया गया है। इस महोत्सव में उपस्थित वैष्णवों के श्रीचरण धोकर, लाखों वैष्णवों का चरणामृत इकट्ठा किया गया, जो श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में तथा श्रीधाम वृन्दावन में स्थित, श्रीश्री राधाश्यामसुन्दर जी के श्रीमन्दिर में, अभी तक उपलब्ध है।

❖

विंशमोध्याय

श्री रसिकानन्द प्रभु द्वारा वन्यहाथी को दीक्षा प्रदान करना

(ईसवी सन् 1623)

श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु के एकान्त आग्रह पर, रास महोत्सव के बाद भी, श्री गोपीवल्लभपुर में काफी समय से निवास कर रहे थे। एक दिन श्री रघुनाथ के एक भाई ने वहाँ आकर,उनके चरणों में निवेदन किया, "हे प्रभु ! यवनों ने राधानगर में बहुत ही कहर ढा रखा है। आप कृपा करके संकट की इस घड़ी में हम सबकी रक्षा कीजिये।"

श्री रघुनाथ के भाई से यह दुःखद समाचार पाकर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने बहुत पीड़ा अनुभव की। वे श्री रसिकानन्द प्रभु को साथ लेकर, तुरन्त धारेन्दा चले गए। वहां जब दोनों प्रभु श्री रसमय के घर पहुंचे तो वंशी आदि भक्तों ने, श्री श्यामानन्द प्रभु से क़हा, "हे प्रभु ! साधुसेवा के लिये जो ग्राम दान में मिले थे, उन पर सूबेदार अहमदिबेग ने बलपूर्वक कब्जा कर लिया है। मेरे विचार से, दस बीस कृष्ण भक्तों को जाकर अहमदिबेग को समझाना बुझाना चाहिये। तभी हम लोग उन ग्रामों का उपयोग कर सकेंगे।"

उपरोक्त घटना उस समय की है ,जब यवनाधिपति का सूबेदार अहमदिबेग, कटक ज़िले के बाणपुर नगर में रहकर सम्पूर्ण उड़ीसा के शासन कार्य का संचालन कर रहा था। वह व्यक्ति अत्यन्त दुष्टप्रकृति का शासक था। उड़ीसा के राजाओं–महाराजाओं से लेकर, साधारण नागरिकों पर्यन्त, सभी उस दुष्ट के अत्याचारों से भीत तथा त्रस्त थे। उड़ीसा के अधिकांश शासकों को, बलपूर्वक बाणपुर लाया गया था। उन में से कुछ की मृत्यु हो गई थी और शेष आहत हो कर, बंदी के तौर पर लाये गये थे। इतिहास के ऐसा मोड़ लेने से पहले, उत्कल प्रदेश के बहुत से शासकों ने

बहुत से ग्राम, श्री श्यामानन्द प्रभु को, साधु–वैष्णवों की सेवा के लिए दान में दे रखे थे। इस यवन सूबेदार ने अपनी शक्ति के मद में, इन्ही ग्रामों पर बलपूर्वक कब्जा कर लिया था।

भक्तगणों के निवेदन पर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने हथियाये गये ग्रामों का पुनरोद्धार करने एवम् पीड़ित प्रजा की रक्षा करने के लिए, श्री रसिकानन्द प्रभु को आदेश दिया। अपने पूज्य गुरु के आदेश के अनुसार, श्री रसिकानन्द प्रभु, वंशी दास आदि भक्तों को साथ लेकर तुरन्त बाणपुर के लिए निकल पड़े। यह घटना ईसवी सन् १६२३ की है। मार्ग में हज़ारों उत्कलवासियों को दीक्षा प्रदान करते करते, श्री रसिक मुरारी बाणपुर जा पहुंचे। बाणपुर नगर में मयूरभंज के महाराजा, श्री वैद्यनाथ का भी एक भवन था। श्री रसिकानन्द प्रभु, सीधे वहां गए। उन के वहां पहुंचने पर, महाराजा प्रफुल्लित होकर, उन की सेवा में उपस्थित हो गये। आपको स्मरण होगा कि श्री रसिकानन्द प्रभु, मयूरभंज के महाराजा के गुरु थे।

श्री गुरुदेव (श्री रसिकानन्द प्रभु) के मुख से निःसृत श्रीकृष्ण कथाओं का आस्वादन करने के लिए, प्रतिदिन हज़ारों लोग उन के पास आने लगे। अहमदिबेग के अत्याचारों से पीड़ित राजाओं–महाराजाओं के साथ, अहमदिबेग के बहुत से भृत्य भी, श्री रसिकानन्द प्रभु के पास आने लगे। इस प्रकार सहस्रों यवन भी उन का शिष्यत्व स्वीकार करने लगे।

यह विदित होने पर कि सहस्रों व्यक्ति, श्री रसिकानन्द प्रभु के पास जाते थे, सूबेदार अहमदिबेग क्रोध से आग बबुला हो उठा। उस के जो कर्मचारी वहां जाते थे, वह उन से पूछने लगा, "तुम लाखों लोग हरिध्वनि करते हुए, रोज़ इस मार्ग से होकर कहां जाते हो और किस कार्य के लिए जाते हो?"

सूबेदार के प्रश्न के उत्तर में कुछ विशिष्ट कर्मचारियों ने कहा, "हे अन्नदाता ! उड़ीसा के श्री रसिक मुरारी नामक एक बड़े महन्त हैं, जिन से श्री जगन्नाथ जी निरन्तर बातें करते रहते हैं। इस भूखण्ड के अधिकांश राजा महाराजा, उन के शिष्य बन चुके हैं। केवल इतना ही नहीं, आप के अधिकांश अनुचर भी इन श्री रसिकानन्द जी के शिष्य बन चुके हैं।"

श्री रसिकानन्द प्रभु की महिमा सुनकर, सूबेदार क्रोध से भड़क उठा तथा ईर्षावश कहने लगा–

हिन्दुगणे शिष्य करूक तार नाहिक दाय।
जबनेरे शिष्य करिबारे ना जुयाय।।
मिथ्या आडम्बरि करे लोक भाण्डिबारे।
चटक नाटक करे द्रब्य लइबारे।।
जबे से केरामति देखायेन आमारे।
तबे नारायण बलि जानिब ताहारे।।

—श्रीश्री रसिक मंगल—पश्चिम ७/६३—६५

(अर्थात "श्री रसिकानन्द हिन्दुओं को शिष्य बनाएं तो कोई बात नहीं, किन्तु यवनों को शिष्य बनाना उचित नहीं। मिथ्या आड़म्बर से लोगों को ठगकर वे धन संग्रह के लिए ऐसा कार्य कर रहे हैं। यदि वे मुझे भी कोई चमत्कार दिखाएं तभी मैं उन को नारायण के रूप में मान सकता हूँ।)"

उन दिनों एक विशालकाय जंगली हाथी, नित्य बाणपुर में आकर भीषण विनाश लीला करता था। वह हर रोज़ बहुत से मनुष्यों, घोड़ों और हाथियों को मृत्यु के घाट उतार देता था। उसने कितने मकान तोड़—फोड़ डाले थे, इसकी कोई गिनती नहीं थी। उस हाथी के भय से बाणपुर के निवासी, मार्ग पर निकलने का साहस भी नहीं जुटा पाते थे। सूबेदार भी इस हाथी से भयभीत था। उसने श्री रसिकानन्द प्रभु को नीचा दिखाने के लिए एक घृणित षड़यंत्र रचा। उसने श्री रसिक मुरारी जी के अनुगत राजाओं—महाराजाओं से कहा, "तुम सब हिन्दु लोग रसिक मुरारी को साक्षात नारायण मानते हो। यदि वह सचमुच ही साक्षात नारायण है तो उसे यहां ले आओ। वह यहां आकर, इस दुष्ट हाथी को वश में करके, उसे हरिनाम महामंत्र प्रदान कर के दिखाये।" यह कहकर उस दुष्ट ने, श्री रसिकानन्द प्रभु को लाने के लिए, एक विशेष दूत भी भेज दिया। यह देख कर राजा—महाराजा अत्यन्त दुःखी हो गए। उधर श्री रसिकानन्द प्रभु के साथी, उन से अनुरोध करने लगे कि उस दुष्ट सूबेदार के पास न जायें और वनमार्ग से बाणपुर से पलायन कर जाएं, किन्तु श्री रसिक मुरारी ने सभी भक्तों से कहा कि, "मैं सूबेदार के पास अवश्य जाऊँगा। जब मैंने केवल अपने प्राणप्रिय श्रीकृष्ण का ही आश्रय ले रखा है, तो अरण्य का हाथी मेरा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता।" यह कहकर वे पालकी डोली में बैठकर, अपने भक्तों के साथ नाम संकीर्तन करते हुए, अहमदिबेग से मिलने चल दिये। उसी समय उस विशाल—काय हाथी ने वाणपुर में प्रवेश किया। उस

की भीषण चिंघाड़ सुन कर, वाणपुर निवासी सभी मार्गों को छोड़–छोड़ कर, निरापद स्थानों में आश्रय ग्रहण करने लगे। उधर वह हाथी अनेक मकानों को तोड़ता हुआ तथा मनुष्यों व अश्वों आदि का वध करता हुआ, अपनी सूंड उठाकर, उसी मार्ग पर द्रुतगति से बढ़ने लगा, जिस मार्ग से श्री रसिकानन्द प्रभु आ रहे थे।

साक्षात् यमराज के सदृश विशालकाय हाथी को अपनी ओर आते देखकर, श्री रसिकानन्द प्रभु के साथी भक्तगण, उनसे (श्री रसिकानन्द प्रभु से) मार्ग से पलायन करके, किसी निरापद स्थान में आश्रय ग्रहण करने के लिए अनुरोध करने लगे, किन्तु श्री कृष्ण के चरणारविन्द में अटल विश्वास होने के कारण, श्री रसिकानन्द प्रभु ने किसी की न सुनी। इस पर उस भीषणाकृति वाले हाथी को अपने पास आया जानकर, श्री रसिकानन्द प्रभु के साथी, उन को अकेला छोड़ कर, निरापद स्थान में चले गए। श्री रसिकानन्द प्रभु वहां अकेले खड़े, निःशंक और निर्भीक होकर, श्री हरिनाम का जप कर रहे थे।

प्रासाद की छत पर खड़े सूबेदार अहमदिबेग तथा अनेक राजा तथा महाराजा, श्री रसिकानन्द प्रभु को आते देख रहे थे। जब श्री रसिकानंद प्रभु उस दुर्दान्त हाथी के सम्मुख नितान्त अकेले रह गए तो उन्हें इस अवस्था में देख कर दुष्ट सूबेदार का भी हृदय परिर्वतन होने लगा। वह मन ही मन सोचने लगा, "आज मैं अकारण ही एक साधु के वध का भागी बन गया। मुझे इस महापुरुष को यहां हठपूर्वक बुलाने की क्या आवश्यकता थी?" फिर वह यवन, मन ही मन में, श्री नारायण से उन महापुरुष की रक्षा करने के लिए प्रार्थना करने लगा। उपस्थित राजा–महाराजा भी, श्री रसिकानन्द प्रभु को घोर संकटापन्न अवस्था में पड़ा देख कर, यवन सूबेदार की निंदा करने लगे। कई बेचारे तो प्रकट रूप से रोने ही लग पड़े।

उधर वह विशालकाय हाथी, अपनी सूंड को ऊपर उठा कर, चिंघाड़ते हुए और पृथ्वी को कम्पायमान करते हुए, श्री रसिकानन्द प्रभु के आगे आ खड़ा हो गया। फिर वह अपने दोनों नेत्रों से श्री रसिक मुरारी जी के सौम्य तथा दिव्य मुखारविंद की शोभा का निरीक्षण करने लगा। हाथी स्तम्भित होकर खड़ा रह गया। तब श्री रसिकानन्द प्रभु उस पर कृपा दृष्टि डालते हुए, कहने लगेः–

शुन शुन ओहे तुमि मत्त करिबर।
कृष्ण भज साधु सेबा कर निरन्तर।।
ब्यर्थ केन मर करि नाना दुष्ट कर्म।
कृष्ण बिना आर जत ब्यर्थ परिश्रम।।

—श्रीश्री रसिकमंगल—पश्चिम ८/३६,३७

(अर्थात हे मत्त गजराज! तुम मेरी बात सुनो। तुम कृष्ण भजन करो, साधु सेवा करो। श्रीकृष्ण के भजन के बिना अन्य जितने भी कर्म हैं, उन के लिए परिश्रम करना व्यर्थ है।)

श्री रसिकानन्द प्रभु के मुख से उपरोक्त वचन सुन कर, अकस्मात् हाथी की आंखों से अविराम आंसू बहने लगे। उस हाथी ने उन के चरणारविंद में साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया और अपनी आंखों के पानी से उन के चरण धो डाले। हाथी के आत्मसमर्पण से श्री रसिकानन्द प्रभु बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने हाथी के मस्तक पर अपना हाथ रख कर, अपनी कृपा बरसाते हुए, उसके दक्षिण कर्ण में, श्री हरिनाम महामंत्र प्रदान किया और दीक्षा के उपरान्त, उसका नाम रख दिया गोपाल दास। उन्होंने उस के गले में तुलसी माला धारण कराई।

श्री हरिनाम महामंत्र प्राप्ति के पश्चात, उस हाथी ने श्री रसिकानन्द प्रभु की परिक्रमा करके उन को दण्डवत प्रणाम किया। एक दृष्टि से श्री रसिकानन्द प्रभु की रूप राशि का पान करके, उस हाथी की आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। फिर श्री रसिकानन्द प्रभु की बारम्बार परिक्रमा करके व उनको प्रणाम करते हुए, पुलकित व गदगद गोपाल दास, श्री गुरुदेव के चरणारविंद को अपने हृदय में धारण करके, वाणपुर नगर की परिक्रमा करके धीरे—धीरे, गहन अरण्य में प्रवेश कर गया।

प्रासाद की छत से इस अलौकिक दृश्य को प्रत्यक्ष देख कर, सूबेदार अहमदिबेग तथा सभी राजा—महाराजा, विस्मय से अभिभूत हो गए। सूबेदार तो श्री रसिकानन्द प्रभु के प्रभाव को देख कर, मन ही मन, अत्यन्त भयभीत हो गया।

रसिक सम्मुखे आसि हइल उपसन।
आहम्मदीबेग आसि पड़िल चरण।।

—श्रीश्री रसिक मंगल—पश्चिम ८/७३२

(अर्थात सूबेदारं अहमदिबेग, श्री रसिकानन्द प्रभु के चरणों में आ उपस्थित हुआ और उन के चरणारविंद का आश्रय ग्रहण किया।)

श्री रसिकानन्द प्रभु की अपार महिमा को प्रत्यक्ष देख कर, अहमदिबेग अपने द्वारा किये गये दुष्कर्मों के लिए, पश्चाताप की अग्नि में जलने लगा। वह श्री रसिकानन्द प्रभु के चरण पकड़ कर बार–बार अपने दुष्कर्मों के लिए क्षमा मांगने लगा। कृपासागर प्रभुपाद, सूबेदार के हृदय परिवर्तन से अत्यन्त प्रसन्न हुए। सूबेदार ने जिन ग्रामों पर बलपूर्वक कब्जा कर रखा था, उन सब को उसने वापिस कर दिया। उसने कई नये ग्राम भी श्री रसिकानन्द प्रभु को साधु सेवा के निमित्त अर्पित किये। श्री रसिकानन्द प्रभु से श्री हरिनाम महामंत्र ग्रहण कर के वह कृत–कृत्य हुआ। श्री रसिक मुरारी जी के आदेश से उसी वक्त जीव हिंसा, निर्दोष प्राणियों को यातना देना और दूसरों की सम्पत्ति को हड़पने जैसे कार्यों का परित्याग करके, वह परम वैष्णव हो गया। सूबेदार अहमदिबेग में आये इस अद्भुत परिर्वतन के कारण, उत्कल देश के बहुत से दूसरे राजा–महाराजा भी, श्री रसिकानन्द प्रभु के शिष्य बन गये।

बाणपुर से श्री रसिकानन्द प्रभु, नीलाचल चले गये। पुरी के महाराजा, गजपति लांगुला नृसिंह देव ने उन के दर्शन करके, उन को साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया और विविध प्रकार से उन की पूजा अर्चना की। श्री रसिकानन्द प्रभु अत्यन्त मधुर बंसी भी बजाते थे। श्री गजपति के अनुरोध पर, उन्होंने ऐसा मधुर बंसी वादन किया कि महाराज गजपति के साथ–साथ, दूसरे उपस्थित महाराजा भी इसकी सप्तस्वर मूर्छना से मोहित हो गये।

महाराज गजपति के अनुरोध पर श्री रसिकानन्द प्रभु ने उन को अनेक उपदेशामृत प्रदान किये, जो इस प्रकार हैं:–

साधु संग करि भज नंदेर नंदन।
अबश्य पाइबे कृष्ण पुरुष रतन।।
ब्राह्मण बैष्णब सेबा कर निरन्तर।
सब जीबे दया कर शुन नृपबर।।

–श्रीश्री रसिक मंगल–पश्चिम ६/५६–५७

(अर्थात साधुसंग करते हुए, श्री नंद नंदन का भजन करो। उससे

अवश्य ही उन पुरुषरत्न, श्रीकृष्ण को प्राप्त होओगे। ब्राह्मणों व वैष्णवों की सेवा करो तथा हे नृपवर! सभीं जीवों पर दया करो।)

श्री रसिकानन्द प्रभु ने षट्-शास्त्रों के अनुसार, महाराजा को वैष्णवधर्म का तत्त्व समझाया। पूरा तत्त्व हृदय में उतर जाने पर, श्री गजपति जी, श्रीकृष्ण प्रेम से विह्वल हो गये और उन के अंग थर-थर कांपने लगे। श्री जगन्नाथ, श्रीबलभद्र तथा श्री सुभद्रा जी के दर्शन करके तथा महाराज गजपति से जीव हिंसा न करने सम्बंधी भिक्षा लेकर, श्री रसिकानन्द प्रभु फिर वाणपुर चले गये।

गोपाल दास हाथी की गुरूसेवा
(ईसवी सन् 1624)

एकबार, बाणपुर में गोपालदास हाथी, श्रीरसिकानन्द प्रभु के पास आया। श्री गुरुदेव ने शास्त्रतत्त्व, भक्तितत्त्व तथा कृष्णतत्त्व आदि पर उसे बहुत से उपदेश दिये। दिव्य ज्ञान प्राप्त करके, हाथी पुनः गहन अरण्य में प्रवेश कर गया।

दूसरे दिन शाम को, श्री रसिकानन्द प्रभु भक्तों के साथ चलते-चलते जंगल में पहुंच कर, एक वृक्ष के नीचे ही ठहर गए। उस वन के निकट कोई ग्राम व नगर न था। प्रभुपाद के साथ रसोई के अन्य सारे पदार्थ और सामान तो थे किन्तु चावल नहीं थे। सो वे लोग वृक्ष के नीचे भूखे ही सो गए। अचानक गोपालदास वहां आ निकला। उसने श्री रसिकानन्द प्रभु तथा भक्तों को वृक्ष के नीचे सोते देखा। वह उसी क्षण निकटवर्ती ग्राम में जाकर, किसी गृहस्थ के घर से चावल का पुड़ा (चावल रखने का पात्र) अपनी सूंड से उठाकर ले आया और वन में सोये हुए उन वैष्णवों को दे दिया। श्री रसिकानन्द प्रभु का आदेश पाकर, भक्तों ने शीघ्रता- पूर्वक रसोई तैयार करके, श्रीकृष्ण को नैवेद्य अर्पण किया। जब श्री रसिकानन्द प्रभु तथा सभी वैष्णव प्रसाद ग्रहण करने लगे तो गोपाल दास हाथी दूर से उन की परिक्रमा करने लगा। गोपाल दास का वैष्णव सेवा में ऐसा अनुराग देख कर, श्री रसिकानन्द प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। जब गोपाल दास ने आकर उन के चरणों में दण्डवत प्रणाम किया, तो वे उस (हाथी) के मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहने लगे-

दृढ़ भाबे साधुसेबा कर निरन्तर।
भ्रमन करह तुमि तीर्थ तीर्थान्तर।।
ना करिह साधुजने हिंसन कखन।
सेवन करह सदा बैष्णब ब्राह्मण।।

—श्रीश्री रसिक मंगल—पश्चिम/४१—४२

(अर्थात तुम दृढ़रूप से साधु सेवा करते रहो और सारे तीर्थों का भ्रमण करते रहो। कभी साधुओं की हिंसा मत करना तथा सर्वदा वैष्णवों व ब्राह्मणों की सेवा भी करना।)

श्री रसिकानन्द प्रभु के इस आदेश को सुनकर गोपाल दास की आंखों से आंसू बहने लगे। उसने गुरुदेव की परिक्रमा की, उन को दण्डवत प्रणाम किया और फिर वहां से चला गया। तब से गोपाल दास परम वैष्णव तथा परम साधुसेवी हो गया। वह प्रेम भक्ति में निमज्जित होकर सर्वदा श्रीकृष्ण नाम स्मरण करते हुए, एक वन से दूसरे वन में भ्रमण करने लगा। वह हाथी देवस्थान, ब्राह्मणों अथवा वैष्णवों के घर देखकर, दूर से ही उन की परिक्रमा करने लगता था। यदि अरण्य के बीच किसी साधु—सन्त को मजबूर हो कर रहना पड़ जाता तथा गोपाल को इस बात का पता चल जाता तो वह तुरन्त वहां जाकर, उस साधु—सन्त के ठहरने तथा भोजन आदि की व्यवस्था कर देता। यदि वह किसी की कृषिभूमि पर फसल खाने गया होता और उस भूमि का स्वामी, श्री रसिक मुरारी का नाम ले लेता तो गोपाल दास उस व्यक्ति को प्रणाम करके फसल को किसी प्रकार की हानि पहुंचाए बिना, उस स्थान से चला जाता था।

आपने देखा, किस प्रकार श्री रसिकानन्द प्रभु की कृपा से एक दुष्ट गजराज, गोपालदास नामक भक्तराज के रूप में परिणित हुए और परम साधु—वैष्णव सेवक बने। वे साधुओं व सन्तों को देख कर, उन सब को प्रणाम करते थे। साधुओं और वैष्णवों की सेवा के लिए, व्यापारियों की चावल तथा आटे आदि की बोरियां बलपूर्वक उठा लाते और साधुओं को दे देते थे। एक बार व्यापारियों ने इस विषय में श्री रसिकानन्द प्रभु से शिकायत की और उन के आदेश से, गोपालदास ने बलपूर्वक खाद्य पदार्थ, अन्नादि लाने का कार्य छोड़ दिया परन्तु व्यापारियों ने साधु—वैष्णव सेवा के निमित्त, सीदा सामग्री देने का नियम बना लिया। ज्योंही गोपाल दास उन

के पास जाते, वे लोग वैष्णव सेवा के लिए सभी पदार्थ दे देते। गोपालदास के साथ रहने पर, भोजन के लिए किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती थी। इस लिए पांच–सात सौ वैष्णवों की मण्डली सर्वदा उन के साथ रहती थी। इस कारण उन की, गज गोपालदास महंत के नाम से प्रसिद्धि हो गई।

बंगाल के नवाब, शाह शुज़ा ने जब गोपालदास के विषय में सुना तो उसे बहुत हैरानी हुई और वह इस गजराज को देखने के लिये उतावला हो उठा। उस के आदेश से बहुत से व्यक्तियों ने गोपालदास को पकड़ लाने का प्रयास किया किन्तु असफल रहे। इस पर कौतुहली नवाब ने, गोपालदास को पकड़ लाने के लिए पुरस्कारों की घोषणा की।

एक दुष्ट व्यक्ति पुरस्कार के लोभ में, साधु के वेश में गोपालदास के पास पहुंचा। भोला–भाला साधुसेवी गोपालदास, साधुवेश देखकर, उस व्यक्ति के साथ शाह शुज़ा के प्रासाद में चला गया। शाही महाबतों ने उस को भोजन कराने का भरसक प्रयास किया लेकिन गोपालदास ने वहां जल तक ग्रहण न किया। गोपालदास नित्य–वैष्णव चरणामृत व वैष्णव अधरामृत ही ग्रहण करता था, किन्तु नवाब के प्रासाद में यह सब कहां मिल सकता था? इसीलिए जब उसने जल तक ग्रहण न किया, तो उसे जल पिलाने के लिए गंगा के किनारे लाया गया। वहां पहुंच कर गोपालदास मन ही मन सोचने लगा कि "चार दिन से मुझे वैष्णव चरणामृत व अधरामृत प्राप्त नहीं हुए। फिर मेरी यह देह भी यवनों के स्पर्श के कारण वैष्णव सेवा के लिए उपयुक्त नहीं रही। इसलिए इस देह को धारण करने की अब क्या उपयोगिता है?" यह सोच कर, श्री गुरुदेव के चरणोंका ध्यान करते हुए, उस भक्त गजराज ने धीरे–धीरे गंगा के गहरे जल में उतर कर, अपने प्राण त्याग दिये। गज गोपालदास महंत के पूर्वजन्म की कथा इस प्रकार है।

श्री चैतन्य महाप्रभु, एकबार रामकेलि से नीलाचल लौटते हुए, बाणपुर में पहुंच कर, श्री हरिहर नामक व्यक्ति के घर ठहरे थे। ये हरिहर, जाति से कायस्थ थे व नवाब के मुसद्दी का काम करते थे। उन के घर नित्य, श्री शालिग्राम की सेवा होती थी, जिसके लिए उन्होंने एक शुद्ध ब्राह्मण को नियुक्त कर रखा था। नैवेद्य के रूप में वे केवल पांच सेर कच्चे चावल, श्री शालिग्राम को अर्पण किया करते थे। श्री शालिग्राम को कच्चे आतब चावल का भोग लगते देख कर, श्रीमन्महाप्रभु अत्यन्त क्रोधित हो उठे

और इस प्रकार बोलेः–

तुमि अन्न पाक करि स्वच्छन्दे खाइबे।
ठाकुरेर तण्डुल खालि भोग लागाइबे।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १० / ३०

(अर्थात तुम स्वयं तो अन्न की रसोई करके, तृप्ति के साथ भोजन करते हो और ठाकुर जी को केवल कच्चे चावल का भोग लगा रहे हो?)

श्री हरिहर ने मनुष्य हो कर भी, हाथी की भांति मूढ़ कार्य किया था। हाथी की योनि अत्यन्त मूढ़ योनि है और हाथियों की विचार क्षमता भी बहुत सीमित होती है। जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है कि हरिहर स्वयं तो पका हुआ भोजन करते किन्तु मूढ़तावश, ठाकुर जी को कच्चे चावल का भोग लगाते थे। हाथी कच्चा चावल ही खाता है। इसलिए श्रीमन्महाप्रभु ने क्रोध में श्री हरिहर को वंशजों सहित, मूढ़ हाथी योनि ग्रहण करने का शाप दे दिया। तभी से हरिहर अपने वंशजों सहित, मूढ़ हाथी योनि प्राप्त कर, बाणपुर के गहन अरण्य में रहते थे और बाणपुर नगर में आकर भीषण विनाश लीला करते थे। परवर्त्ती काल में, श्री रसिकानन्द प्रभु की अपार कृपा से, यही मूढ़ हाथी योनि को प्राप्त हरिहर, गोपालदास नामक परमवैष्णव हुए।

श्री गोविन्दजी का प्रकाश
(ईसवी सन् 1625)

श्री रसिक मुरारी के बाणपुर से आने से पूर्व, श्री जगन्नाथ देव ने एक रात उनको, स्वप्न में दर्शन देकर, उनसे इस प्रकार कहा :–

आमार प्रकाश तुमि करह तथाय।
त्रिभंगमूर्ति श्री गोबिन्द राय।।
तार हृदे बिहरिब अनुक्षण।
त्रिभुबन पूजिबेन आमार चरण।।

–श्रीश्री रसिक मंगल–पश्चिम १० / ७१–७२

(अर्थात तुम वहां पर मेरी त्रिभंगमूर्ति, श्री गोविन्द जी का प्रकाश करो। मैं सदा उनके हृदय में विराजमान रहूंगा तथा त्रिभुवनवासी मेरे चरणारविन्द का पूजन करेंगे।)

दूसरे दिन प्रातःकाल, श्री रसिक मुरारी जी ने, श्री जगन्नाथदेव जी के इस आदेश के विषय में सभी भक्तों को सूचित किया। इसी समय, नीलाचलवासी, श्री रघुनाथ तथा श्री आनंद कामीला नामक दो सहोदर भाई भी श्री जगन्नाथ देव से वैसा ही आदेश प्राप्त होने पर, श्री रसिकानन्द प्रभु से मिले। ये दोनों भाई, कुशल मूर्तिकार थे।

श्री श्यामानन्द प्रभु उन दिनों थूरिया में रहते थे। श्री रसिकानन्द प्रभु, दोनों मूर्तिकार बंधुओं के साथ, श्री श्यामानन्द प्रभु से वहाँ जाकर मिले। श्री रसिकानन्द प्रभु से, बाणपुर में हाथी को दीक्षा दान, यवन सूबेदार अहमदिबेग से अपहृत ग्रामों के पुनरोद्धार तथा नये ग्रामों की प्राप्ति आदि के विषय में सूचना प्राप्त करके, श्री श्यामानन्द प्रभु बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने श्री रघुनाथ तथा श्री आनन्द कामीला से एक दिव्य श्रीविग्रह का निर्माण कराया, जिसका नामकरण किया "श्री वृन्दावनचन्द्र"। यही श्री वृन्दावनचन्द्र थूरिया से नृसिंहपुर में जाकर विराजमान हुए। परवर्त्तीकाल में, श्री श्यामानन्द प्रभु के आदेशानुसार, उनके अप्रकट होने के पश्चात्, श्री रसिकानन्द प्रभु ने इन्हीं श्रीविग्रह को, नृसिंहपुर से ले जाकर, श्रीपाट श्यामसुन्दरपुर में विराजमान किया था।

एक दिन श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्री रसिकानन्द प्रभु से कहा, "रसिक जी! श्री जगन्नाथदेव जी की प्रेरणा से जब ये दोनों कुशल मूर्तिकार यहां आए हैं एवं श्री जगन्नाथ देव जी की "श्री गोविन्द रूप" से, गोपीवल्लभपुर में विराजमान होने की इच्छा है, तो तुम शीघ्र इन दोनों सहोदर भाईयों को लेकर, गोपीवल्लभपुर चले जाओ। वहां तुम स्वयं निर्देश देकर ऐसे दिव्य श्रीविग्रह का निर्माण कराओ, जिसे देखकर त्रिभुवनवासी मोहित हो जायें।"

उपरोक्त आदेशानुसार, श्रीरसिकानन्द प्रभु, दोनों कारीगरों के साथ गोपीवल्लभपुर आ गए। उन्होंने अपने निर्देशन में श्रीविग्रह का निर्माण कराना आरम्भ किया। वे स्वयं त्रिभंग– भंगिम मुद्रा में खड़े रहते, मूर्तिकारों को निर्देश देते तथा मूर्तिकार उनकी त्रिभंग–भंगिम मुद्रा तथा रूप को देख–देख कर बड़ी लग्न के साथ श्रीविग्रह को, तराश–तराश कर वैसा ही आकार देने का प्रयास करते। बहुत कठोर परिश्रम से कारीगरों ने अपनी

लग्न और अपने कौशल का परिचय देते हुए, ईसवी सन् १६२५ में श्री गोविन्द जी के दिव्य श्रीविग्रह के निर्माण का कार्य पूर्ण किया। मयूरभंज के महाराजा, श्री वैद्यनाथभंज के रत्न भण्डार में स्वयं प्रकटित, श्रीमती राधारानी के श्रीविग्रह के साथ उसी वर्ष, श्री गोविन्द जी का शुभ विवाह सम्पन्न करके, श्री रसिकानन्द प्रभु युगल किशोर–किशोरी जी की सेवा में निमग्न हो गये।

श्री श्यामानन्द प्रभु के थूरिया निवास के दिनों में, नित्य साधु–सेवा तथा महोत्सव होने लगे। इन सब का व्यय पूरा करने के लिए, अधिक ग्रामों में भिक्षा करने की आवश्यकता अनुभव हुई। इस के लिए एक बार श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु, घंटशिला के राजा श्री नवीन किशोर धल के पास गये, जिन्होंने सातुटी नामक ग्राम, साधुसेवा के लिए प्रभुद्वय को दे दिया। श्री श्यामानन्द प्रभु ने इस गांव का नाम बदल कर श्यामसुन्दरपुर रख दिया। इस गांव में बहुत साधुसेवा कार्यक्रम व महोत्सव होने लगे। श्री श्यामानन्द प्रभु ने एक गृह का निर्माण कराकर यहां कुछ दिन निवास किया। यहां से वे अयोध्या नामक गांव में चले गये। उन्होंने यहां भी एक घर का निर्माण करवाकर, कुछ दिन निवास किया। उन की उपस्थिति में, इस गांव में भी साधुसेवा के कार्यक्रम होने लगे। अयोध्या गांव से जब श्री श्यामानन्द प्रभु, सानगोविन्द पुर गये तो उन की तीनों ठाकुरानियां, श्रीमती गौरांग देवी, श्रीमती श्यामप्रिया देवी तथा श्रीमती यमुना देवी, भी यहां आकर रहने लगीं।

इन दिनों श्री श्यामानन्द प्रभु की कृपा से उत्कल के घर घर में श्री गौर–नित्यानंद, श्री राधा–गोविन्द तथा साधुओं वैष्णवों की सेवा, भक्तिभाव से होने लगी। श्री चैतन्य महाप्रभु के अभिप्रेत नाम प्रेम प्रचार के लिये, श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु को साथ लेकर, ग्रामों–नगरों से आरम्भ करके, वनांचल के निर्जन स्थानों तक भ्रमण करने लगे। श्री रसिकानन्द प्रभु के तत्त्व को लोग भली प्रकार समझ तथा ग्रहण कर सकें, इस उद्देश्य से श्री श्यामानन्द प्रभु ने, एक दिन श्री रसिकानन्द प्रभु को देव गोस्वामी (ठाकुर गोसाईं) की उपाधि से विभूषित किया।

कौतुके हासिया कहे श्यामानन्द राय।
ठाकुर गोंसाईं बलि डाकिबे सबाय।।
ठाकुर गोंसाईं बलि डाकिबे रसिके।
सेइ हइते एइ नामे डाके सर्वलोके।।

–श्रीश्री रसिक मंगल–पश्चिम १२/१५–१६

(अर्थात श्री श्यामानन्द प्रभु कौतुकपूर्वक हंसकर, श्री रसिकानन्द प्रभु को ठाकुर गोसाईं या देव गोस्वामी नाम से सम्बोधित करने के लिये सबको आदेश दिया, तब से सभी ने उनको ठाकुर गोंसाइ बोलने लगे।)

समूचे उत्कल को नाम व प्रेम के सैलाब में डूबते देखकर, श्री श्यामानन्द प्रभु बहुत प्रसन्न होते थे। एक दिन वे श्री रसिकानन्द प्रभु तथा श्री दामोदर आदि भक्तों को साथ लेकर, थूरिया चले गये, जहां उन की उपस्थिति में समारोहपूर्वक दोल यात्रा महोत्सव अनुष्ठित हुआ। इसी गांव में एक दिन, श्री श्यामानन्द प्रभु को अकस्मात भगवान श्रीकृष्ण का यह आदेश प्राप्त हुआ।

ब्रजेते आइस तुमि करिया जतन।।

–श्रीश्री रसिक मंगल–पश्चिम १२/१३

(अर्थात तुम यत्नपूर्वक ब्रज में चले जाओ।)

यह आदेश पाकर वे अत्यन्त चिन्तित हो उठे। समग्र श्यामानन्द गोष्ठी का दायित्व तथा श्रीविग्रह आदि की सेवा, श्री रसिकानन्द प्रभु को सौप कर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने सब लोगों से कहा कि "भगवान श्रीकृष्ण के आदेशानुसार मैं ब्रजमण्डल को अवश्य जाऊँगा।" यात्रा के उद्देश्य से श्री श्यामानन्द प्रभु ने तीन दिन तथा तीन रात्रि एक वृक्ष के नीचे निवास किया। उनके वृन्दावन गमन का समाचार पाकर सभी राजाओं–महाराजाओं तथा अन्य भक्त लोगों ने, उन को रोकने का बहुत प्रयास किया। उधर श्री रसिकानन्द प्रभुने श्री गुरुदेव से होने वाले बिछोह तथा विरह की आशंका से अन्नजल तक त्याग दिया और अविराम अश्रु विसर्जित करते रहे। अन्त में अपने प्रिय शिष्य की दयनीय अवस्था को देख कर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने भक्तों के अनुरोध को मान कर, ब्रज गमन के संकल्प को त्याग दिया किन्तु इन्हीं दिनों वे अकस्मात् प्रबल वायुरोग से ग्रस्त हो गये। श्री

रसिकानन्द प्रभु, बलरामपुर के वैद्य श्री हरिचंदन के घर से हिमसागर तैल ले आये। इस तैल को मस्तकपर मलने से श्री श्यामानन्द प्रभु धीरे–धीरे स्वस्थ हो गये। ईसवी सन् १६२७ में वे थूरिया से धारेन्दा चले गये, जहां उन्होंने एक विशाल महोत्सव का अनुष्ठान किया।

गलतागादी से महंत सूर्यानंद का आगमन

धारेन्दा से श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु के साथ गोपीवल्लभपुर चले गये। इन्हीं दिनों राजस्थान के जयपुर के निकटवर्ती स्थान, गलता से श्री सम्प्रदाय की गद्दी के महन्त, श्री सूर्यानंद अपने साथ चौदह हज़ार नागा सन्यासियों को लेकर, गोपीवल्लभपुर पहुंचे। उन के आगमन का समाचार पाकर, श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु ने स्वयं आगे जाकर उन का स्वागत किया। महन्त श्री सूर्यानंन्द जी ने वहां श्री गोविन्द जी को भेंट देकर, उन के अपरूप सौंदर्य के दर्शन किये और अपने आप को धन्य तथा कृत–कृत्य किया। उन्होंने श्री गोविन्द जी के दर्शन करके यों कहा–

एमन माधुर्य मूर्ति कोथा नाहि देखि।
दर्शने सकल जीबेर पूर्ण करे आंखि।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ११/७७

(अर्थात ऐसे माधुर्यमय श्रीविग्रह मैंने कहीं नहीं देखे, जिन के दर्शन मात्र से जीवों के चक्षु सफलता को प्राप्त करते हैं।)

श्री सूर्यानंद ने उन साधुओं के साथ, श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में ही कुछ दिन निवास किया। वहां की उत्तम परिपाटीयुक्त सेवा व नित्य सैंकड़ों ब्राह्मणों तथा वैष्णवों की सेवा को देख कर, श्री सूर्यानन्द जी बहुत आकर्षित तथा प्रभावित हुए। श्री रसिकानन्द प्रभु की वैष्णवोचित दीनता, भजन निष्ठा तथा श्रीकृष्ण व साधुसेवा के प्रति प्रबल अनुराग ने भी उनको बहुत प्रभावित किया। एक दिन, श्री सूर्यानन्द ने श्री श्यामानन्द प्रभु से कोई भिक्षा मांगी, जिस पर श्री श्यामानन्द प्रभु ने कहा कि श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में अवस्थित समग्र द्रव्यों–पदार्थों को अपना समझकर, श्री सूर्यानन्द जी ले सकते थे, लेकिन उन्होंने (श्री सूर्यानन्द ने) किसी साधारण वस्तु की प्राप्ति के लिए तो प्रार्थना नहीं की थी।

तबे सूर्यानन्द बले श्री हरिद्वारेते।
लड़ाई हइल सब सन्यासीर साथे।।
महागोल देखि आमि फिरिया चलिल।
सेई खाने पृष्ठे तरोयालि के मारिल।।
एइ पापे पृथिवीते एकबार आमि।
मनुष्य शरीर जात कराइब स्वामी।।
एइ कारणेते मागि प्रार्थना करिया।
रसिक चांदेर पुत्र हइब बलिया।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ११/८३—८६

(अर्थात श्री सूर्यानन्द ने कहा कि "हरिद्वार के कुम्भ मेले में, एकबार संन्यासियों के साथ बैरागियों का युद्ध हुआ। उस लड़ाई को देख कर मैं जब वहां से लौट कर जा रहा था, तो किसी ने मेरी पीठ पर तलवार से वार किया। इस पाप के लिए मुझे फिर पृथ्वी पर मनुष्य शरीर धारण करके जन्म लेना होगा। मैं आप से यही भिक्षा मांगता हूँ कि मैं श्री रसिक मुरारी के पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण करूं।")

महन्त श्री सूर्यानन्द की उपरोक्त प्रार्थना पर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने उनसे इस प्रकार कहा, "हे श्रीपाद! श्री रसिक से शाप मिलने पर, उन की छः संतानों का देहान्त हो गया था। तदनन्तर उनकी पत्नी, श्रीमती श्यामदासी की प्रार्थना तथा व्यग्रता से विवश होकर मैंने रसिक मुरारी को अपना शाप वापिस लेने का आदेश दिया और उसने मेरी आज्ञानुसार अपना शाप वापिस लेकर, श्री राधानंद, श्री कृष्णगति तथा श्री राधाकृष्ण नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। इन पुत्रों की उत्पत्ति के पश्चात, श्री रसिक ने स्त्रीसंग का परित्याग कर दिया। अन्यथा उन के पुत्र के रूप में जन्म लेने के लिए आप के लिए कोई बाधा न होती। श्री रसिक मुरारी के पुत्र भी इन्हीं की भांति तेजस्वी, भक्तिमान तथा साधु—गुरु—वैष्णव तथा कृष्ण सेवी हैं।"

बड़पुत्रे राधानन्दे शिष्य आमि करि।
तार पुत्र हओ तुमि माना नाहि करि।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ११/९०

(अर्थात श्री रसिक के ज्येष्ठ पुत्र, श्री राधानन्द को मैने अपना

शिष्य बनाया है। आप उन के पुत्र होकर जन्म ले सकते हैं। इसमें कोई बाधा नहीं है।)

महन्त श्री सूर्यानन्द ने, श्री रसिकानन्द प्रभु के ज्येष्ठ तनुज, श्री राधानंद के पुत्र के रूप में जन्म लेना स्वीकार कर लिया। अपनी स्वीकृति प्रदान करते हुए, श्री सूर्यानंद ने कहा, "मेरे पुनर्जन्म लेने पर भी, हरिद्वार कुंभ में लगी चोट का जो निशान मेरी पीठ पर है, वह फिर भी विद्यमान रहेगा। इसलिए, श्री राधानन्द के पुत्र के रूप में मुझे अनायास ही पहचाना जा सकेगा।" यह कहकर, श्री सूर्यानन्द ने अपने द्वारा सेवित, श्री नृसिंह शालिग्राम, चक्र की आकृति वाले श्री हनुमान जी एवं श्री हनुमान निशान आदि गोपीवल्लभपुर में देकर, नीलाचल को प्रस्थान किया। नीलाचल से वे सेतुबन्ध रामेश्वर होते हुए, भारत के अन्य तीर्थों का दर्शन करते हुए, गलतागद्दी वापस पहुंच गये। इसके कुछ दिन पश्चात, श्री सूर्यानन्द ने देह त्याग दियाः–

किछु दिनान्तरे माया देह त्याग कैला।
सिद्ध देह लइया श्रीपाटेते प्रबेशिला।।
श्रीराधानन्दनन्दन हइया जनमिल।
महाहर्षे सबे नयनानन्द नाम दिल।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ११/१००–१०१

(अर्थात कुछ दिन के पश्चात् श्री सूर्यानन्द ने देहत्याग करके, सिद्धदेह से, श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में प्रवेश किया। वहां उन्होंने श्री राध ानन्द के पुत्र के रूप में जन्म लिया, जिन का सभी ने अत्यन्त हर्षयुक्त होकर, श्री नयनानन्द नाम रखा।)

गलता से तीर्थाटन पर निकलने से पहले, श्री सूर्यानन्द जी ने अपने पट्टशिष्य, श्री रघुदास को गद्दीनशीन करना चाहा था परन्तु श्री रघुदास ने असहमति जताते हुए, किसी अन्य शिष्य को गद्दी प्रदान करने के लिए निवेदन किया था। यह देखकर कि श्री रघुदास गुरु आज्ञा का उल्लंघन कर रहे थे, श्री सूर्यानन्द जी ने उन्हें शाप देते हुए कहा था कि, "हे दुर्मते! तू मेरा शिष्य होते हुए भी, गुरु आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है, इसलिए तू कुष्ठ व्याधि से ग्रस्त हो जा।"

श्री सूर्यानन्द जी का शाप पाकर, श्री रघुदास ने अत्यन्त पीड़ा अनुभव की। वे विचलित होकर आंसू बहाते हुए श्री गुरुदेव के चरणारविंद में गिरकर लोटने लगे। श्री रघुदास के करुण रुदन से, श्री सूर्यानन्द जी का हृदय द्रवित हो गया और वे इस प्रकार बोले:—

बले आमि एकबार जन्मिबो पृथ्बीते।
दर्शन पाइबे आमार श्रीक्षेत्र चलिते।।
पृष्ठे तलोयारी चिन्ह देखिया चिन्हिबे।
चरणामृत पाइलेइ एइ कुष्ठ जाबे।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश ११/६८—६६

(अर्थात मैं पृथ्वी पर एक बार फिर जन्म लूंगा। तुम श्री जगन्नाथपुरी के मार्ग में मेरे दर्शन करोगे। मेरी पीठ पर जो तलवार का निशान है, उसे देख कर तुम मुझे पहचान लेना। उस समय मेरा चरणामृत पान करने पर, तुम इस कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाओगे।)

इस के पश्चात, श्री सूर्यानन्द जी ने नीलाचल के लिए प्रस्थान किया। शापग्रस्त श्री रघुदास को कुष्ठरोग ने आ दबोचा।

तीर्थ दर्शन से लौटकर, महन्त श्री सूर्यानन्द जी ने शरीर छोड़ दिया था, यह हम पहले ही कह चुके हैं। उन के देह छोड़ने के कई वर्ष बाद, शापग्रस्त श्री रघुदास अपने पुनर्जन्म प्राप्त गुरुदेव को ढूंढने के लिए निकल पड़े। वे नीलाचल में, श्री जगन्नाथदेव जी के दर्शन करके, सेतुबंध श्री रामेश्वरम चले गये। वहां से कई तीर्थों का दर्शन करते हुए, वे श्री गोपीवल्लभपुर चले आये। इस स्थान पर निवास के समय एक दिन वे सुवर्णरेखा नदी में स्नान करने गए। वहां पर उन का साक्षात्कार हुआ, श्री राधानन्द के ज्येष्ठ सुपुत्र, श्री नयनानन्द जी से, जो उसी नदी में स्नान करने आये हुए थे। अचानक श्री रघुदास जी की नज़र, श्री नयनानन्द जी की पीठ पर पड़ गई। उन की पीठ पर तलवार के वार का निशान था, जिसे देखकर, श्री रघुदास चौंक पड़े। वे तत्काल समझ गये कि उन के गुरुदेव श्री सूर्यानन्द जी ने ही, श्रीनयनानन्द के रूप में जन्म लिया था। बस फिर क्या था, उन्होंने उसी समय, श्री नयनानन्द जी का चरणामृत पिया और चमत्कारिक रूप से व्याधिमुक्त हो गये। उनकी देह पहले की ही भांति

स्वस्थ तथा सुन्दर हो गई। उन्होंने श्री नयनानन्द जी की अनेक प्रकार से स्तुति की। कुछ दिन वहां रहकर वे गलतागद्दी लौट आए और गद्दी के महंत बनकर साधुओं—वैष्णवों की सेवा करते हुए, सुखपूर्वक जीवन यापन करने लगे।

देवी सर्वमंगला का उद्धार

जब महन्त श्री सूर्यानन्द जी ने गोपीवल्लभपुर से गलता के लिए प्रस्थान किया था, तो श्री श्यामानन्द प्रभु रोहिणी चले गये थे, जहां भ्रमर, मधु, श्रीकर आदि ने उनका चरणाश्रय ग्रहण किया। उन्हीं दिनों श्री दामोदरपति, श्री पुरुषोत्तम गोस्वामी आदि रोहिणी आकर, श्री श्यामानन्द प्रभु को समारोहपूर्वक केसीयाड़ी ले गये। इस स्थान के निकटवर्ती ग्रामीण अंचल से, सहस्रों लोग श्री श्यामानन्द प्रभु के दर्शनों के लिए आने लगे। श्री दामोदरपति ने केसीयाड़ी में इस मौके पर एक विशाल महोत्सव का आयोजन किया।

उन्हीं दिनों एक रात, देवी सर्वमंगला अत्यन्त दिव्य रूप धारण करके, श्री श्यामानन्द प्रभु के पास उनके शयन कक्ष में गई। देवी उनको प्रणाम करके, हाथ जोड़कर उन की अनेक प्रकार से स्तुति करने लगी।

बले कृपा कर मोरे प्रभु श्यामानन्द।
जाहार प्रेमेते हइला श्यामार आनन्द।।
मुइ हीन पापमति दुष्ट दुराचार।
शरण राखिह प्रभु चरणे तोमार।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १२/१६—१७

(अर्थात देवी ने कहा, "हे श्यामानन्द प्रभु! तुम्हारे प्रेम से, श्री श्यामाजू को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ है। तुम मुझ पर भी कृपा करो। मैं अति हीनमति, पापिष्ठा, दुष्टा तथा दुराचारिणी हूँ। मैं तुम्हारे चरणों की शरण ग्रहण करती हूँ। तुम मुझे अपनी शरण में रखलो।")

किन्तु देवी के आगमन पर, श्री श्यामानन्द प्रभु बहुत असन्तुष्ट हुए एवं उसकी प्रार्थना सुन कर वे उससे इस प्रकार बोले, "तुम जीवों की हिंसा करके जीवन धारण करती हो। तुम पशुघातिनी हो, इसलिए मैं तुम्हारा स्पर्श तक नहीं करूंगा, क्योंकि तुम्हारे स्पर्श से मेरे सारे पुण्यों की हानि होगी।"

श्री श्यामानन्द प्रभु ने जब देवी का स्पर्श करना भी अस्वीकार कर दिया, तो वह अत्यन्त विचलित हो उठी। अत्यन्त कातर होकर अपने वक्षःस्थल को आंसुओं से भिगोते हुए, वह श्री श्यामानन्द प्रभु के चरण पकड़ कर ज़ोर–ज़ोर रोने लगी।

पुनः देवी कहे शुंन क्षम मोर दोष।
हेन ना करिब आमि ना करिह रोष।।
आमार नाम धरि जेहो जीब घात करे।
पितृगण लइया साथे महानरके पड़े।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १२/२०–२१

(अर्थात देवी दोबारा बोली, "हे प्रभु! आप मेरे सभी अपराध क्षमा कर दीजिए। मैं और ऐसे कुकर्म नहीं करूंगी। अब आप क्रोध त्याग दीजिये। अबसे जो कोई भी मेरा नाम लेकर जीव हत्या करेगा, वह अपने पितरों सहित घोर नरक में जायेगा।")

देवी के करुण विलाप, बार–बार की जाने वाली प्रार्थना तथा उसके दोबारा कुकर्म न करने का वचन देने पर, दया के सागर, श्री श्यामानन्द प्रभु द्रवित हो गये। अदोषदर्शी प्रभु ने, शरणागता देवी सर्वमंगला को, श्री हरिनाम की दीक्षा प्रदान की एवं यह आदेश दिया:–

कभुना करिबे आर पशुरे हिंसन।
साधु सेवा कर पाबे कृष्णेर चरण।।

श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश १२/२३

(अर्थात फिर कभी पशु–हिंसा न करना, सर्वदा साधु सेवा करना। तुम अवश्य ही भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविंद को प्राप्त करोगी।)

श्री श्यामानन्द प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके, देवी सर्वमंगला ने उन को प्रणाम करके विदा ली और अपने मंदिर को चली गई। श्री श्यामानन्द प्रभु की अपार कृपा से, देवी जीव हिंसा छोड़ कर, परम वैष्णवी हुईं। उन के लिये पशुबलि देने की प्रथा, हमेशा के लिये बंद हो गई। आजकल भी केसीयाड़ी में विराजित, इन देवी की पूजा, शुद्ध वैष्णव पद्धति से ही होती है।

केसीयाड़ी के मुग़ल अधिकारी पर कृपा

श्री श्यामानन्द प्रभु के अवस्थान के समय, केसीयाड़ी के घर–घर में आनन्द की लहरें प्रवाहित होने लगीं। घर–घर में साधु सेवा तथा नाम संकीर्तनादि होने लगे। उस समय केसीयाड़ी का राजाधिकारी था एक विधर्मी मुग़ल। हिंदुओं के घरों में निरन्तर उठती हरिनाम संकीर्तन ध्वनि को सुन कर यह यवन अधिकारी क्रुद्ध हो उठा। जब उसने जिज्ञासा करने पर केसीयाड़ी के निवासियों के मुख से, श्री श्यामानन्द प्रभु की महिमा के विषय में सुना, तो वह ईर्ष्या से परिपूर्ण हो गया एवं प्रभुपाद जी को बंदी बनाने का आदेश दे दिया।

शुनि क्रोधे मोगल कहिल सबास्थाने।
इहार जे शिष्य बनभूमि प्रजागणे।
इहारे धरिले सबे मिलिबे आसिया।
एत बलि बहु लोक दिल पाठाइया।।

—श्रीश्री रसिक मंगल १२/५७–५८

(अर्थात वह मुग़ल शासक कहने लगा कि, "इस श्यामानन्द के जो शिष्य वनभूमि के अधिवासी हैं, जिनका काम चोरी, डकैती, लूट, नरहत्या आदि है, यदि हम श्री श्यामानन्द प्रभु को बंदी बना लें, तो इनके सारे उपरोक्त शिष्य हमारे पास आ जायेंगे। यह कहकर उस मुग़ल अधिकारी ने बहुत से सैनिकों को, श्री श्यामानन्द प्रभु को बंदी बनाने के लिए भेज दिया।)

श्री श्यामानन्द प्रभु की कृपा से, नगर के अभिजात वर्ग के निवासियों से लेकर, वनांचल के निम्नजाति के निवासियों तक, सभी लोग हरिनाम व प्रेम की वन्या में निमज्जित हो चुके थे। श्री प्रभुपाद के प्रभाव से लोधा आदि निम्न जातियों के लोग भी अपने चोरी, डकैती व नरहत्या आदि घृणित कर्मों का परित्याग करके, हरिभजन में लीन होने लगे थे, किन्तु मुग़ल अधिकारी ने सर्वथा मिथ्या कारण दिखला कर कि श्री श्यामानन्द प्रभु, केवल सांवताल तथा लोधा आदि जातियों के दुष्ट व्यक्तियों के ही गुरु थे और उन को बंदी बना लेने पर वनांचल के सारे दुर्धर्ष व्यक्ति आत्म–समर्पण कर देंगे, बहुत से सैनिक भेज कर, श्री श्यामानन्द प्रभु को बंदी बना

लिया। केसियाड़ी के विशिष्ट व्यक्तियों ने उस अधिकारी को समझाने की भरसक कोशिश की, किन्तु वह नहीं माना।

भक्ताधीन भगवान, अपने प्रिय भक्त का मानहनन आदि कभी सहन नहीं करते। श्री श्यामानन्द प्रभु, निर्विकार रूप से, कारागार में रहकर, भक्तों के साथ नामसंकीर्तन करने लगे। उधर दो तीन दिन के भीतर ही, उस मुग़ल शासक के साथ नाना प्रकार की अनहोनी घटनाएं होने लगीं। उस का धन, उसके हाथी घोड़े आदि नष्ट हो गये। उसको अपरिसीम शारीरिक कष्ट भी होने लगा। इन नाना प्रकार के अमंगलों से वह समझ गया कि श्री श्यामानन्द प्रभु से ईर्ष्यावश की गई ज्यादती के कारण ही, उस की ऐसी दुर्गति हो रही थी। अपने द्वारा किये गये अपराधों को हृदयंगम करके, उसने शीघ्रतापूर्वक आकर, श्री श्यामानन्द प्रभु की शरण ग्रहण की। वह उनके चरण पकड़ कर कहने लगाः–

"शुन शुन महाप्रभु मुई दुष्टमति।
तोमा ना जानिया मोर एतेक दुर्गति।।
तोमार महिमा देबेन्द्रादि अगोचर।
मुइना जानिनु तुमि शरण सोदर।।

–श्रीश्री रसिक मंगल १२/६३–६४

(अर्थात हे प्रभु! मैं अत्यन्त दुष्टमति हूँ। आप के स्वरूप को न पहचानने के कारण ही मेरी ऐसी दुर्गति हो रही है। आपकी महिमा तो देवेन्द्र आदि को भी गोचरीभूत नहीं है। मैं आपके शरणागतवत्सल रूप को नहीं जानता था।)"

उस अधिकारी के ऐकान्तिक रूप से शरणागत होने पर, पतितपावन, श्री श्यामानन्द प्रभु ने उस पर कृपा की। तत्पश्चात वह मुगल अधिकारी परम भक्तिमान तथा साधु–वैष्णव सेवी हो गया।

❖

एकविंश अध्याय

श्रीश्यामानन्द प्रभु केसीयाड़ी से पंचटी गये। वहां के ज़मींदार, श्री हरिनारायण ने अपने वंशजों सहित उन से दीक्षा ग्रहण की। पंचटी से श्री श्यामानन्द प्रभु पटाशपुर चले गये। वहां के ज़मींदार, श्री नृसिंह गजपति ने भी उन से दीक्षा ग्रहण की। वे जिस मार्ग से जाते, वहां के सहस्रों लोग, उन का चरणाश्रय ग्रहण कर लेते।

पटाशपुर से, श्री श्यामानन्द प्रभु भक्तों के साथ नारायणगढ़ गये। वहां वे श्री श्यामपाल भूईंयां के घर गये, जिसने उन की भक्तिपूर्ण ढंग से चरणवंदना करके हार्दिक स्वागत किया। श्री श्यामपाल भूईंयां का दरबान यवन था। उस यवन दरबान को देखकर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने असन्तुष्टि व्यक्त की और भूईंयां को यवन दरबान रखने की मनाही की। निषेध करते हुए उन्होंने कहा कि "जहां गुरु, श्रीकृष्ण व साधुओं की सेवा होती हो और ब्राह्मणों का अक्सर आना जाना होता हो, वहां यवन दरबान के दर्शन और स्पर्श से, सब कुछ निष्फल हो जाता है। इसलिए आज से द्वार पर हिन्दु दरवान रखो।"

श्री श्यामपाल भूईंयां ने श्री श्यामानन्द प्रभु के इस आदेश का पालन नहीं किया। इस पर वे क्रुद्ध हो कर बोले :–

बड़ श्रद्धा देखि यबनेर प्रति तोमा।
एखाने उचित नहे रहिबारे आमा।।

–श्रीश्री रसिक मंगल (प/१२/७२)

(अर्थात यवनों के लिए तुम्हारे मन में बहुत श्रद्धा देख रहा हूँ। इसलिए मेरा तुम्हारे घर रहना उचित नहीं है।)

यह कहकर श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री श्यामपाल भूईंयां का गृह त्यागकर अन्यत्र चले गये। मगर इस के अनन्तर एक आश्चर्यजनक स्थिति पैदा हो गई। श्री श्यामानन्द प्रभु के चले जाने के पश्चात, श्री श्यामपाल भूईंयां भरसक प्रयत्न करने के बावजूद अपने घर यवन दरबान न रख सके। बार–बार यवन दरबान रखने पर या तो नया दरबान अस्वस्थ

हो जाता या मर ही जाता था। स्वयं भूईयां के भी नाना प्रकार के अमंगल होने लगे। इन सब घटनाओं के कारण भूईयां भीत होकर समझ गया कि श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणों में हुए अपराध के कारण ही उसका इस प्रकार अनिष्ट हो रहा था। अन्ततः अनुतप्त हृदय के साथ, श्री श्यामपाल भूईयां, श्री श्यामानन्द प्रभु के शरणापन्न हुए। श्री श्यामानन्द प्रभु ने उन्हें यवन दरबान कदापि न रखने के लिए बहुत उपदेश दिया और उन की आज्ञा को शिरोधार्य करके भइया यवन दरबान के स्थान पर हिन्दु दरवान ही रखने लगे।

श्री अभिराम गोपाल की लीला का वर्णन

नारायणगढ़ से श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री अभिराम ठाकुर के श्रीपाट के दर्शन करने के लिए खानाकुल गये। बहुत से भक्तों के साथ उन्होंने, श्री गोपीनाथ जी के दर्शन किये। श्री गोपीनाथ जी के दर्शन करके, श्री श्यामानन्द प्रभु प्रेमविभोर होकर, प्रेमाश्रु विसर्जित करने लगे। श्री गोपीनाथ जी के अधिकारी ने भक्तिभाव से सब को श्री गोपीनाथ जी के प्रसाद का भोजन कराया। प्रसाद ग्रहण करने के पश्चात श्री श्यामानन्द प्रभु प्रेम विह्वल होकर, सभी भक्तों के सम्मुख श्री अभिराम ठाकुर की लीला का वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा कि, "द्वापर युग में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं प्रकट हो कर अनुपम–दिव्य लीलाएं करने लगे। वे तथा बलराम जी, अपने सखाओं के साथ श्री वृन्दावन में क्रीड़ारस में निमग्न रहकर सखाओं के साथ साथ स्वयं भी आनन्दरस का आस्वादन करने लगे। एक दिन उन्होंने तथा बलराम जी ने, एक अभिनव क्रीड़ा आरम्भ की। कोई बालक राजा, कुछ बालक प्रजा तथा कुछ चोर बनकर घूमने लगे। उस समय कंस के द्वारा भेजा गया व्योमासुर वहां आ गया। व्योमासुर ने अपनी आसुरी माया से, क्रमशः एक एक करके, सभी गोप बालकों को उठा उठा कर, गिरिराज गोवर्द्धन की एक गुफा में रखकर, एक विशाल शिला से उस गुफा के मुख को बंद कर दिया। उधर श्रीकृष्ण जी ने देखा कि उन के सखाओं में से कोई भी क्रीड़ा स्थल पर उपस्थित नहीं था। वे हर सखा का नाम पुकारते हुए, गिरिराज गोवर्द्धन की उसी गुफा के पास जा पहुंचे। यहां उन्होंने देखा कि व्योमासुर उन के एक सखा को बलपूर्वक अपनी बगल में दबाकर, उस

गुफा में प्रविष्ट हो रहा था। यह देख कर श्रीकृष्ण क्रोधित हो गए। उन्होंने क्रोध में व्योमासुर के सिर पर ज़ोर से मुंक्का मारा, जिस से उसकी मृत्यु हो गई। श्रीकृष्ण गुफा के मुख पर से विशाल शिला को हटाकर, अपने एक एक सखा को बाहर ले आए। बाकी सभी बालक तो बाहर आ गए किन्तु श्रीकृष्ण का अभिराम नामक सखा, गुफा के अन्दर ही रह गया। श्रीकृष्ण को इस बात का पता न चला। वे उस विशाल शिला से पहले की ही भांति गुफा का मुंह बंद करके, वहां से चले आए।

कलियुग में जब श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, श्रीधाम वृन्दावन गए तो गिरिराज गोवर्द्धन की परिक्रमा के समय, उस गुफा के मुख से विशाल पत्थर को हटाकर "भैया अभिराम" कहते हुए, वे उस गुफा में चले गए।

शुनि अभिराम बाहिरिला गुफा हैते।
देखि महाप्रभु बड़ आनन्दित चित्ते।।
कोलाकुलि करि दोंहा प्रेमेते भासिल।
पूर्वकथा चित्ते स्मरि आनन्द बाड़िल।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश—१२

(अर्थात श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की पुकार को सुन कर, श्री अभिराम गुफा से बाहर आ गए। उन्हें देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु बहुत आनंदित हुए। दोनों एक दूसरे का आलिंगन करने लगे और द्वापर युग की कथा को याद कर के आनंदित होने लगे।)

श्री गौर सुन्दर ने, श्री अभिराम गोपाल को साथ लेकर श्री गोविंद जी, श्री गोपीनाथजी तथा श्री मदन मोहन जी के दर्शन किये। श्री अभिराम की स्तव स्तुति से आनंदित होकर श्री गोविंद जी ने अपने गले की माला उन को देदी।

श्री अभिराम गोपाल ने, श्री गौरांग सुंदर के साथ, श्री गोविंद जी, श्री गोपीनाथ जी, श्री मदन मोहनजी और बलदेव जी के दर्शन किये थे किन्तु बाकी जितनी भी मूर्तियों के दर्शन करके उन्होंने, उन मूर्तियों को दण्डवत प्रणाम किया, वे सब की सब एक एक करके फट गईं।

आर जत जत मूर्ति सेखानेते छिल।
एक एक दण्डवते सबे फाटि गेल।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१२—५७)

(अर्थात और जितनी भी मूर्तियां वहां थीं, वे सब श्रीअभिराम के एक एक दण्डवत से फट गईं।)

श्रीधाम वृन्दावन से श्री अभिराम नीलाचल गए। वहां श्री जगन्नाथ देव जी ने हंसते हुए, उनको अपने गले की माला प्रदान की। नीलाचल से श्री अभिराम गोपाल, श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ श्रीविष्णुपुर गये। वहां उन्होंने श्री मदन मोहन जी को दण्डवत प्रणाम किया तब श्री मदन मोहन जी टेढ़े हो गये, और

एक दण्डबते बांका हइया रहिल।
दण्डबत ना करिह बलिया कहिल।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१२/६३)

(अर्थात एक दण्डवत से ही श्री मदनमोहन जी टेढ़े पड़ गए और कहने लगे कि और दण्डवत प्रणाम मत करो।)

विष्णुपुर से श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री अभिराम ने बगड़ी में आकर, श्रीकृष्णराय जी के दर्शन किये। श्री अभिराम गोपाल जी ने श्रीकृष्णराय जी को जब तीन बार दण्डवत प्रणाम किया तो श्री कृष्णराय जी ने हंसकर उन को अपने गले की माला दे दी।

एक दण्डबते ते बिग्रह फाटिया जाय।
तिन दण्डबत निल बगड़ि कृष्णराय।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश–१२/६८

(अर्थात श्री अभिराम के एक बार दण्डवत से ही सभी श्रीविग्रह फट जाते हैं किन्तु बगड़ी के श्री कृष्णराय जी ने तीनबार दण्डवत ग्रहण किया।)

बगड़ी से श्री अभिराम ने रेमुना तथा कटक जाकर, खीरचोरा गोपीनाथ जी तथा श्री साक्षीगोपाल जी के दर्शन किये और फिर वे श्री जगन्नाथ जी के दर्शन करने के लिए नीलाचल चले गये। वहां कुछ दिन रहने के पश्चात वे इस खानाकुल में आ गए। यहां उन्होंने श्री गोपीनाथ जी की सेवा का प्रकाश किया और यहीं रहना आरम्भ कर दिया।

एकबार श्री गोपीनाथ जी के पुजारी, श्री गोपीनाथ जी को भोग अर्पण करने के बाद, भोग को हटाकर, स्वयं स्नान करने चले गये। इसी बीच एक बिल्ली आकर प्रसाद को खा गई। ब्राह्मण पुजारी का घर मंदिर

के पास ही था तथा पुत्रों–पुत्रवधुओं, नातीयों, नातिनों आदि से भरा पूरा था। पुजारी की सब से छोटी पुत्रवधु घर की रसोई आदि का कार्य करती थी। उसी दिन वह पुत्रवधु, घर आये आत्मीयों को भोजन कराकर और अपने भोजन के लिए सारे पदार्थ एक पत्तल में रख कर, स्नान करने चली गई। पुत्रवधु द्वारा अपने लिए पत्तल में रखे हुए कुछ भोजन को वही बिल्ली खा गई। इस बात का पता वधु को न चला।

स्नान सारि बधु अन्न करिल भोजन।
भक्षमात्रे कृष्णप्रेम हइल उद्दीपन।।
क्षणे हांसे नाचे कांदे भूमे गड़ि जाय।
बातुल हइया दाण्डे दाण्डेते बेड़ाय।।

–श्रीश्री श्याश्मानन्द प्रकाश (१२/८१, ८२)

(अर्थात स्नान करके वधु ने ज्योंही अन्न खाया, उस में श्रीकृष्ण प्रेम उदित हो गया। वह कभी हंसने लगती, कभी रोने लगती, कभी नाचने लगती, कभी भूमि पर लोटने लगती और कभी पागलों की भांति बाहर रास्ते में घूमने लगती।)

वधु के ऐसे उन्माद के समान आचरण को देखकर, पुजारी ने यह अनुमान लगा कर कि उसको कोई भूत–प्रेत की बाधा थी, एक ओझा को बुलाकर पुत्रवधु की अनेक प्रकार से झाड़–फूंक करायी किन्तु तीन दिन से अधिक समय बीत जाने पर भी, उसकी हालत में कोई परिवर्तन होता न देखकर, ब्राह्मण देवता को बहुत चिन्ता लग गई।

एक दिन श्री अभिराम गोपाल ने, ब्राह्मण से उस की पुत्रवधु के स्वास्थ्य के विषय में जिज्ञासा प्रकट की तो ब्राह्मण ने उन को बताया कि उसकी पुत्रवधु को भूत बाधा थी। यह सुन कर श्री अभिराम गोपाल हंस पड़े और बोले कि, "तुम्हारे घर में श्राद्ध का चावल है। तुम उस चावल में अन्न उबालकर, वधु को खिलाओ। उसी से उस का पागलपन ठीक हो जायेगा और वह पहले जैसी स्वस्थ हो कर घर में ही रहेगी।"

श्री अभिराम गोपाल जी के निर्देशानुसार, ब्राह्मण ने प्रेतश्राद्ध चावल में अन्न उबाल कर, अपनी पुत्रवधु को खिलाये, जिससे वह आश्चर्यजनक रूप से अपनी उन्मत्तावस्था त्याग कर, पहले की भांति शांत, लज्जाशील अवस्था को प्राप्त हो गई। इस घटना से ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित हुआ और

परिवार सहित श्री अभिराम गोपाल के पास जाकर उसने इसके विषय में प्रश्न किया। श्री अभिराम गोपाल ने उत्तर दिया कि, "तुम्हारी पुत्रवधु पागल नहीं थी बल्कि किसी कारणवश उसे श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो गई थी।

प्रेत भक्ष्य तण्डुलेर अन्न जबे खाय।
कृष्ण प्रेमभक्ति जत तार हइते जाय।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१२/६६)

(अर्थात प्रेत श्राद्ध के चावल के अन्न को अगर कोई खा लेता है, तो उससे श्रीकृष्ण की भक्ति दूर भागती है।)

श्री अभिराम गोपाल के श्रीमुख से प्रेत भक्ष्य चावल के ऐसे विकार के विषय में सुनकर, ब्राह्मण महोदय चिन्तित हो उठे। यजमानी वृत्ति से उन को बहुत परिमाण में प्रेत भक्ष्य चावल प्राप्त होते थे, जिन्हे वे अपने घर ले आते थे और उसी से रसोई करके, सपरिवार भोजन करते थे। ब्राह्मण ने कातर होकर, श्री अभिराम गोपाल जी के शरण ग्रहण की। श्री अभिराम गोपाल जी ने उन ब्राह्मण महाशय से यजमानी वृत्ति छुड़वाकर उन को दीक्षा प्रदान की। इस घटना के कुछदिन पश्चात, श्री अभिराम गोपाल जी ने उन पुजारी को ही, श्री गोपीनाथ जी के सेवाइत अधिकारी के रूप में नियुक्त कर दिया।"

श्री श्यामानन्द प्रभु इस प्रकार श्रीकृष्ण कथा रसरंग में मत्त होकर उसदिन अपने भक्तों सहित वहीं रहे।

श्री भुवनमंगल द्वारा यज्ञ में ब्रह्माग्नि का प्रज्ज्वलन

श्री श्यामानन्द प्रभु के खानाकुल वास के समय, वहां के कायस्थ जाति के एक दीवान उन को स्वयं आकर भक्तिपूर्वक अपने घर ले गए। दीवान ने श्री श्यामानन्द प्रभु तथा उन के सभी भक्तों को अत्यन्त सत्कारपूर्वक प्रसाद का सेवन करा कर दक्षिणा आदि प्रदान की। उस समय उस दीवान के घर एक विशाल यज्ञ का अनुष्ठान चल रहा था। बहुत से शुद्धाचारी वैदिक ब्राह्मण यज्ञकार्य कर रहे थे। यह देख कर, श्रीश्यामानन्द प्रभु बहुत प्रसन्न हुए। यज्ञेश्वर श्री रामचन्द्र बोस नामक एक महाविज्ञ, कर्मकांडी पण्डित यज्ञ के मुख्य पुरोहित के रूप में, उस यज्ञ का संचालन कर रहे थे। यज्ञ कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित करने के लिये उन्होंने अपने सहयोगी ब्राह्मण को जब अग्नि लाने के लिए आदेश दिया, उस समय श्री

रसिकानन्द प्रभु के पराक्रमी शिष्य, श्री भुवनमंगल भी वहां उपस्थित थे। जब ब्राह्मण आग लाने के लिए चला गया तो श्री भुवनमंगल ने यज्ञेश्वर श्री रामचन्द्र से कहा, "आप के सहयोगी अग्नि लाने के लिये बाहर गये हैं। उस बाहर की अग्नि को क्या कीजियेगा? यज्ञ कार्य के लिए तो ब्रह्माग्नि द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है।"

श्री भुवनमंगल के उपरोक्त वचन सुन कर, यज्ञेश्वर श्री रामचन्द्र ने उत्तर दिया, "कलियुग में ब्रह्माग्नि की कहां प्राप्ति होगी।" ये वचन सुनकर, श्री भुवनमंगल ने उत्तर दिया, "जिनके पास ब्रह्म तेज है, उन्हीं के पास ब्रह्माग्नि मिलेगी। श्रीकृष्ण मंत्र सिद्ध होने पर सर्वसिद्धि होती है। ऐसे श्रीकृष्ण मंत्रसिद्धसाधक के पास ब्रह्माग्नि भी मिल जायेगी।" श्री भुवनमंगल के ऐसा कहने पर यज्ञेश्वर रामचन्द्र बोस अत्यन्त क्रोधित हो उठे और कहने लगे कि:–

बले सत्य बैष्णब यदि हबे तुमि।
ब्रह्म अग्नि देखि सत्य मानि तबे आमि।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१२/११२)

(अर्थात वे कहने लगे कि, "अगर तुम सचमुच वैष्णव हो तो ब्रह्माग्नि प्रज्ज्वलित करके दिखलाओ। मैं तब मानूंगा।")

कुपित श्री रामचन्द्र जी के वचन सुन कर, श्री भुवन मंगल क्रुद्ध नहीं हुए। हंसते हंसते उन्होंने श्री श्यामानन्द प्रभु के चरणारविंद का ध्यान किया और फूंक लगाकर यज्ञकुण्ड में ब्रह्माग्नि प्रज्ज्वलित कर दी।

शुनि भुबनमंगल शीघ्र चलि गेल।
फूंकमात्र ब्रह्म अग्नि प्रकाश करिल।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१२/११३)

(अर्थात श्री रामचन्द्र के वचन सुन कर श्री भुवनमंगल शीघ्र चले गए तथा फूंक लगा कर ही यज्ञ कुण्ड में ब्रह्माग्नि प्रज्ज्वलित कर दी।)"

श्री भुवनमंगल द्वारा ऐसी अलौकिक रीति से यज्ञकुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित कर देने पर, सभी उपस्थित ब्राह्मण दंग रह गये और उन को प्रणाम करते हुए, श्री नारायण मान कर उन की स्तुति करने लगे। उन लोगों ने करबद्ध होकर, श्रीभुवनमंगल से अपना शिष्यत्त्व प्रदान करने की प्रार्थना की। श्री भुवनमंगल ने उन की प्रार्थना सुन कर उत्तर दिया कि, "मुझे

शिष्य बनाने का अधिकार नहीं। मेरे परम गुरुदेव, श्री श्यामानन्द प्रभु यहीं विराजमान हैं। यदि आप चाहें तो उन से दीक्षा ग्रहण कर सकते हैं।"

श्री भुवनमंगल के मुख से, श्री श्यामानन्द प्रभुकी महिमा सुनकर वे ब्राह्मण सोचने लगे, "अनुशिष्य ही ऐसा तेजस्वी है, तो परम गुरुदेव कैसे परम तेजस्वी होंगे?" श्रीश्यामानन्द प्रभु के दर्शनों की लालसा से वे सभी ब्राह्मण, श्री भुवनमंगल के साथ, उनके पास गये। श्री श्यामानन्द प्रभु को दण्डवत प्रणाम करके ब्राह्मणों ने उन से दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की किन्तु जब श्री श्यामानन्द प्रभु को यह पता चला कि वे सब श्री गौरीदास पण्डित के शिष्य तथा अनुशिष्य थे तो उन्होंने उन ब्राह्मणों को दीक्षा नहीं दी। श्री श्यामानन्द प्रभु ने कहा कि, "क्योंकि तुम लोग श्री गौरीदास पण्डित ठाकुर के शिष्य हो, इसलिए हम और तुमलोग, एक ही घर के हैं। तुम लोग सदा श्री राधाकृष्ण का भजन करो। प्रभु निश्चय ही कृपा करके तुम्हारे मनों और प्राणों को प्रेम भक्ति से पूर्ण-पूर्ण कर देंगे।" श्री श्यामानन्द प्रभु के मुखारविंद से ये वाक्य सुन कर सभी ब्राह्मण बहुत ही प्रसन्न हुए और उन को दण्डवत प्रणाम करके, वे अपने अपने घरों को चले गये। कायस्थ दीवान, सारी घटना को आद्योपान्त देखकर, श्री श्यामानन्द प्रभु की, ईश्वर तुल्य भक्ति करने लगे। खानाकुल में बहुत से लोगों को, श्री हरिनाम दीक्षा प्रदान करके, श्रीश्यामानन्द प्रभु ने उन का भी उद्धार किया।

श्री श्यामानन्द प्रभु खानाकुल से चिंचड़ा (वर्तमान नाम चुंचड़ा) चले गए। यहां भी एक धर्मपरायण कायस्थ उन को अपने घर ले गये और भक्तों सहित उनको बहुत प्रेम तथा यत्नपूर्वक, प्रसाद का सेवन कराया। दूसरे दिन सबेरे, श्री श्यामानन्द प्रभु ने श्री गंगा जी में स्नान करके, भक्तों को रसोई प्रस्तुत करने का आदेश दिया तथा उस अंचल के सभी वैष्णवों तथा ब्राह्मणों को निमंत्रित करके, दोपहर में एक महोत्सव आयोजित किया।

चिंचड़ा से श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिक मुरारी तथा अन्य भक्तों के साथ, चंदननगर आये। चंदननगर के बुड़ाशिवतला नामक महापुण्यमय स्थान पर, वे अपने भक्तों सहित कुछदिन तक ठहरे। ईसवी सन् १६२८ में चंदननगर में, गंगा जी के तट पर उन्होंने श्री राधागोविंदजी की सेवा का

प्रकाश किया। यहां गंगा, यमुना व सरस्वती के प्रवाह स्थान "मुक्त त्रिवेणी" पर उन्होंने चौबीस प्रहरीय महामहोत्सव प्रारम्भ किया। गंगाजी के दोनों तीरों पर विद्यमान सभी श्रीपाटों के वैष्णवों ने, महोत्सव में अपना अपना योगदान दिया। श्री रसिकानन्द प्रभु ने सभी वैष्णवों के स्वागत और परिचर्या का ऐसा कुशल प्रबंध किया था, जिससे सन्तुष्ट होकर सभी वैष्णवों ने श्री श्यामानन्द प्रभु तथा श्री रसिकानन्द प्रभु का यशोगान करते हुए, महोत्सव स्थल से प्रस्थान किया।

चंदननगर के बुड़ाशिवतला में गंगाजी के तीर पर विराजमान, श्री राधागोविंदजी के मंदिर के निकट ही, श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में रहने वाले, श्री रसिकानन्द प्रभु के वंशज गोस्वामियों की समाधियां बनाई जाती थीं किन्तु लगभग पचास वर्ष पहले, यह स्थान श्री गंगा जी के गर्भ में समा गया।

,चंदननगर से श्री श्यामानन्द प्रभु, अपने भक्तों के साथ मीरगोदा तथा श्री रसिकानन्द प्रभु, श्रीपाट गोपीवल्लभपुर चले गए।

श्री श्यामानन्द प्रभु के मीरगोदा में उपस्थित होने पर, वहां पर आनन्द की लहरी व्याप्त हो गई। उनके दर्शन के लिए नित्य हज़ारों व्यक्तियों का आगमन होने लगा। बहुत संख्या में धनी–दरिद्र, उच्च–नीच, सभी जनसाधारण आकर श्री श्यामानन्द प्रभु से दीक्षा ग्रहण करने लगे। वहां पर कुछ दिन अवस्थान करने के उपरान्त, वहाँ एक अधिकारी को नियुक्त करके, श्री श्यामानन्द प्रभु बसन्तिया चले गये।

बसन्तिया में श्री गोकुलचन्द्र जी के अधिकारी आकर श्री श्यामानन्द प्रभु को अत्यन्त समारोहपूर्वक ले गये। श्रीगोकुलचन्द्र जी के अपरूप सौंदर्य का अपने नेत्रों के द्वारा पान करते हुए, श्री श्यामानन्द प्रभु ने भक्तगणों के साथ नामसंकीर्तन प्रारम्भ किया। नामसंकीर्तन में उनके भावविह्वल मधुर नृत्य का दर्शन करके सभी मोहित हो गये। भक्तगणों के साथ, श्री गोकुलचन्द्र जी के अमृतोधिक स्वादिष्ट प्रसाद का सेवन करने के उपरान्त श्री श्यामानन्द प्रभु जब सुख–निद्रा में मग्न हो गये, तब श्री गोकुलचन्द्र जी ने उनको स्वप्न में दर्शन देकर कहा :–

"गोचारणे गोपगण संगे जाइ आमि।
बेला अस्त हैले आसि मन्दिरे आपनि।।

क्षुधाते आकुल तनु निद्रा नाहि हय।
बहु कष्ट पाइ आमि कहि सुनिश्चयं।।

—श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (१६/१२, १३)

(अर्थात गोपगणों के साथ गोचारण के लिये जाकर शाम को अपने मन्दिर में लौटता हूँ। भूख से व्याकुल होकर मुझे नींद नहीं आती है। मैं तुमसे निश्चितरूप से कहता हूँ, मुझे बहुत ही कष्ट हो रहा है।)

स्वप्न दर्शन करके, श्री श्यामानन्द प्रभु की निद्रा भंग हो गई। श्री गोकुलचन्द्र जी के वाक्य का स्मरण करके, वे अत्यन्त व्यथित हुये। तत्क्षण ही अधिकारी को बुलाकर श्री गोकुलचन्द्र जी के अष्टयाम भोग के लिये विशेष प्रबन्ध करने के लिये उसको कठोर आदेश प्रदान किया। श्री श्यामानन्द प्रभु ने अपने भजन के प्रभाव से भगवान तक को कितना निजजन बना लिया था, यह घटना उस का ही प्रमाण है। भावमार्ग की सेवा में, भगवान को भी मनुष्य की भांति भूख लगती है, यहं घटना, उसका एक उज्ज्वल दृष्टान्त है।

बसन्तिया से श्री श्यामानन्द प्रभु के हिजली गमन करने पर, हिजली के अधिपति, श्री रसिक मुरारी की सहधर्मिणी श्रीमती श्यामदासी के पितृव्य आकर उनको अपने प्रासाद में ले गये एवं सपरिवार उनकी सेवा में लग गये। हिजली से श्री श्यामानन्द प्रभु ने मयूरभंज होकर, श्यामसुन्दरपुर को प्रस्थान किया।

व्याघ्र आरोही मुसलमान फकीर का आगमन
(ईसवी सन 1628)

श्री रसिकानन्द प्रभु के श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में आवास के समय, बसन्तिया निवासी मछन्द्रसा नामक एक मुसलमान फकीर, गोपीवल्लभपुर आये। ये तेजस्वी फकीर अपनी सिद्धिक्षमता का प्रदर्शन करते हुए, एक शेर की पीठ पर सवार हो कर जब गोपीवल्लभपुर आ रहे थे तो श्री रसिकानन्द प्रभु को उन के एक सेवक ने इस विषय में सूचना दी।

श्री रसिकानन्द प्रभु ने अनुभव किया कि फकीर अभिमानवश, अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करने के लिए ही, उन के पास आ रहे थे। उन्होंने अपने शिष्य, श्री भुवनमंगल को आज्ञा दी कि, "हे भुवनमंगल! तुम तुरन्त जाकर

नागरी उद्धव को मेरा आदेश सुनाओ कि वे यथायोग्य सत्कार सहित, उस फकीर को मेरे पास ले आयें।" नागरी उद्धव उस समय एक टूटी हुई दीवार पर बैठ कर अपने दांतों का मार्जन कर रहे थे। श्री भुवनमंगल ने उन के पास जाकर, श्री रसिकानन्द प्रभु का आदेश, अविकृत रूप से सुना दिया। श्री नागरी उद्धव, श्री रसिकानन्द प्रभु के आदेश के वास्तविक तात्पर्य को समझ गए। उन्होंने दातुन को वहीं जमीन में गाड़ कर, उस टूटी हुई दीवार को यह आदेश दियाः–

कांथे बसि दन्त घषे नागरी उद्धव।
बले कांथ चल फकीर आनि जाब।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश (११/३०)

(अर्थात नागरी उद्धव दीवार पर बैठकर, अपने दांतों का मार्जन कर रहे थे। उन्होंने उस दीवार को आदेश दे दिया कि, "दीवार! चल, हम उस फकीर को लेने चलें।")

सभी उपस्थित लोगों को विस्मित करते हुए उस टूटी हुई दीवार ने चलना प्रारम्भ कर दिया और द्रुत गति से उस व्याघ्रारोही फकीर के सम्मुख जा उपस्थित हुई। टूटी हुई दीवार पर बैठ कर, तीव्र गति से वहां पहुंचे नागरी उद्धव के दर्शन करके, फकीर मछन्द्रसा के अनुचर ने उन से कहा, "फकीर साहिब! श्री रसिकानन्द प्रभु के एक शिष्य, टूटी हुई दीवार पर बैठकर, आपका स्वागत करके ले जाने के लिये आए हैं।" यह सुन कर मछन्द्रसा विस्मित हो उठे।

शुनि मछन्द्रसाहा कहे शिष्ये एत गुण।
गुरु किबा नाहि हबे स्बयं नारायण।।

–श्रीश्री श्यामानन्द प्रकाश(११/३६)

(अर्थात सुनकर मछन्द्रसा ने कहा यदि शिष्य में ही इतने गुण हैं, तो उन के गुरु क्या साक्षात नारायण नहीं होंगे?)

फकीर मछन्द्रसा तुरन्त व्याघ्र की पीठ से उतर कर, नागरी उद्धव के साथ, श्री रसिकानन्द प्रभु के पास गये और उन की चरण वन्दना की। उन्होंने बहुत सी उपहार सामग्री श्री रसिकानन्द प्रभु को प्रदान करके, उन के चरणों का आश्रय लिया।

❖

द्वाविंश अध्याय

श्री श्यामानन्द प्रभु का तिरोभाव

श्री श्यामानन्द प्रभु मीरगोदा से श्री श्यामसुन्दरपुर आकर, श्रीकृष्ण कथा रस में निमग्न हो गये। इन्हीं दिनों, ईसवी सन १६२६ के फाल्गुन मास की शुक्ल त्रयोदशी को, श्रीपाट अम्बिका में श्रील हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर जी का तिरोभाव हो गया। अपने गुरुदेव के अप्रकट होने का समाचार पाकर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने अत्यन्त मार्मिक पीड़ा अनुभव की। श्री गुरुदेव की अहैतुकी कृपा का स्मरण करके, उन की दोनों आंखों से आंसुओं की अविराम धारा बहने लगी। उन्होंने तुरन्त, श्री रसिकानन्द प्रभु को बुलाने के लिए, एक भक्त को श्रीपाट गोपीवल्लभपुर भेज दिया। श्री रसिकानन्द प्रभु को जब अपने परम गुरुदेव के अप्रकट होने का दुःखद समाचार मिला तो उन की विरह में कातर होकर, विरहविधुर चित्त लेकर, वे शीघ्र श्री श्यामसुन्दरपुर पहुंचे। श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु को देखते ही गुरुविरह से व्याकुल होकर, रुदन करते हुए बोलेः–

आर ना रहिब आमि अबनी मण्डले।
हृदयानन्द विच्छेद अन्तर बिदरे।।

–श्रीश्री रसिक मंगल (प/१३/७)

(अर्थात गुरुदेव हृदयानंन्द प्रभु के विच्छेद से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। इसलिये मैं और अधिक इस भूमण्डल पर नहीं रहूंगा।)

श्री श्यामानन्द प्रभु द्वारा भक्तों के सम्मुख ऐसा करुण विलाप करने पर, श्रीरसिकानन्दादि भक्तगण उन की विरहव्याकुल अवस्था देख कर, बहुत ही दुःखी हुए। श्री श्यामानन्द प्रभु के आदेश पर, श्री हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर जी का प्रथम विरह महोत्सव, श्री श्यामसुन्दरपुर में ही समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। श्री रसिकानन्द प्रभु ने स्वयं आग्रही होकर इस महोत्सव को कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया।

श्रील हृदय चैतन्य प्रभु के विरह उत्सव के उपरान्त, श्री श्यामानन्द प्रभु गोविंदपुर चले गए। वे अभी वहीं थे कि उन को अपने प्रिय शिष्य, दामोदर के अप्रकट होने का दुःखद समाचार मिला, जिसे सुनकर वे बहुत ही दुःखी हुए और श्री रसिकानन्द प्रभु से कहने लगे कि, "रसिक! मुझे लग रहा है कि दामोदर ने मेरा मार्ग प्रदर्शन किया है। अतः मुझे शीघ्र ही इस संसार का त्याग करना होगा।" उन्होंने दामोदर का विरह उत्सव गोविन्दपुर में ही सम्पन्न किया। इन्हीं दिनों, श्री हृदय चैतन्य अधिकारी ठाकुर जी के दूसरे विरह महोत्सव की तिथि आ गई। इस महोत्सव में योगदान के लिये श्यामानन्दी गोष्ठी के सभी शिष्य–भक्तों का आह्वान किया गया। श्री रसिकानन्द प्रभु के अथक प्रयत्नों से, यह महोत्सव भी अत्यन्त सुचारु रूप से सम्पन्न हुआ।

महोत्सव के उपरान्त श्री श्यामानन्द प्रभु ने, श्यामानन्दी गोष्ठी के समस्त भक्तों के सम्मुख, श्री रसिकानन्द प्रभु को अपने पास बुला कर कहा कि, "पहले मुझे स्वयं भगवान ने आदेश दिया कि रसिक मुरारी को साथ लेकर, समस्त जीवों का परित्राण करो। उस आदेश को मान कर मैंने उत्कल में श्रीकृष्ण भक्ति का प्रचार किया और सभी जीवों का उद्धार किया। अब समस्त उत्कलदेश, श्रीकृष्ण प्रेम के रंग में रंग गया है। तुम कुछ दिन इन लोगों के साथ विहार करो।"

कृष्णेर हइल आज्ञा आमारे जाइते।
निश्चे आमि आर ना रहिब पृथिबीते।।

–श्रीश्री रसिक मंगल (प/१३/२४)

(अर्थात अब मुझे पृथ्वी छोड़कर जाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण का आदेश मिल गया है। अतः अब मैं निश्चित रूप से, और अधिक समय इस पृथ्वी पर नहीं रहूंगा।)"

इस के पश्चात श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री रसिकानन्द प्रभु व अन्य भक्तों को साथ लेकर, नृसिंहपुर में उद्दण्डराय के घर गये। यहां निवास करने के दिनों में, श्री श्यामानन्द प्रभु अकस्मात रोगग्रस्त होकर, अत्यन्त पीड़ित हो गये। उनको कष्ट में देख कर सभी भक्तगण भी नृसिंहपुर में रहने लग गये। एक एक कर के, चार मास बीत गए किन्तु श्री श्यामानन्द

प्रभु के कष्ट में तिलभर भी कमी नहीं हुई। देश के प्रख्यात वैद्य उन की चिकित्सा करने लगे। श्री रसिकानन्द प्रभु भी आहार तथा निद्रा का त्याग करके, दिन रात उन की सेवा करने लगे। चिकित्सा तथा सेवा के बाबजूद, व्याधि कम होने के स्थान पर धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त होती गई। एक दिन सभी भक्तों को बुला कर, श्री श्यामानन्द प्रभु इस प्रकार कहने लगे :-

कृष्ण आज्ञा आछे आमि जाइब निश्चय।
मिथ्या जल्न ना करिह शुनह सबाय।।
संकीर्तन आरम्भ कराह निशि दिने।
निरबधि कृष्ण कथा कर साधुगणे।।
बीणा, बेनु, रबाब, मुरली नानायन्त्र।
एइ औषध इथे कहिलाम तत्त्व।।

-श्रीश्री रसिक मंगल (प १३/३१-३३)

(अर्थात श्रीकृष्ण का आदेश हो चुका है, इसलिये मैं निश्चित रूप से देह का त्याग कर दूंगा। तुम लोग और मिथ्या प्रयास न करके मेरे वाक्यों को सुनो। दिवा-रात्रि व्यापी नाम संकीर्तन प्रारम्भ करो, निरन्तर साधुगण श्रीकृष्ण कथा का कीर्तन करें। वीणा, वेणु, रबाब, मुरली आदि वाद्ययन्त्रों की झंकार करो। इस समय यही मेरी औषधि है। मैंने तुम लोगों को सही तत्त्व बता दिया है।)

श्री श्यामानन्द प्रभु ने जब अप्रकट होने के विषय में इस प्रकार संकेत दे दिया तो, श्रीरसिकानन्द प्रभु अत्यन्त दुःखी होकर, उनसे बोले, "हे प्रभु! आप मुझे वृन्दावन जाने का आदेश प्रदान कर दीजिये। यदि आप सचमुच इस लोक को छोड़कर चले जायेंगे तो आप से विच्छेद हो जाने पर मैं किस प्रकार प्राणों को धारण कर सकूंगा?"

श्री रसिकानन्द प्रभु जब इस प्रकार अत्यन्त व्याकुल हो उठे तो श्रीश्यामानन्द प्रभु ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक उनसे कहा, "रसिक! उत्कल में श्यामानन्दी गोष्ठी के जितने भी भक्त हैं, उनको लेकर तुम कुछ दिन और विहार करो। उत्कल में रहते हुए भी, तुम अपने मन में सदा यही समझते रहना कि तुम वृंदावन में ही रह रहे हो। श्रीकृष्ण भक्ति का प्रचार करो, जिससे सारा संसार कृष्ण भक्ति प्रेम में डूब जाये। घर-घर में जिस किसी

प्रकार भी साधु सेवा सम्भव हो सके, तुम इसके प्रति विशेष ध्यान देना। उत्कल के सभी जीवों को दुर्लभ प्रेम भक्ति प्रदान करो।"

इस प्रकार सभी उत्कल वासी जीवों को प्रेम भक्ति प्रदान करके, पालन करने का आदेश देकर, श्री श्यामानन्द प्रभु ने, कृपावृष्टि करते हुए, श्री रसिकानन्द प्रभु के मस्तक पर अपने चरण स्थापित करके, उन मैं शक्ति का संचार किया। इसके बाद उन्होंने सहस्रों शिष्यों के सामने, श्री रसिकानन्द प्रभु के सिर पर वस्त्र से पगड़ी बांधकर और उनके ललाट पर अपने हाथ से तिलक रचना करके, उनको समस्त श्यामानन्दी गोष्ठी के महन्त के रूप में अभिषिक्त किया। इसके पश्चात उन्होंने उपस्थित भक्तों से कहा कि:–

आपनि जुड़िया कर सबारे कहिला।
श्यामानन्द मण्डलीते टीका से सारिला।।
रसिकेर आज्ञाते थाकिबे सर्बजन।
सबाकारे रसिकेन्द्र करिबे पालन।।
रसिकेर आज्ञा केह ना करिबे भंग।
रसिक बिमुख जे से नहे आमा संग।।

–श्रीश्री रसिक मंगल (प/१३–४४–४६)

(अर्थात वे हाथ जोड़कर सबसे बोले, "मैंने श्यामानन्दी गोष्ठी की महंताई का टीका (तिलक) श्री रसिक मुरारी को दिया है। सभी लोग श्री रसिक मुरारी की आज्ञा मान कर चलें। श्री रसिक मुरारी जी भी महन्त के रूप में सबका पालन करेंगे। कोई इनकी आज्ञा का उल्लंघन न करे। श्री रसिक मुरारी जी, जिस के विमुख हैं, मैं भी उस के विमुख हूँ।")

ईसवी सन १६३० के ज्येष्ठमास की शुक्लपक्षीय पंचमी तिथि से गोविंदपुर में द्वादश दिवसीय दण्ड महोत्सव यथाविधि अनुष्ठित होने लगा। सभी भक्तगण इस महोत्सव की परिचालना करने लगे क्योंकि उन दिनों, श्री रसिकानन्द प्रभु स्वयं नृसिंहपुर में श्री श्यामानन्द प्रभु की सेवा में व्यस्त थे। गोविंदपुर में चलरहे दण्डमहोत्सव के दौरान ही, अकस्मात श्री श्यामानन्द प्रभु की पीड़ा में बहुत वृद्धि हो गई। उन की शोचनीय अवस्था देखकर, सभी उद्विग्न हो उठे। श्री श्यामानन्द प्रभु के निर्देशानुसार, श्री

रसिकानन्द प्रभु तथा अन्य भक्तों ने उच्च स्वर से श्री हरिनाम संकीर्तन आरम्भ कर दिया। नाम कीर्तन की इस ध्वनि से नृसिंहपुर के धरती आकाश गूंज उठे। इसी ध्वनि के बीच, श्री श्यामानन्द प्रभु श्रीकृष्ण के सान्निध्य में चले गये।

पनरश बायान्न शकाब्द से प्रमाण।
कृष्णेर सान्निधे प्रभु करिला पयाण।।
देव स्नानयात्रा पूर्णिमार शेषे।
कृष्ण प्रतिपदा तिथि आषाढ़ प्रबेशे।।
हरिध्बनि शंख्रध्बनी संकीर्तन ध्बनी।
गगन मण्डले प्रबेशिला जय बाणी।।
हेनइ समये प्रभु हइला अन्तर्द्धान।
शुनिया मण्डली सबार हरिला ज्ञान।।

—श्रीश्री रसिक मंगल (प/१३/४६—५२)

(अर्थात शकाब्द १५५२ में श्री श्यामानन्द प्रभु, श्रीकृष्ण के सान्निध्य में चले गये। देवस्नान पूर्णिमा के अन्त में, कृष्ण पक्षीय प्रतिपदा तिथि को, आषाढ़ मास के आगमन पर, जब हरिध्वनि, शंखध्वनि तथा भगवान की जय जयकार ध्वनि ने गगन मण्डल में प्रवेश किया, उसी समय श्री श्यामानन्द प्रभु अप्रकट हुए। 'श्री श्यामानन्द प्रभु अप्रकट होगये' यह सुन कर सभी लोग मूर्छित हो गये।)

ईसवी सन १६३० में ज्येष्ठ मास की संक्रान्ति तथा पूर्णिमा के अन्त में, प्रतिपदा तिथि को, श्री श्यामानन्द प्रभु, श्री नृसिंहपुर में अप्रकट हुए। उस समय श्री रसिकानन्द प्रभु मूर्छित होकर गिर पड़े। उपस्थित भक्तों के भरसक प्रयत्नों के पश्चात उन की संज्ञा लौटी। उन की आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली, जिससे उन का वक्षःस्थल प्लावित होने लगा। अपने प्रति श्री श्यामानन्द प्रभु के अपार स्नेह का स्मरण करके, श्रीरसिकानन्द प्रभु करुण विलाप किये जा रहे थे, जिससे पाषाण हृदय भी द्रवित होने लगे।

श्रीरसिकानन्द प्रभु विलाप करते हुए कहने लगे "जब मैं अठारह वर्ष का था, उस समय श्री श्यामानन्द प्रभु ने कृपा करके मुझे दर्शन दिये थे। मुझे बीस वर्ष उन की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ लेकिन वे आज

मुझे अकेला छोड़कर अपने धाम को चले गए। जिन के स्पर्श से, श्रीकृष्ण के चरणारविंद की प्रेम भक्ति का उदय हुआ, जिनके दर्शन मात्र से, सभी के मन पवित्र हो गये, जिनकी कृपा से अविद्या खण्डित हुई, भवबंधन का विमोचन होगया और हूण, पुलिंद, म्लेच्छ आदि अपने दुष्कर्मों को त्याग कर, श्रीकृष्ण प्रेम में उन्मत्त हो गये, ऐसे कृपामय प्रभु, सब को छोड़कर चले गए। अब ये आंखें, उनके दर्शन नहीं कर सकेंगी। उन के बिना यह संसार मेरे लिये शून्य हो गया है। अब कौन वात्सल्य पूर्वक मुझ पर दया बरसायेगा और किसके साथ मैं उन्मत्त होकर, देश–देशान्तर में भ्रमण करूंगा? किसके साथ अब मैं तीर्थाटन करूंगा और कौन मुझे अपने साथ वृन्दावन ले जाएगा? अहो! मैं उनके चरणारविंद के दर्शनों से वंचित हो गया।" यों कहकर, श्री रसिकानन्द प्रभु फिर मूर्छित हो कर भूमि पर गिर पड़े।

श्री श्यामानन्द प्रभु के अप्रकट होने का दुःखद समाचार, आग की भांति, समूचे उत्कल में फैल गया। श्यामानन्दी गोष्ठी के सहस्रों भक्त नृसिंहपुर में पहुंचने लगे। श्री श्यामानन्द प्रभु के विच्छेद के कारण उपजी विरह की अभिव्यक्ति से नृसिंहपुर का वातावरण हृदयविदारक तथा मर्मस्पर्शी हो उठा। कोई "हा श्यामानन्द–हा श्यामानन्द" कहते हुए भूमि पर लोटने लगे तो किसी के आंसुओं से वक्ष प्लावित होकर परिधेय वसन भी सिक्त होने लगे। बहुत से लोग मूर्छित हो होकर भूमि पर गिरने लगे। भक्तगणों की सम्मति से नृसिंहपुर तथा श्रीधाम वृन्दावन में, श्री श्यामानन्द प्रभु के तिरोभाव आसनों (समाधियों) की स्थापना की गई। परवर्त्ती काल में इस नृसिंहपुर का नाम परिवर्तित हो कर कानपुर हो गया।

❖

परिशिष्ट

श्रीश्रीश्यामानन्द प्रभुजी की स्मरण प्रार्थना

परमदयाल पतितपावन प्रभु श्यामानन्द
पतितपावन अधमतारन प्रभु श्यामानन्द
अदोषदरशी (मेरे) प्रभु श्यामानन्द
प्रेमदाता नामदाता प्रभु श्यामानन्द
गतिदाता परित्राता प्रभु श्यामानन्द
प्रेम से पागल अपना खोया प्रभु श्यामानन्द
नाम प्रेम से विश्व भरा प्रभु श्यामानन्द
चाण्डाल तक गोद में लिया प्रभु श्यामानन्द
निर्विचार में गोद में लिया प्रभु श्यामानन्द
भागते पतितों के पास प्रभु श्यामानन्द
अयाचित कृपाकारी प्रभु श्यामानन्द
तृषित के ताप तृष्णाहारी प्रभु श्यामानन्द
दयाल के शिरोमणि प्रभु श्यामानन्द
प्रेम के खान पारसमणि प्रभु श्यामानन्द
नयनाभिराम आनन्द धाम प्रभु श्यामानन्द
जगद्‌बन्धु जगद्‌गुरु प्रभु श्यामानन्द
मरमी दरदी बन्धु प्रभु श्यामानन्द
जीवन मरण में गति प्रभु श्यामानन्द
रसिकानन्द के प्रभु प्रभु श्यामानन्द
उद्‌दण्ड प्रतापहारी प्रभु श्यामानन्द
दीनजन पावन प्रभु श्यामानन्द
श्रीजीव के आदर के धन प्रभु श्यामानन्द
श्रीनिवास के सम प्राण प्रभु श्यामानन्द
नरोत्तम के सम प्राण प्रभु श्यामानन्द
श्रीअद्वैत के आवेश प्रभु श्यामानन्द
मैं श्यामानन्द का दास (मेरे) प्रभु श्यामानन्द

श्रीश्यामानन्द प्रभु का ध्यान

नवद्वीपे योगपीठे – कमल वायव्यदले।
किंजल्कदलमध्यस्थ–रत्न–सिंहासनस्थितम्।
श्यामानन्द प्रभु ध्यायेत् गौरप्रियाप्रियं मुदा।।

श्रीकनकमंजरी का ध्यान

वृन्दावने योगपीठे कमलवायव्य दले श्रीकनकमंजरी ध्यायेत्
किंजल्कदल मध्यस्थ रत्न सिंहासनस्थिता।
श्यामप्रिया–प्रिया सेव्या माधुर्यगुणमण्डिता।।
कनकमंजरी सेव्या राधादास्य–सुखेच्छया।।

श्रीकनकमंजरी का मन्त्र

श्रीं कमनमंजर्यै स्वाहा।

श्रीकनकमंजरी की गायत्री

श्रीं कनकमंजर्यै विद्महे, श्रीराधाप्रेमरुपायै धीमहि
तन्नो कनकमंजरी प्रचोदयात्।

❖

श्रीनरहरि चक्रवर्ती विरचित श्रीश्रीश्यामानन्द प्रभु का सूचक कीर्त्तन

"ओ मोर पराणवन्धु ! श्यामानन्द सुख सिन्धु,
सदाई विह्वल गोरा गुणे।
गृह परिहरि दूरे, आनन्दे अम्बिकापुरे,
आइलेन प्रभुर भवने।।
हृदयचैतन्ये देखि, अझरे झरये आंखि,
भूमिते पड़ये लोटाइया।
शिरे धरि से चरण, करि आत्मसमर्पण,
एक भिते रहे दांड़ाइया।।
देखि श्यामानन्द रीत, ठाकुर करिया प्रीत,
निकटे राखिया शिष्य कैल।
करि अनुग्रह अति, शिखाइया भक्तिरीति,
निताइ चैतन्ये समर्पित।।
कथोक दिवस परे, पाठाइते ब्रजपुरे,
श्यामानन्द व्याकुल हइला।
प्रभु निताइ चैतन्य, श्यामानन्दे केला धन्य,
यात्राकाले आज्ञामाला दिला।।
श्यामानन्द पथे चले, भासये आंखेर जले,
सोउंरिया प्रभुर गुणगण,
एकाकी कथोक दिने, प्रवेशिला ब्रजभूमे।
बहु तीर्थ करिया भ्रमण।।
देखिया श्रीवृन्दारण्य आपने मानये धन्य,
आनन्दे धरिते नारे थेहा।
सिक्त हइया नेत्रजले, लोटाय धरणीतले,
विपुल पुलकमय देहा।।
गिया गिरि गोवर्द्धने, कैल ये आछिल मने,
श्रीराधाकुण्डेर तटे आसि।

प्रेमाय विह्वल हैला, देखि अनुग्रहण कैला,
श्रीदास गोंसाइ गुणराशि।।
श्रीजीव निकटे गेला, निज परिचय दिला,
तेंहो कृपा कैला वात्सल्येते।
येवा मनोरथ छिल, ताहा येन पूर्ण हैल,
हृदय चैतन्य कृपा हैते।।
राधिका ललिता आदि, कैला कृपा अवधि
याहा हैते पूर्ण सर्व काम।
ललिता, श्यामानन्द करि, विशाखा, कनकमंजरी,
राधिके नूपुर, विग्रह दिला दान।।
भ्रमिला द्वादश वन, कैला ग्रन्थ अध्ययन,
हैला अति निपुण सेवाय।
श्रीगौड़, अम्बिका हैया, रहिला उत्कले गिया,
श्रीगोस्वामीगणेर आज्ञाय।।
पाषण्डी असुरगणे, माताइल गोरागुणे,
कारे वा ना – कैल भक्तिदान।
अधम आनन्दे भासे, श्यामानन्द कृपालेशे,
केवा ना पाइल परित्राण।।
के जानिवे तार तत्त्व, सदा संकीर्तने मत्त,
अवनीते विदित महिमा।
निज परिकर संगे, विलसे परम रंगे,
उत्कले सुखेर नाइ सीमा।।
ये वारेक देखे तांरे, से धृति धरिते नारे,
किवा से मूरति मनोहर।
नरहरि कहे कभु, रसिकानन्देर प्रभु,
हवे कि ए नयन गोचर।।

❖

श्री श्यामानन्द प्रभु केवल एक महान धर्म प्रचारक, परम वैष्णव और महापुरुष न होकर, सुप्रसिद्ध गायक, बंसीवादक, संगीतज्ञ एवं ख्यातिप्राप्त कवि भी थे। कीर्तन के रानीहाटी या रेनेटी सुर, इन्हीं की अभिनव सृष्टि हैं। आजतक उड़ीसा के घर–घर में रेनेटी सुर में, उत्कली भाषा में जो नाना प्रकार के पद गाये जाते हैं, उनके स्रष्टा भी श्री श्यामानन्द प्रभु ही थे। बंगला तथा उड़िया भाषा में उन के बहुत से सुन्दर एवं भावपूर्ण पद देखने को मिलते हैं; किन्तु क्योंकि ये बंगला तथा उड़िया भाषा में हैं, इसलिए उन का उपयोग हिन्दी के इस ग्रन्थ में नहीं किया गया है। उन उन बंगला एवं उड़िया पदों के साथ–साथ उन का हिन्दी भावानुवाद अलग से प्रकाशित किया जायेगा।

श्रीरसिकानंद प्रभु वंशावतंस, तृतीय अधस्तन पुरुष, श्रीमद् रासानंद देव गोस्वामी रचित श्रीश्रीश्यामानंदाष्टकम्

शरदिन्दु निन्दि सुकोमल वदनं। अतिसुन्दर शरीर विद्युतवरणं।।
गति अति मन्थर गजपति निन्दं। तं प्रणमामि च श्रीश्रीश्यामानन्दं।।
नासाग्रेनूपुराकृति तिलक शोभां। कण्ठे विलम्बित श्रीतुलसी मालिकां।।
प्रेमे ढुलु ढुलु नयन युगसान्द्रं। तं प्रणमामि च श्रीश्रीश्यामानन्दं।।
काम कार्मुकनिन्दी भ्रुयुग सुन्दरं। विम्बारुण विड़म्बित चारू अधरं।।
भाले कृपाप्राप्त उज्जल बिन्दु चन्द्रं। तं प्रणमामि च श्रीश्रीश्यामानन्दं।।
उद्दण्ड नृत्य सुबाहुयुग वलितं। स्फुरदंगे पुलक कदम्ब पुष्पितं।।
नयन कमलयुगे अश्रु गलितं। तं प्रणमामि च श्रीश्रीश्यामानन्दं।।
हृदयचैतन्यदेव कृपा भूषितं। श्रीजीव गोस्वामीना शिक्षाशोधितं।।
साक्षात् श्रीराधाया कृपातिरेक प्राप्तं। तं प्रणमामि च श्रीश्रीश्यामानन्दं।।
करयुग पंकज कोमल ललितं। ललित दशचन्द्र जिनि नखराजितं।।
कनक अम्बरे शोभित कटितटं। तं प्रणमामि च श्रीश्रीश्यामानन्दं।।
श्रीसीतानाथाद्वैतावेशावतारकं। श्रीनिवास नरोत्तम समप्राणकम्।।
गौड़े निर्मल सद्भक्ति प्रचारवन्तं। तं प्रणमामि च श्रीश्रीश्यामानन्दं।।
दीनजन पावन पतितोद्धारकं। आचण्डाल जीवचय गति दायकम्।।
अखिल लोक पावन चरणारविन्दं। तं प्रणमामि च श्रीश्रीश्यामानन्दं।।
प्रातरुत्थाय यो पठेन्नित्यं श्यामानन्दाष्टकम्। कृष्ण भक्तिः भवेत् तस्य लभेत् ब्रजेबास सदा।।

❖

श्री श्री रसिकानंद प्रभु विरचित श्री श्री श्यामानन्द चतुःश्लोकी

सांद्रानंदनिधि : प्रसादजलधि स्त्रैलोक्य–शोभानिधिः
पूर्णप्रेम रसामृताश्रयनिधिः सौभाग्य लक्ष्मीनिधिः।
सन्तप्तैकमहानिधिर्द्रवनिधिः कारून्य लीलानिधिः।
श्यामानन्द– कलानिधिर्विजयते माधुर्यसम्पन्निधिः।।१।।
यं लोका भुवि कीर्त्तयन्ति हृदयानन्दस्य शिष्यं प्रियं।
साक्षाच्छ्रीसुवलस्य यं भगवतः प्रेष्ठानुशिष्यं तथा।
स श्रीमान रसिकेन्द्र मस्तकमणिश्चित्ते ममाहर्निशं।
श्रीराधाप्रिय– नर्म्ममर्म्मसु रुचिं सम्पादयन् भासताम्।।२।।
श्यामेनैव रसेन यस्त्रिजगतिमानन्दयत्युल्लसन्।
श्यामानन्द इतिरयन्ति कवयो यं कार्ष्णराजं भुवि।
संगुप्त–व्रजसुन्दरेन्द्र–रमणी–भाव–प्रकाशोज्जलं।
तं वन्दे जगतां गुरुं सकरूणं श्री दुरिकानन्दनम्।।३।।
चेतश्चेद् विरलप्रचारमधुर – प्रेमामृतास्वादने
कामो मार्गणया विना यदि सुखाद् भावाख्य–चिन्तामणौ।
चेद्रागानुग–भक्ति सम्पदि रूचिः सर्व्वात्मभावात्तदा
श्यामानन्द–सुपर्व पादपमिमं नित्यं भजध्वं जनाः।।४।।

भावानुवाद :–

साधु सेवा, सत्सम्प्रदाय प्रवर्त्तन, प्रचारजनित निविड़ आनन्द के सत्पात्र, सदाचार जनित निर्मलता के आस्पद, त्रिभुवनस्थ सर्वशोभा

के निधान, पूर्णप्रेमरसामृत के अविनाशी आश्रय, सौभाग्यश्री के सद्भाजन, त्रितापतप्त जनवर्ग के तापशमनकारी महासमुद्र, (अपने इष्टदेव में अनुराग के संचार द्वारा) कठिन चित्त का द्रवीकरण करने वाले, निहेतुक, दूसरे के दुःख नाशमे करुणा के निलय, एवम मधुर रस सम्पत्ति के आकर, नवनिधि विशिष्ट, श्री श्यामानन्द कलानिधि चंद्रदेव, जययुक्त हों।।१।।

महाजन वर्ग जिनको पृथ्वी पर श्रील हृदयानन्द के प्रिय शिष्य एवम् साक्षात भगवान श्री कृष्ण के सखा श्री सुबल (श्री गौरीदास पण्डित) के प्रियतम अनुशिष्य कहते हैं, कृष्णभक्ति रसास्वादन में निपुण, भक्तगणों के मस्तकस्थित चूड़ामणि के समान श्रीमन् श्यामानन्द देव हमारे चित्त के अन्दर अहोरात्र, श्री राधा की प्रिय नर्म्म सखियों के हृदय की सुरुचि सम्पादन पूर्वक दीप्तिलाभ करें।।२।।

जो श्याम अर्थात उज्ज्वल रस के द्वारा उल्लसित होकर त्रिभुवन का आनन्द सम्पादन कर रहे हैं, इस कारण से जिस श्रीकृष्ण भक्त श्रेष्ठ को सूरिगण श्यामानंद नाम से अभिहित करते हैं, ब्रजेन्द्रनन्दन की रमणियों के गूढ़भाव के प्रकाश के विषय में जो उज्ज्वल मूर्ति हुए हैं, उन कृपावान जगद्गुरु, श्री दूरिकानंदन की मैं वंदना करता हूँ।।३।।

हे सुविज्ञ जनवृन्द ! यदि बिरल प्रचार, मधुर प्रेम रूपी अमृत रस का आस्वादन करने के विषय में, तुम लोगों का चित्त लालसान्वित हो गया हो, यदि साधनश्रम के बिना अनायास ही भावचिन्तामणि प्राप्ति की इच्छा होती हो एवम् यदि रागानुगा भक्तिसम्पद प्राप्ति के लिये रुचि होती हो, तो सर्वात्मरूप से, निरन्तर इन श्यामानन्द रूपी श्रेष्ठ कल्पतरू का भजन करें।।४।।

। इति चतुः श्लोकी।

❖

श्री रसिकानन्द प्रभु के प्रपौत्र महन्त श्री व्रजनानन्द देव गोस्वामी विरचित श्रीश्यामानन्द प्रभु का जन्मलीला कीर्तन–

एस हे आज रसिकराज जय प्रभु श्यामानन्द।
उड़िषा भूमिर अर्द्धमृत जने नाचाले प्रेम तरंग।।
दूरिका गर्भेते उदय हइले तराइते पापी सर्ब।
पूर्णिमा तिथि चैत्र मधु तव जन्म तिथि पर्व।।
पूजिवे सर्वे नारी नरे तब श्रीचरण द्वन्द।
चौदिके छुटे आकुल करे पद्यमधुर गन्ध।।
भक्त सबे पूजिवे तोमा आसन पाति दर्भ।
अर्थी दुःखी सकले मिलि त्यजि मने ज्ञान गर्व।।
भरिया डाला आनिछे माला करिया अति यत्न।
चन्दन घषि पूजिब बलि एनेछि नाना रत्न।।
पाद सरोज भरसा मात्र जानेना तोमा भिन्न।
भक्त प्राण भक्ति निदान करिओना आशा छिन्न।।
धारेन्दा पति पराणकान्त करिले ना कत भक्ति।
उतकल प्रदेश तोमार जीवन कत दैन्य कत आर्त्ति।
पापिरे तराले पृथिवी भासाले आनि महा प्रेम वन्या।
गौर अवतारे साधन तत्त्व जीवे दिया कैले धन्या।।
प्राण मातानो भक्ति तत्त्वे शिखाले प्रेम नृत्य।
पृथिवी मातिल विश्व भरिल प्रभु नाम तव सत्य।।
अद्वैत आवेश प्रभु तुमि हले श्री राधा प्रकाश ज्योति।
रसिकानन्देर प्रभु एइ हय श्यामानन्द प्राणपति।।
नाना यन्त्र वाद्य बाजे सबे कोलाकुलि।
रसिकमुरारी नाचे जय श्यामानन्द बलि।।
ब्रजजनानन्द हेरि करिल रचन।
से आनन्द हेरि नाचे सर्व भक्तजन।।

❖

श्रीश्यामानन्द कल्पवृक्ष की शाखाएं

श्रीश्यामानन्द प्रभुजी के शिष्य थे, असंख्य किन्तु उनमें तेरह व्यक्ति मुख्य थे। उनमें से श्रीरसिकानन्द प्रभुजी की पत्नी श्रीमती श्यामदासी के स्त्री होने के कारण मुख्य शिष्यगणों की संख्या बारह ही मानी जाती है। इन बारह मुख्य शिष्यों का श्रीश्यामानन्दी गोष्ठी की द्वादश शाखाओं के रूप में उल्लेख किया जाता है।

मुख्य द्वादश शाखाओं के नाम व पाठ—

१. श्रीकिशोर — केसियाड़ी
२. श्रीउद्धव — केसियाड़ी
३. श्रीपुरुषोत्तम — केसियाड़ी
४. श्रीदामोदर — केसियाड़ी
५. श्रीरसिक मुरारी — गोपीवल्लभपुर
६. श्रीदरिया दामोदर — धारेन्दा
७. श्रीचिन्तामणि — बड़ग्राम
८. श्रीबलभद्र — राजग्राम
९. श्रीजगतेश्वर — हरिहरपुर
१०. श्रीमधुसूदन — सांकोया
११. श्रीराधानन्द (श्रीरसिकानन्द प्रभु के पुत्र) — गोपीवल्लभपुर
१२. श्रीआनन्दानन्द — भोगराई

❖

"किशोरश्च मुरहरः श्रीदामोदरस्तत्परः।
चिन्तामणि श्रीवल्लभद्रस्ततः श्रीजगतेश्वरः।।
उद्धवो मधुसूदनो राधानन्दः पुरुषोत्तमः।
पुनर्दामोदरश्चैव आनन्दानन्द स्तत्परः।।
श्रीश्यामानन्द देवस्य शाखा द्वादश संख्याया।
पुरा महान्त–कथितमेनच्चरित मुत्तमम्।।

– **महाजनोक्ति**

प्रथमे वन्दिब श्रेष्ठ श्रीकिशोर दास।
विरक्त वन्दित जांर स्वभाव प्रकाश।।
श्रीरसिकानन्द चन्द्र वन्दिब आनन्दे।
कायमनोवाकये सदा सेबे श्यामानन्दे।।
दरिया श्रीदामोदर वन्दो हर्षमने।
आजन्म ब्रह्मनिष्ठा–ध्यान जांर मने।।
रसिकेन्द्र करुणाते ध्यान फिरि गेला।
वृन्दावने नित्यलीला दरशन पाइला।।
कल्पतरु कुटि माझे राधाकृष्ण साजे।
तांहा श्यामानन्द सेवे सखीर समाजे।।
ध्यान त्यजि चमत्कार पायां चिन्तिमने।
शरण लइल श्यामानन्देर चरणे।।
वन्दिब श्रीचिन्तामणि दासेर चरण।

राधाकृष्ण प्रेम जांर चिन्तामणि धन।।
बलभद्र दास वन्दो महिमा प्रचुर।
यांहार अभीष्ट बंशीवदन ठाकुर।।
श्रीजगतेश्वर वन्दो महिमा अपार।
नवविधा भक्ति जांर सदाइ आधार।।
उर्द्धबाहु करि वन्दो श्रीउद्धव दास।
साक्षात् उद्धव तिंहो अवनी प्रकाश।।
वन्दना करिब मधुसूदन चरण।
कृष्ण मधु पाने रत सेहों रात्रि दिन।।
वन्दिब श्रीराधानन्द बालक क्रीड़ाते।
कांकड़ि छिड़ाइयाँ लागाइला साक्षाते।।
वन्दि केशियाड़ी स्थिति श्रीपुरुषोत्तम।
शान्त, दान्त, क्षमाशील, विरक्त सत्तम।।
वन्दिब श्रीदामोदर पतिर चरण।
केसियाड़ी ग्रामे जांर वैष्णव पूजन।।
आनन्दे वन्दिब श्रीआनन्दानन्द दास।
वैष्णव सेवने जांर भोगराइ वास।।
कृष्णलीला संगी एंहो द्वादश महान्त।
लोकातीत गुण जांर भुवन पूजित।।

❖

किशोर उद्धव आर, पुरुषोत्तम दामोदर,

केशियाड़ी ते एइ चारि घर।

रसिकमुरारी आर रोहिणीते वास जांर,

धारेन्दाते दरिया दामोदर।।

चिन्तामणि नाम जांर, बड़ग्रामे वास तांर,

बलभद्र रहे राजग्रामे।।

हरिहरपुरे घर, नाम श्रीजगतेश्वर

शांकोयाते श्रीमधुसूदन।

श्रीगोपीवल्लभपुर, राधानन्देर कुटीर,

श्रीआनन्दानन्द भोगराइ।

द्वादश शाखार वास, वन्दनार करि आश

पांचालीते रचिल सवाइ।।

—श्रीश्रीश्यामानन्द रसार्णव

❖

श्यामानन्दी परिवार की मूलगद्दी श्रीपाट गोपीवल्लभपुर में, श्रीलश्यामानन्द प्रभुजी के व्यवहार की कुछ बासुरियां अभी भी संरक्षित है, जो श्रीश्यामानन्द प्रभुजी के एक निपुण वंशीवादक होने का साक्ष्य देती है। श्रील श्यामानन्द प्रभु अपने हाथ से ताड़ का पत्ता काटकर उन पर उड़िया लिपि में श्रीगीतगोविन्द के पदों को लिपिबद्ध करके करमाला बनाई थी, जो अभी भी गोपीवल्लभपुर में सुरक्षित है। उनके द्वारा पूजित श्रीगोवर्द्धन शिला, उनके द्वारा पठित श्रीमद्भागवत एवं उनके व्यवहृत कुछ गूदड़ियां भी श्री गोपीवल्लभपुर में विद्यमान हैं।

❖

श्रीश्रीकृष्णचैतन्य पदारविन्दनिरत श्रीश्यामानन्दी गुप्त धाम छत्र –

धाम	श्रीवृन्दावन
निलय	श्रीकुण्ड
क्षेत्र	वंशीवट
परिक्रमा	श्रीगोवर्धन
वांछा	युगल भजन
जप	श्रीगोपाल मन्त्र
श्रीपाट	नवद्वीप
वर्ण	शुक्ल
गोत्र	अच्युत
गायत्री	काम गायत्री
मन्त्र	महामन्त्र
आचार्य	कमलासन ब्रह्मा श्रीअद्वैताचार्य
मुनिवर	श्रीव्यासदेव
ऋषि	श्रीनारद
देव	श्रीश्रीमदनमोहन
निगम	प्रणव, श्रीगोपालतापनी
मुक्ति	श्रीयुगल चरण प्राप्ति
जीवन	श्रीनाम
निष्ठा	श्रीकृष्ण प्रसाद में
मुद्रा	नामाक्षर, शीतला
तिलक	ऊर्ध्वपुण्ड्र, श्रीगोपीचन्दन, श्रीराधाकुण्ड की रज
माला	श्रीतुलसी दो या तीन लहरी
सेवा	श्रीमद्भागवत पुराण
आश्रय	श्रीनित्यानन्द प्रभु

❖

श्रील श्यामानन्द प्रभुजी के गद्दी के महन्त परम्परा
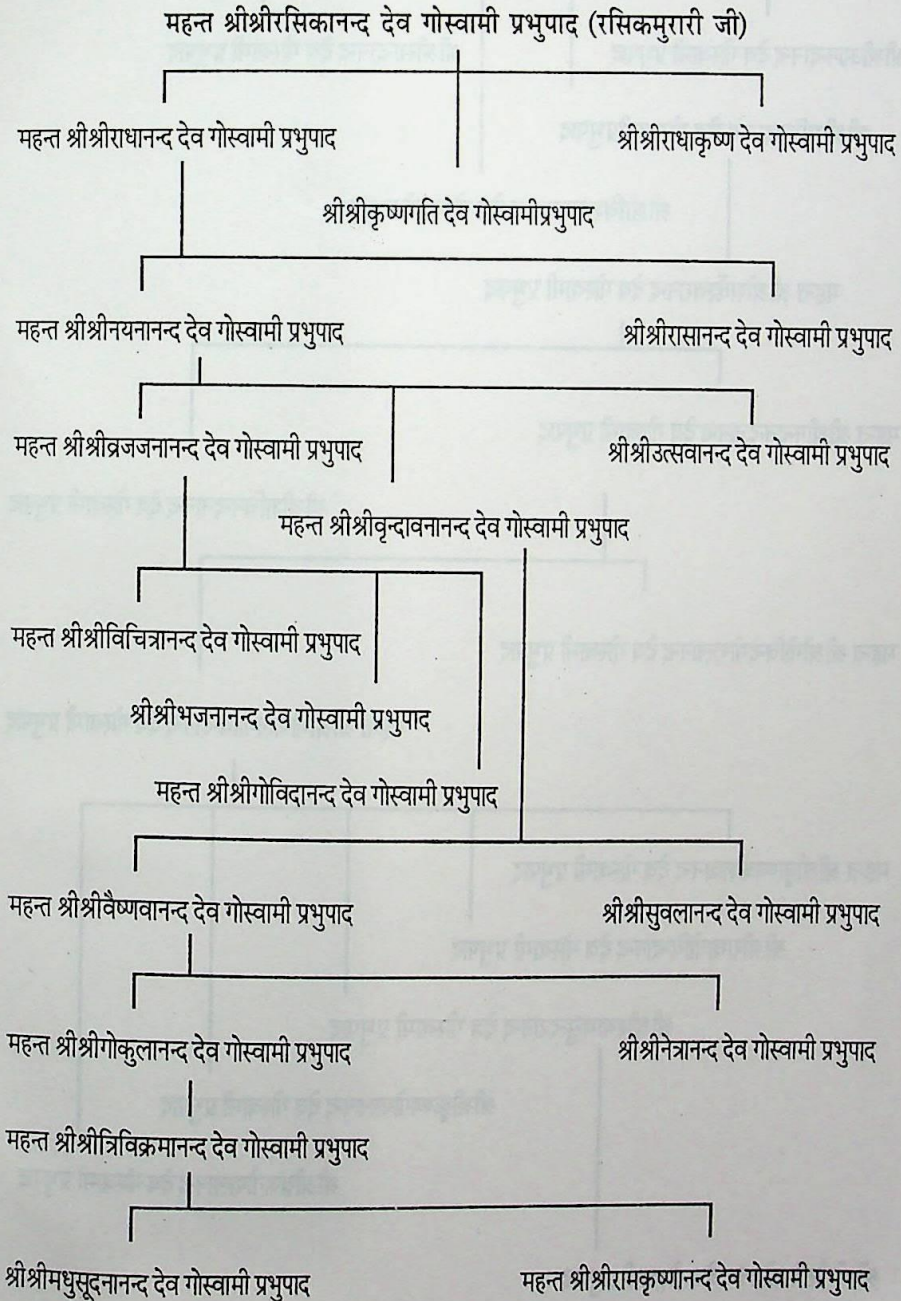
महन्त श्रीश्रीरामकृष्णानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
श्रीश्रीआनन्दानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
श्रीश्रीसान्द्रानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
श्रीश्रीसच्चिदानन्द देव गोस्वामीप्रभुपाद
श्रीश्रीविश्वम्भरानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
महन्त श्रीश्रीसर्वेश्वरानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
महन्त श्रीश्रीनन्दनन्दनानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
श्रीश्रीशचिनन्दनानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
महन्त श्रीश्रीगोविन्दगोपालानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
महन्त श्रीश्रीगोपालगोविन्दानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
महन्त श्रीश्रीकृष्णकेशवानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
श्रीश्रीराधागोविन्दानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
श्रीश्रीश्यामसुन्दरानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
श्रीश्रीकृष्णगोपालानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
श्रीश्रीव्रजगोपालानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद
श्रीश्रीगौरकिशोरानन्द देव गोस्वामी प्रभुपाद

बृजवासी जन प्राण-धन श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दर देवजी महाराज

श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दर मन्दिर

सेवाकुंज, श्रीधाम वृन्दावन, मथुरा (उ०प्र०)

मो. 9412226368, 9258056368

website : www.radhashyamsundar.com

e-mail : prabhushyamananda@radhashyamsundar.com

Chaudhary Press-9837787802